Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

AYURVED VIJNAN

1959 G. K. U.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

emaj Foundation Chen

nain Gurukul Kangri C

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079411

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६ फाल्गुन सम्वत २०१५ संख्या ३

मार्च १९५९

079411

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

079411

विषय-सूची

१. स्वार्थान्धियों की करतूत और वैद्य समाज पर अनभ्र वज्रपात ३३
२. यक्ष्मा का इतिहास और उससे बचने के कुछ सहज उपाय ३५
३. दूध की रचना और उसके गुण ३७
४. उपवास के लाभ ३९
५. आम सन्धिवात् की नई औषधियां ४१
६. मधुविलीन के आविष्कार का इतिहास ४२
७. खुरासानी अजवायन ४६
८. सितसार निकालना ४६
९. ४३वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थगित ४८

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, २२ फैज़ बाज़ार, देहली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—

१ पृष्ठ यानी	२ कालम की	प्रतिबार	की छपाई	४०)
आधा पृष्ठ "	१ "	"	"	२४)
चौथाई ,,	१।२ "	"	"	१६)
टाईटल के पीछे के पृष्ठ की		"	"	५०)
" तीसरे "	की	"	"	४५)
" चौथे "	की	"	"	६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

COMPILED

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेवं वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ६ | फागुन २०१५ वि०, मार्च १९५९ ई० | अंक ३

स्वार्थान्धियों की करतूत और वैद्यसमाज पर अनभ्र वज्रपात

२२-२३-२४ फरवरी को बड़े धूम धाम से महासम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन की तयारियां हो रही थीं। राष्ट्रपति ने सम्मेलन का उद्घाटन करना था, विद्यापीठ सम्मेलन का उदघाटन गृह मन्त्री पं० गोविन्द वल्लभ पन्त जी ने करना था। स्वागत सम्मेलन के अवसर पर दीक्षान्त भाषण श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने करना था, और मुख्य अतिथि के रूप में केन्द्रीय योजना मन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने आना था। इस अधिवेशन में अनेक विदेशी राजदूत, केन्द्रीय मन्त्रिगण तथा सौ से ऊपर संसद सदस्य पधारने वाले थे। अनेक विद्वानों की अध्यक्षता में अनेकों परिषदों का आयोजन किया गया था। और सबसे बड़ी भारी बात यहाँ यह होने वाली थी कि महासम्मेलन के आधीन विद्यापीठ महा विद्यालय का विधिवत् उद्घाटन होना था। प्रदर्शनी का आयोजन बड़े उत्साह से हो रहा था। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि स्थानों की अनेक बड़ी बड़ी फार्मेसियों ने प्रदर्शनार्थ अनेक सामान भेज दिये थे।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी ने एक नया आयोजन यह किया था कि विद्युत् भट्ठियों पर कुछ पक्व रस और इन्हीं विद्युत् भट्ठियों पर पारद, संखिया, हरताल आदि की भस्में निर्माण करने का प्रदर्शन करना था।

यह दूसरा अवसर था जब कि आयुर्वेद हित का ख्याल करके राष्ट्रपति जी ने प्रमुख वैद्यों की प्रार्थना स्वीकार करके इस अधिवेशन का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया था। १० फरवरी को एकाएक बम्बई के कोई वैद्य मोहनलाल पुरुषोत्तम दास गुप्त द्वारा सम्मेलन स्थगन का आदेश वहां के न्यायालय से प्राप्त करके उस समय तक के लिये इसे स्थगित करवा दिया जब तक कि इस सम्मेलन को बुलाने की वैधानिकता सिद्ध न कर दी जाय।

सम्मेलन को स्थगन कराने का कारण

१७ जुलाई १९५८ को कलकत्ते में जो पिछला स्थायी समिति का अधिवेशन हुआ था, उस स्थायी समिति ने वहां सम्मेलन की तिथियों का निश्चय करने का अधिकार महासम्मेलन प्रधान जी को दे दिया गया था और उन्होंने वार्षिकोत्सव की तिथियां ६-७-८ दिसम्बर की घोषित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दी थीं। किन्तु वैद्य समाज की यह इच्छा थी कि सम्मेलन का उद्घाटन यदि राष्ट्रपति जी के हाथ से हो तो इससे सम्मेलन की प्रतिष्ठा दृढ़ होगी। इस सम्बन्ध में राष्ट्रपति जी से मिला गया, और उन्हों ने कृपा पूर्वक महासम्मेलन का उद्घाटन करना स्वीकार कर लिया। किन्तु उनके सैनिक सचिव ने बताया कि वह तो ४ दिसम्बर से २०दिसम्बर तक बाहर यात्रा पर रहेंगे उनके लिये इन तारीखों में उद्घाटन करना सम्भव नहीं। इसीलिये स्वागत समिति ने महा सम्मेलन प्रधान जी को सारी स्थिति बतलाकर उनसे तिथियां परिवर्तन करने की प्रार्थना की। इधर राष्ट्रपति जी के सैनिक सचिव से औपचारिक पत्र व्यवहार स्वागत समिति करती रही। अन्त में राष्ट्रपति जी के कार्यालय से उद्घाटन के लिये २२ फरवरी का जब समय मिला तो महासम्मेलन प्रधान के आदेश से स्वागत समिति ने २२-२३-२४-२५ फरवरी सम्मेलन की तारीखों की घोषणा करदी इधर सारा प्रबन्ध हो चुका था, कि सम्मेलन पर छाये हुए निहित स्वार्थियों ने इसमें विघ्न खड़ा कर दिया।

आपत्ति का आधार क्या बनाया गया ?— जिन्होंने यह निषेधाज्ञा का प्रपंच रचाया था, वह आधार यह बनाया गया है कि स्थायी समिति ने महासम्मेलन प्रधान को तिथियाँ निश्चय करने का जो अधिकार दिया था, वह एक बार के ही लिए दिया था। जब उन्होने ६-७-८ दिसम्बर की तिथियों की घोषणा कर दी थी तो उनका वह अधिकार वहीं समाप्त हो जाता है। इसके बाद पुनः तिथियों का निश्चय करने का अधिकार स्वागत समिति और स्थायी समिति को है न कि प्रधान को था, प्रधान को चाहिये था कि वह पुनः स्थायी समिति का अधिवेशन बुलाता और वह स्थायी समिति ही दूसरी बार पुनः तिथियों का निश्चय करती। इस तरह तिथियों का निश्चय करना अनधिकार चेष्टा है, अब इस बात का निर्णय न्यायालय करेगा कि दूसरी बार तिथियों का निर्णय जो प्रधान की आज्ञा से स्वागत समिति ने किया था, वह वैध है या अवैध। यह मामला न्यायालय के पास अब चला गया है तो समय लेता है। इसी आशय का एक मुकदमा श्री ज्वाला प्रसाद और नागपुर के पं० गुलराज शर्मा ने दिल्ली की अदालत में भी किया हुआ है।

यह महासम्मेलन के अधिवेशन को विघ्न के शिकंजे में क्यों फंसाया गया? सम्मेलन का उद्देश्य वैद्य समाज की भलाई से सम्बन्ध रखता है। वैद्य समाज के संगठन को दृढ़ बनाने और वैद्य समाज को अधिकार प्राप्त कराने के लिये ही इस संस्था का जन्म हुआ था। इस समय सम्मेलन अपना विद्यापीठ स्थापन करने जा रहा था और दिल्ली में जो अधिवेशन हो रहा था उसका उद्देश्य था सरकार पर अपना प्रभाव डालकर वैद्य समाज को वह प्रतिष्ठा दिलाना जो कि इस समय डाक्टरों को प्राप्त है। यहां पर तो इस समय वैद्य समाज के कल्याण के निमित्त विचार होना था। किन्तु निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियों ने देखा कि महासम्मेलन नहीं हो रहा, प्रत्युत हमारे हाथ से सत्ता छीनने का आयोजन हो रहा है, उन निहित स्वार्थ साधक व्यक्तियों ने मिलकर यह षडयंन्त्र किस तरह रचा और सम्मेलन को किस तरह स्थगित करवाया इसका पूरा विवरण अगले अंक में पाठकों को पढ़ने को मिलेगा।

रजिस्ट्रेशन आफ न्यूज़ पेपर्ज (सैन्ट्रल) रूल्ज़ १९५६ के अनुसार

'आयुर्वेद-विज्ञान' मासिक का विवरण

फार्म ४

(नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान ... ...देहली
२. प्रकाशन की अवधि ... मासिक
३. मुद्रक का नाम ... ...स्वामी हरिशरणानन्द
जाति ... ... भारतीय
पता ... २२, फैज बाजार देहली
४. प्रकाशक का नाम ... स्वामी हरिशरणानन्द
जाति तथा पता ... ... एवं
५. सम्पादक का नाम, ... स्वामी हरिशरणानन्द
जाति तथा पता ... ... एवं
६. पत्र के मालिक का नाम ... स्वामी हरिशरणानन्द

मैं स्वामी हरिशरणा नन्द घोषणा करता हूँ कि मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार उपरोक्त दिया विवरण सत्य है।

ह० स्वामी हरिशरणा नन्द

तिथि १—३—५६ प्रकाशक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक्ष्मा का इतिहास और उससे बचने के कुछ सहज उपाय

और रोगों के सम्बन्ध में तो नहीं कहते, किन्तु यक्ष्मा एक ऐसा रोग है जो आज से हजारों वर्ष पूर्व भी विश्व में व्यापक था। हजारों वर्ष पूर्व यह यक्ष्मा मनुष्य में व्यापमान था, उसका क्या प्रमाण ? क्योंकि जिसके शरीर में यह यक्ष्मा होता था उसमें ही इसका प्रमाण मिले तो इसे सही माना जा सकता है। यह तर्क उचित है। इस सम्बन्ध में और तो कहीं नहीं, किन्तु मिश्र देश में इसके प्रमाण अवश्य उपलब्ध हुए हैं। पाठकों को शायद ज्ञात हो कि उस देश में बादशाहों को जब वह मर जाते थे, उस समय उनको सुरक्षित रखकर, सुरक्षित गृहों (पेरामिडों) में बन्द कर देने की प्रथा थी। उस सुरक्षित शवों को वे ममियां कहते हैं। उन ममियों के साथ सुरक्षित पत्र (पेपरिस) पर उस बादशाह का सारा इतिहास समय आदि लिखकर उसे सुरक्षित गृह में बन्द कर देते थे। वह पेरामिड बड़ी ऊंची २ मीनार के रूप में आज भी कितने ही वहां खड़े हैं, जो गिर गये हैं उनमें से तथा कुछ को खोलकर उनके भीतर से जो उन बादशाहों के शव सुरक्षित रूप में निकाले गये हैं उनमें से कई ऐसे शव भी निकले हैं, जो यक्ष्मारोग से उनकी मृत्यु हुई थी। इसका प्रमाण उनके फुप्फुसों के गलने और उनसे यक्ष्मा कीटाणुओं के कुछ चिन्ह उनके फुप्फुसों में मिलने से अनुसन्धान कर्ताओं ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि उस समय यह रोग अवश्य था। यह ममियां आज से सात हजार वर्ष से अधिक पुरानी हैं। सभ्यता का वह उदय काल था, ऐसा दृढ़ प्रमाण और कोई नहीं हो सकता।

बेबोलोनिया की सभ्यता भी बहुत पुरानी है। उनकी पुस्तकें जो मिली हैं वह भी पांच हजार वर्ष तक के समय की सूचक हैं। उन पुस्तकों में एक ऐसी बीमारी के लक्षण दिये हैं जो यक्ष्मा के लक्षणों से मिलते हैं।

चीन की सबसे पुरानी पुस्तक में एक शब्द आता है लिपिंग जिसका अर्थ है फुप्फुस में एक कफ पैदा करने वाला रोग। इसके जो लक्षण दिये गये हैं वह भी यक्ष्मा के लक्षणों से मिलते हैं। जिस पुस्तक में यह लक्षण दिये हैं वह पुस्तक कम से कम ३००० वर्ष पुरानी है, ऐसी इतिहासज्ञों की राय है। हमारे वेद भी कम से कम ४००० हजार वर्ष पुराने हैं, इससे कम नहीं। इन वेद मन्त्रों में एक जगह नहीं बीसों जगह पर यक्ष्मा का स्पष्ट नाम आया है। हम अथर्ववेद के कुछ प्रमाण देते हैं।

मा विमेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा।
निर्वीर्चमहं यक्ष्मंमंगेभ्यो अंगज्वरं तव।
अंगभेदो अंगज्वरो यश्च ते हृदयामयः।
यक्ष्मः श्येव इव प्रापप्तद् वाचा साढः परस्तराम्॥
इयमन्तर्वदति जिह्वा बद्धा पनिष्पदा।
त्वया यक्ष्मं निरवोच शतं रोपीश्च तक्मनः। अथर्ववेद
५।३०।१६-८-९

उस वैदिक काल में यद्यपि औषध चिकित्सा नहीं थी, दैवी चिकित्सा थी, किन्तु कोई चिकित्सा हो, यहां उससे कोई प्रयोजन नहीं। यहां तो इतना ही देखना है कि उस काल में यह रोग था, बस। वेदों जैसी प्राचीन धर्म पुस्तक पारसियों की जेन्दावस्था है, वह भी आज से चार हजार वर्ष से कम पुरानी नहीं है। उसमें महर्षि जोरोआस्टर की शिक्षा में यक्ष्मा रोग के होने का संकेत मिलता है। और वहाँ इसके निवारण के लिए गुलरोगन, मोम और चीड़ के तेल का प्रयोग बतलाया है। आज से दो हजार वर्ष पूर्व में हुए ईसामसीह और सिकन्दर जैसे महान विजयी योद्धा इसी यक्ष्मा रोग से ग्रसित होकर मरे। सूली प जब ईसू को चढ़ाया गया था, उस समय वह यक्ष्मा रोग से ग्रसित था, इसी से तो सूली देते समय उसके फेफड़े से रक्तमिश्रित पानी निकला था। यह फुप्फुस में क्षत होने का प्रमाण था। ईसा से ४६० वर्ष पूर्व हीपोक्रेट हुआ उसने तो इस रोग के सम्बन्ध में पूरा २ निदान ही दिया है और उसी ने इसका नाम थाइसिस रखा था। उसी ने लसिका ग्रन्थियों में इसके आक्रमण का पता लगाया था कि यह कंठ माला इसी यक्ष्मा के कारण होती है। हम अन्त तक कंठमाला को एक स्वतन्त्र रोग समझते रहे। प्लेटो और अरस्तू जो हीपोक्रेट के ४०-५० वर्ष बाद में हुए, इन्होंने भी इस रोग का विस्तृत वर्णन दिया है। इन दिनों आकर इस बात का चिकित्सकों को कुछ पता चल गया था कि यह रोग संचारी है और एक से दूसरे को लग जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१५ वीं सदी में आकर जर्मनी में पारा सेल्स ने और इटली में गिरोलामोफाकस्टेरो ने इस बात की ओर चिकित्सकों ना ध्यान खींचा कि इस रोग के कीटाणु होते हैं किन्तु उस समय उसके पास प्रत्यक्ष देखने के कोई साधन नहीं थे। १८वीं सदी में आकर इटली के डाक्टर बी० बी० मार्गनी ने सूक्ष्मदर्शक से देखकर यक्ष्मा कीटाणुओं के होने का प्रमाण दिया।

जिस तरह हमारे यहाँ दो हजार वर्ष पूर्व अनुमान से जान लिया गया था कि—

प्रसंगाद् गात्र संस्पर्शान्निश्वासात् सह भोजनात्
सह शय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्।
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एवच। सुश्रुत।

ईसा से ४६० वर्ष पूर्व ही हिपोक्रेटस ने भी अनुमान से जान लिया था कि यह रोग संचारी है। १८८२ में आकर जर्मनी के एक डाक्टर काव्च ने अच्छी तरह से सूक्ष्म दर्शक से जांच कर बताया कि इसके कीटाणु शलाकाकार होते हैं, उन्होंने इन्हें वैसीलाई नाम दिया उसीने ही रोगी के श्लेष्म से यक्ष्मा के कीटाणुओं को भिन्न करके उन्हें पाला और इसकी कृषि करके दिखाई।

जब इस बात का ठीक ठीक ज्ञान हो गया कि यह रोग शरीर के किसी विकार के कारण उत्पन्न नहीं होता, प्रत्युत इस रोग के कीटाणु जब एक रोगी के शरीर से निकलकर दूसरे के शरीर में पहुँच जाते हैं तब ही यह रोग होता है। तो यह किस तरह से एक व्यक्ति के शरीर से निकलकर दूसरे को लग जाते हैं इसकी खोज होने लगी। यद्यपि इस बात का हमारे ऋषि, महर्षि चरक, सुश्रुत जैसे आचार्य स्पष्ट बतला गये थे कि प्रसंग से, स्पर्श से, पास में बैठे रोगी के खांसने, श्वास लेने और उस रोगी के साथ बैठकर एक थाल में भोजन करने से, बीमार की चारपाई पर बैठने, उसके साथ सोने, उसके पहने हुए वस्त्र पहनने से यह रोग लग जाता है। जिन रोगों के नाम शास्त्र ने गिनाये हैं, उनमें ज्वर से, उनका अभिप्राय इसी राजयक्ष्मा के ज्वर से था और शोष का सम्बन्ध भी क्षय से है। यह सिद्धान्त प्रतिपादित किये जाने पर भी वैद्य समाज इस मूल मंत्र को बिल्कुल ही नहीं समझ पाया। न चिकित्सा काल में वह स्वयम अपना ध्यान इस ओर रख सका, न रोगी का ध्यान इधर खींचा।

आज भी वैद्य समाज की यह दशा है कि यक्ष्मा रोग के संचार कारणों को न कुछ समझता है न इधर ध्यान ही देता है। हमें इस विषय का पूरी तरह से अध्ययन करना चाहिये और इससे बचाव की जितनी भी विधियां हैं उनका ध्यान रखकर जन समाज को उन संचारी कारणों से बचाने का आदेश देना चाहिये।

राजयक्ष्मा से बचाव के साधन क्या हैं ?

इससे बचाव की सबसे उत्तम विधि है घर की स्वच्छता। मकान खूब साफ सुथरा रहना चाहिये, ताकि घर में मक्खियाँ न रह सके। इस रोग को फैलाने में मक्खियों का बहुत बड़ा हाथ होता है। घरों में दरवाजों पर चिक जरूर डालना चाहिये, चिक से घर में मक्खियां नहीं घुस सकतीं। घर ऐसे होने चाहिये, जिसमें प्रकाश धूप और हवा बराबर आती जाती रहे। अन्धेरे मकान में ही जीवाणु, कीटाणुओं को बढ़ने का मौका मिला करता है। खाने पीने की चीजें किसी ऐसे व्यक्ति के दूकान से नहीं लेना चाहिये जो खाने पीने की चीजें साफ सुथरी न रखता हो। बाजार में रखे कटे हुए फल, कटी सब्जी, खुला पड़ा दूध, दही जो ठण्डा हो रहा हो, जिन खाने पीने की चीजों पर मक्खियां भिनक रही हों, उन्हें कभी भूलकर नहीं खाना चाहिए।

जिस घर में यक्ष्मा का रोगी हो वहाँ जाते, रोगी देखते, समय इस बात का खास ध्यान रखना चाहिये कि उसकी चारपाई से कभी लगकर मत बैठो। रोगी को समझाओ, वह जब थूके तो पीकदान में थूके। पीकदान में सदा फ़िनाइल पड़ा रहना चाहिये। जब रोगी खांस रहा हो उसके सामने कभी भूलकर मुंह करके नहीं बैठना चाहिये। खांसते समय सदा ही रोगी के मुंह से थूक के सूक्ष्म जर्रे बाहर उड़कर हवा में आ मिलते हैं और आस पास बैठे हुए आदमियों के श्वास द्वारा उनके फेफड़ों में पहुंच सकते हैं।

हमने यहाँ कई ऐसे परिवारों का निरीक्षण किया है, जिनके घर में कई कई प्राणि यक्ष्मारोग से मरे हैं। उनके घरों को देखने से यह स्पष्ट हो गया था, कि उनके कच्चे मकान थे, और वह मकान भी ऐसे हवा प्रकाश से रहित थे जिनमें कभी धूप और रोशनी जा ही नहीं सकती थी।

[शेष पृष्ठ ४७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूध की रचना और उसके गुण

दूध को आहारीय द्रव्यों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। यह किस लिये ? मोटे तौर पर हम देखते हैं कि बालक के जन्म लेने के बाद उसको कोई वस्तु आहार के लिये मिलती है तो वह एक मात्र दुग्ध होता है। और हम यह भी देखते हैं कि बालक के शरीर की वृद्धि केवल मात्र माता के दूध से ही होती रहती है। हम इसी बात को देखकर यह मानते हैं कि दूध सर्वश्रेष्ठ आहार है। हमारा अनुभव यह भी है कि बहुत से साधू दूधाधारी देखे जाते हैं और वह जीवन पर्यन्त दूध पर ही रहते हैं। यह प्रमाण भी इस बात को पुष्ट करता है कि दूध में वह समस्त पदार्थ विद्यमान होते हैं जो मनुष्य जीवन के लिये आवश्यक हैं।

दूध स्तनपायी प्राणियों के स्तन में उत्पन्न होने वाला ऐसा प्राणिज द्रव्य है जिसकी रूप रचना को देखकर उसे पवित्र और ग्राह्य मानते चले आये हैं। किन्तु इसकी रचना में कौन कौन सी वस्तुएं विद्यमान हैं ? इसके सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं था। आयुर्वेद में इसे रक्त का ही बदला हुआ रूप समझते थे।

यथा—क्षीरं स्निग्धं तथा रक्तं पित्तेन पाकतां गतम्।
रक्तं श्वेतत्व मायाति तथा क्षीरं सितं भवेत्॥

रक्त ही पित्त के द्वारा परिपाकित होकर दुग्ध में बदल जाता है। यह हमारा अनुमान ही था। पित्त द्वारा रक्त पककर दूध नहीं बनता। इस शरीर में अनेक प्रकार की ग्रन्थियां देखी जाती हैं। जैसे—लार बनाने वाली लालाग्रन्थि, पित्त बनाने वाली यकृत ग्रन्थि, वीर्य बनाने वाली वीर्य ग्रन्थि, मद बनाने वाली मद ग्रन्थि, पाचक रस बनाने वाली इसी तरह आमाशय, व क्लोम ग्रन्थियां आदि हैं। इससे भिन्न अब तो शरीर में अन्तः स्राव उत्पन्न करने वाली अनेक ग्रन्थियां देखी जाती हैं। इन सबों में, जो लाला, वीर्य,मद, पित्त व पाचक रस आदि बनते हैं यह सब भिन्न भिन्न रूप रंग के और भिन्न भिन्न गुण, स्वभाव के द्रव्य होते हैं। और इन सबों की रासायनिक रचना भी भिन्न भिन्न होती है। जिस तरह से यकृत में कड़ुवा खट्टा पीले रंग का पित्त बनता है, इसी तरह से हल्के दूधिया रंग का वीर्य और पानी से रंग का लिबलिबा मद होता है। इसी तरह से स्तन में भी कुछ ग्रन्थियां होती हैं जो परिपाक रस से वह स्वयं दूध का निर्माण करती रहती हैं। स्तन में विद्यमान दुग्ध निर्माता ग्रन्थियों का ही काम है दुग्ध का निर्माण करना। यह सिद्धान्त बिल्कुल ही गलत है कि दूध रक्त से बनता है। जो बातें प्रत्यक्ष में जानने पर कुछ और दिखाई दें और हम उन्हें किसी और रूप में मानते हों तो ऐसी दशा में जब असली स्थिति का पता लगते ही उस असत्य सिद्धान्त को हमें उसी समय छोड़ देना चाहिये। क्योंकि उसके मानने का अभिप्राय यह होगा कि हम एक असत्य बात को मानकर सत्य बात से मुंह मोड़ रहे हैं। यह बातें हमारी ज्ञान वृद्धि में बाधक हैं।

इस समय हम आहार में जो द्रव्य लेते हैं उसमें क्या क्या पोषक द्रव्य मिले होते हैं ? इसको इस समय प्रत्यक्ष देख लिया गया है। प्रत्येक आहारीय द्रव्यों में तीन ही श्रेणी के पदार्थ होते हैं असृजनीय (प्रोटीन) स्नेहीय और शार्करीय। असृजन का अर्थ है मांस.रक्त आदि उत्पन्न करने वाली श्रेणी के द्रव्य। दूसरे हैं स्नेह चिकनाइयां,घी, तेल, चर्बी आदि। तीसरी श्रेणी में हैं वह द्रव्य जो शर्करा जाति के हैं, जैसे चीनी, सितसार, मंड, निशास्ता आदि। यह तो तीन हुए पोष्य द्रव्य, इनसे भिन्न शरीर को कुछ लोहा, चूना, स्फुर (फास्फोरस) मग्न [मैंगनेशिया], लवण आदि की भी आवश्यकता होती है। इन द्रव्यों से भिन्न अत्यन्त न्यून मात्रा में ऐसे द्रव्यों की आवश्यकता भी शरीर को होती है जिन्हें खाद्योजांश [विटामिन] कहते हैं। यह खाद्य, पेय द्रव्यों में विद्यमान रहने के कारण हमने इनका नाम खाद्य का ओज अंश अर्थात् खाद्य द्रव्यों का वह प्रभावकारी अंश जो इतनी सूक्ष्म मात्रा में होता है कि उसका हम अपनी गणना से हिसाब नहीं निकाल सकते। ऐसे ही द्रव्यों के लिये तो आयुर्वेद में प्रभाव का नाम दिया गया था यथा—

क्वचित्तु केवलं कर्म द्रव्यं कुर्यात्प्रभावतः।
ज्वरं हन्ति शिरोबध्वा सहदेवी जटा यथा॥

यह खाद्योजांश भी अपने प्रभाव से ही पहले पहल जाने गये थे। किन्तु यह तो रासायनिक युग है,इन प्रभावकारी द्रव्यों को भी आहारीय द्रव्यों के भीतर से निकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर उन्हें भिन्न कर लिया गया। यह सब इतने पदार्थ उस अकेले दूध में विद्यमान रहते हैं अर्थात दूध में अस्रजन स्नेह और शर्करा लोह, चूना मग्न, लवण स्फुर, और खाद्योजांश ए, बी, सी, डी, वगैरह यह सभी शरीर के आवश्यक सामग्री इस दूध में उस आहार रस से जो रक्त में विद्यमान होता है स्वयं ही दुग्ध जनक ग्रन्थियाँ निर्माण करती हैं। शरीर में यह प्रकृति के द्वारा प्रबन्ध हुआ है कि बालक के भरण पोषण के लिये दुग्ध ग्रंथियों को सामर्थ्य मिली हुई है कि वह विपाक रस से समस्त बस्तुएं ग्रहण कर उसे दुग्ध में संचित करदें, जिसकी बालक को पोषणार्थ आवश्यकता है। इसीलिए दूध में यह विशेषता है कि इसे बालक, युवा, वृद्ध सभी पीकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति कर लेते हैं।

दूध में ही यह विशेषता है कि जिन त्रिपोष्यों से शरीर बना है उसकी क्षय पूर्ति तथा वृद्धि में यह सहायता करता है।

दूध में आने वाली विकृतियां और उनसे बचाव

दूध निकालकर प्रकाश में नहीं रखना चाहिये। क्योंकि दूध में जो खाद्योजांश सी होता है, वह प्रकाश से नष्ट होता रहता है। जहां तक बने सदा दूध को प्रकाश से बचा कर रखना चाहिये। दूध जब दुहा जाता है उस समय दूध की धार बर्तन पर पड़ती है उस समय उसके साथ हवा उसमें मिलती रहती है। हवा में ऊष्मजन वायु मिला होता है उस ऊष्मजन की उपस्थिति में प्रकाश का अधिक प्रभाव होता है और खाद्योजांश सी शीघ्रता से नष्ट हो जाता है, यदि दूध को निकालकर शीघ्रता से उबाल दिया जाय तो दूध की हवा उबाल लेने के साथ ही निकल जाती है हवा के निकल जाने पर फिर प्रकाश का प्रभाव भी उस पर उतना नहीं होता। दूसरे जो कीटाणु दूध को खराब कर देते हैं वह कीटाणु भी दूध को उबालने के साथ ही मर जाते हैं। क्योंकि दूध जो रखा २ खट्टा हो जाता है और फिर फट जाया करता है, उसका कारण है कि दूध में जो शक्कर होती है वह दुग्धेत के रूप में होती है इसी शक्कर को खाकर कीटाणु दुग्धाम्ल पैदा करते हैं। इस दुग्धाम्ल का प्रभाव दूध में विद्यमान अस्रजनों पर होता है और वह अस्रजनों को जमा देता है और उसे जमाकर दूध में विद्यमान पानी से उसे भिन्न कर देता है। जब अस्रजनें थक्का बनाने लगती हैं तो अपने साथ दूध के स्नेह को लेकर नीचे बैठ जाती हैं। और वह दूध इस दुग्धाम्ल के कारण खट्टा हो जाता है। अगर हम दूध को उबालकर उसे कुछ नीम गरम रखकर उसमें दही की कुछ बूंदें डाल कर रख देते हैं तो वह दूध तेजी से जम कर दही बन जाता है, यह दही जमाने का काम वही दुग्धाम्ल जनक कीटाणु किया करते हैं जो दही में होते हैं। यह दही भी खाने में दूध से उपयोगी होता है, इसमें जो दुग्धाम्ल बन जाता है, वह अम्ल पेट में सन्धान उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं को बढ़ने से रोक देता है। इसीलिये जो पेट में विकृत रूप के सन्धान उठने वाले हों वह दुग्धाम्ल से रुक जाते हैं। दूध को पचाने लिये पेट में एक विकर उत्पन्न होता है जिसे क्षीरीन (रेनीन) कहते हैं। जिन व्यक्तियों को दूध हजम नहीं होता इसका मतलब यही होता है कि उनके पेट के पाचक रसों में उक्त क्षीरीन की मात्रा नहीं होती, इसी से दूध हजम हुआ नहीं करता। जिन्हें दूध हजम नहीं होता, वह दही खाँय तो दही हजम हो जाता है इसका कारण यह है कि दूध का थक्का जो क्षीरीन बनाता है वह पहले ही दुग्धाम्ल जनक कीटाणु बना देते हैं, दुग्ध शर्करा पहले ही दुग्धाम्ल में बदल चुकी होती है, अस्रजनें जम कर थक्का बन चुकी होती हैं, उस पर आमाशय का पाचीन नामक रस और लवणाम्ल इस अस्रजन में मिलकर सन्धानित कर देता है और क्लोम का रस उसे पचाने में समर्थ रहता है। इस तरह से दही हजम हो जाता है।

बिशुद्ध आयुर्वेदिक औषधियां एवं उत्तम मोती, केसर कस्तूरी आदि मूल्यवान औषध द्रव्य निम्न पते से मंगायें।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी
अकाली मार्किट, अमृतसर
(खारी बावली, दिल्ली)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपवास के लाभ

हमारा शरीर भी एक स्वयं चालित यन्त्र के मानिन्द है। जिस तरह यन्त्र को चलाने के लिये शक्ति इन्जन से या विद्युत आदि शक्त्युत्पादक यन्त्रों से मिलती है, हमें यह शक्ति आहार के द्वारा मिला करती है। जिस तरह से यन्त्र को पीछे से प्राप्त होने वाली शक्ति के स्विच को बंद कर दें तो यन्त्र चलता चलता बन्द हो जाता है, ठीक इसी तरह जब हम उपवास करने लगते हैं तो बाहर से शक्ति का स्रोत आहार का आना बन्द हो जाता है। पर हमारे शरीर के भीतर उस आहार का काफी अंश संचित रहता है। मशीन तो इसीलिये रुक जाती है, क्योंकि उसके पास कुछ भी संचित शक्ति नहीं होती। पर मनुष्य के भीतर वह शक्ति त्रिपोष्यों के ही रूप में संचित रहती है। यकृत में, रक्त में, पेशियों में, कज्जलोदेत द्राक्षोजन के रूप में संचित रहता है, त्वचा के नीचे स्नेह चर्बी के रूप में संचित रहता है और अस्रजन तो समस्त मांस रक्त में ही रहता है, रक्त में भी इसकी मात्रा काफी होती है। यही तीनों आहार के मुख्य घटक होते हैं जो हमारे भीतर शक्ति और ताप दोनों ही उत्पन्न करते रहते हैं। शक्ति और ताप जिस तरह से हम लकड़ी और कोयला जलाकर उत्पन्न करते हैं। अर्थात् हवा में विद्यमान ऊष्मजन से उसका सम्पर्क करा कर उत्पन्न करते हैं तभी वह ज्वलन शील द्रव्य ऊष्मजन का सम्पर्क पाकर जल उठते हैं। यदि हवा में ऊष्मजन न हो तो कोई भी पदार्थ लकड़ी, कोयला, तेल आदि कभी जल नहीं सकते। अर्थात पदार्थों का जलना बिना ऊष्मजन के सम्भव ही नहीं। जो ज्वलन शील पदार्थ ऊष्मजन का सम्पर्क पाकर जलते हैं, ठीक इसी तरह से हमारे शरीर के भीतर भी यही ज्वलनशील द्रव्य इस ऊष्मजन के सम्पर्क को पाकर जला करते हैं। बाहर यह ज्वलन क्रिया एक स्थान पर होती है, किन्तु शरीर में यह क्रिया किसी एक स्थान पर नहीं होती, प्रत्युत समस्त शरीर में फैल कर एक साथ ही निरन्तर होती रहती है। ऊष्मजन में जब ज्वलन शील पदार्थों के कण स्पर्श होते हैं तब उससे ऊष्मा और शक्ति दोनों ही शरीर को प्राप्त होते रहते हैं। किन्तु जब हम उपवास करते हैं उस समय बाहर से तो आहार द्रव्य अन्दर पहुंचते नहीं। अन्दर के संचित जखीरे में से वह ज्वलन शील द्रव्य जल कर शक्ति और ताप उत्पन्न करते रहते हैं किन्तु वह संचित कोष कोई इतना बड़ा तो होता नहीं जिससे साल दो साल तक शक्ति मिल सके, इसीलिये उसमें जब कमी पड़ने लगती है तभी हमारा शरीर शक्तिहीन, बल हीन होने लगता है और इसी से धीरे २ मनुष्य क्षीण होता चला जाता है।

हमें कितने आहार से कितनी शक्ति व ताप मिलता है?

एक स्वस्थ मनुष्य प्रतिदिन दोनों समय में लगभग एक पाव के शार्करीय अर्थात कज्जलोदेत (चावल, रोटी, आलू) के रूप में खाता है और कोई १० तोला के लगभग वह अस्रजनें दाल, चना, दूध, अन्डे, मांस आदि के रूप में लेता है। और कोई ४-५ तोला के लगभग स्नेह घी, दूध, तेल, चर्बी आदि के रूप में लेता है। यही तीनों द्रव्य शरीर के भीतर जाकर ऊष्मजन का संयोग पाकर जला करते हैं। जीवन शक्ति को तो हम किसी यन्त्र से नाप नहीं सकते। उसका तो पता हमें अपने उठने बैठने, हिलने,चलने की क्रिया से लगता है। उपवास काल में जब हम हाथ पैर हिलाने में असमर्थ होते हैं तो हम कहते हैं कि हम बिना आहार के निर्बल हो रहे हैं हमारी शारीरिक क्रिया ही शक्ति का नाप बताने का पैमाना है। किन्तु इन पदार्थों के जलने से जो ताप उत्पन्न होता है उसे हम नाप सकते हैं। प्रयोगों से देखा गया है कि एक धान्य (ग्राम) जो एक माशे के लगभग होता है जब कज्जलोदेत शरीर के भीतर ऊष्मजन के सम्पर्क से जलता है तो उससे जो ताप उत्पन्न होता है वह ४·१ तपनांक (कलारी) होता है। (यह तपनांक ताप की वह इकाई है जो एक सहस्र धान्य जल का ताप एक शतांश तक बढ़ाने में व्यय होता है उसे तपनांक कहते हैं) एक धान्य अस्रजन दहन से शरीर में जो ताप उत्पन्न होता है वह भी ४-१ तपनांक होता है। इस हिसाब से मनुष्य जो कुछ खाता है इस धान्य के तोले, छिटांक बनाकर त्रिपोष्यों से जितना शरीर में ताप उत्पन्न होता है इसका योग २५०० तपनांक के समीप प्रतिदिन बैठता है। अर्थात जितना आहार नित्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम लेते हैं उससे जो ताप उत्पन्न होकर शरीर में बना रहता है उसकी मात्रा ३७शतांश या ९८.४फारन हाइट होता है। जब हम उपवास करते हैं और शरीर का संचित आहार यह व्यवस्था है कि शरीर में जब तक मांस है वह इन मांस भाग में विद्यमान अस्रजनों को तोड़ तोड़कर दहन के लिये झोंकता रहता है कि शरीर का ताप ९५ फारनहाइट से नीचे न चला जाय। जब तक शरीर में मांस भाग होता है इसकी आहुति शरीर रक्षा के लिये मिलती रहती है। यहां पर शरीर की सामूहिक रक्षा के लिये व्यक्तिरूप भी समाप्त होने पर आ जाता है, उस समय जब त्रिपोष्यों का दहन घट जाता है तो शरीर की उक्त ताप मात्रा भी घट जाती है। जब ताप घटता है तभी हमारे शरीर की स्थिति डांवाडोल होने लगती है। किन्तु हमारे शरीर में कोषा अपने को किस तरह कुर्बान करती रहती हैं यह समझने योग्य बात है। परीक्षाओं से देखा गया है कि जब कोई व्यक्ति उपवास करता है तो प्रथम ४-५ दिन के भीतर जितना भी द्राक्षोजन के रूप में शर्करा उस के शरीर में संचित होती है वह सब द्राक्षज में बदलती हुई दहन में काम आ जाती है उसके बाद फिर स्नेहों और अस्रजनों की बारी आती है। स्नेहों के दहन से जो ताप उत्पन्न होता है वह कज्जलोदेतों से दुगना होता है। जब स्नेहों का दहन होने लगता है तो उसके साथ ही कुछ न कुछ अस्रजनों का भी दहन होता ही रहता है किन्तु इस प्रकार के वसा दहन में एक त्रुटि यह रह जाती है कि इनके दहन के समय जो मध्यवर्ती द्रव्य बनते हैं वह सारे के सारे ऊष्मीकृत नहीं होते। इसीलिये रक्त में ऊष्मीनवनीताम्ल, चुक्रोचुक्रिकाम्ल, आदि अम्ल उत्पन्न हो जाते हैं। वह कई उत्प्रेरकों, ओजों, विकरों के अभाव में ऊष्मीकृत होने से रह जाते हैं। इसी से जब रक्त में अम्ल वृद्धि होती है तो इन अम्लो की वृद्धि से विषाक्तता उत्पन्न हो जाती है। तभी उपवास में उत्क्लेद, वमन, जी मचलाना आदि उपद्रव देखे जाते हैं। उस समय यदि जल में घोल कर सैंधद्विकज्जलेत (सोडा बाई कार्ब) या सैंध निम्बुएत (सोडा टारटरेट) या सैंध चिन्चेत [सोडासाइट्रेट] ले लें तो यह क्षारीय द्रव्य रक्त में पहुँचकर उन अम्लों से मिल जाते हैं और उनसे मिलकर ऐसे उदासीन लवण बना लेते हैं जो शीघ्र ही मूत्र मार्ग से निकाल दिये जाते हैं। उपवास करते समय शरीर में अम्ल बनने लगते हैं अपने आप तो यह प्रतिक्रिया होती है कि जो मूत्र में निकलने वाला मूत्रिया बनता है वह मूत्रिया जब मूत्रोत्सकाओं में पहुँचता है तो वह बाहर नहीं निकाला जाता। प्रत्युत उससे वहाँ पवनियां [अमोनियां] नामक क्षारीय द्रव्य निर्मित होता रहता है जो वहीं बनकर रक्त में मिला दिया जाता है यह पवनियां भी उन अम्लों से मिल कर शिथिल लवणों में परिवर्तित होता रहता है। इससे भी शरीर की अम्ल वृद्धि से रक्षा होती है। इसीलिये पवनिया की क्षार रक्षक कोष में गणना की जाती है। प्रयोगों से यह जाना गया है कि सैंधद्विकज्जलेत, सैंध नीबूयेत, सैंध चिन्चेत आदि द्रव्य उपवास काल में दिये जांय तो यह केवल अम्ल वृद्धि को ही नहीं रोकते प्रत्युत इनसे स्नेहों के ऊष्मीकरण में भी सहायता मिलती है। यह ऊष्मीकरण क्रिया को बढ़ा देते हैं इसी से इन विषाक्त पदार्थों के बनने की सम्भावना घट जाती है।

उपवास पर हमारा अनुभव

१९४५ में हम भूल कर कच्चे अन्डे दही के साथ खा बैठे। अन्डे में दो प्रकार की अस्रजनें होतीं हैं, एक सितिन दूसरी पितिन पीली तो हानि कर नहीं होती, किंतु सितिन आमाशय में पहुंचकर आधे घन्टे से पहले ही विकृति हो गई। इसका परिणाम उसी समय सामने आया कि हाथ की कलाई के एक सूई जितने स्थान पर दर्द होने लगा। हमने इसे अनुभव विहीन होने के कारण साधारण बात समझी और अगले दिन फिर दो अन्डे उसी तरह से कच्चे ही दही के साथ खा लिये। अभी आधा घण्टा भी नहीं व्यतीत हुआ था कि दूसरे हाथ की कलाई के एक सूई जितने स्थान पर तीव्र वेदना वाली दर्द आरम्भ हो गई। तब समझ में बात आई कि यह कष्ट जो प्रादुर्भूत हुआ बिना उबाले अण्डे के खाने से हुआ। वह दर्द ऐसी विकट थी कि किसी भी दवा से ठीक नहीं हो रही थी। दो वर्ष तक लगातार प्रयत्न करता रहा, आरम्भ में पहले आयुर्वेदिक औषधियाँ सेवन करता रहा औषधियां कहीं लेने जाना नहीं था, अच्छी से अच्छी आयुर्वेदिक औषध तयार की और लगातार १०-१०-१५-१५ दिन बराबर सेवन करता रहा किन्तु किसी से कोई लाभ न होता था। फिर यूनानी की कई औषधियां स्वयं तयार कीं और लगातार खाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा। इसके बाद अलोपैथी की बारी आई, काफी सूची भरण लिये, अनेकों दवाइयां खाईं। किन्तु मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों २ दवा की। १९४७ में जब कि देश का विभाजन हुआ था उस समय यह दर्द बढ़ कर हाथों, पैरों की सारी बड़ी २ सन्धियों में फैल चुकी थीं और उस समय मैं चलने फिरने से लाचार हो गया था। तब अन्त में शरीर शोधन का निश्चय करना पड़ा। उन दिनों लगातार दो महीने तक उपवास और नित्य ३०-३०, ४०-४० बार तक अनीमा करके पेट साफ करने का प्रयत्न करता रहा। उस समय मेरे शरीर का वजन जब मैंने उपवास आरम्भ किया था, तब एक मन बारह सेर था, और जब उपवास समाप्त किया था, उस समय ३५ सेर वजन रह गया था अत्यन्त निर्बल हो जाने पर ही उपवास त्यागा था। तब उपवास और शरीर के शुद्धि करण से ही इस व्याधि से मुक्त हो सका था।

उस समय का मेरा अनुभव यह है कि आरम्भ में जितनी क्षीणता होती है १२-१५ दिन के बाद फिर उतनी क्षीणता नहीं होती। शरीर में विशेष प्रकार का अपने आप परिवर्तन आता है और शरीर अपने को स्वयं क्षीण होने से बचाने का प्रयत्न करता है। निष्क्रिय पड़े रहना, और मन को शान्त रखना इसमें सहायक होता है। हमने तो इस सम्बन्ध में यह लेखा जोखा नहीं लिया कि उपवास काल में शरीर के कौन कौन से अंग किस अनुपात में क्षीण होते हैं। किन्तु जिन्हों ने इसका लेखा जोखा लिया है उन्होंने जो सारणी प्रस्तुत की है वह हम पाठकों की जानकारी के लिये देते हैं। २४ दिन उपवास कराने के बाद वसा रहित शरीर के भागों में जो क्षीणता हुई वह निम्न थी। अस्थियों में ५ प्रतिशत, त्वचा में २८ प्रतिशत पेशियों में ४२ प्रतिशत, मस्तिष्क और सुषुम्ना में २२ प्रतिशत, नेत्र में ३ प्रतिशत, हृदय में १६ प्रतिशत, रक्त में ४८ प्रतिशत, प्लीहा में ५७ प्रतिशत, यकृत में ५० प्रतिशत, क्लोम में ६२ प्रतिशत, वृक्क में ५५ प्रतिशत, यौन ग्रन्थियों में ४९ प्रतिशत, अन्न प्रणाली में ३२ प्रतिशत, फुप्फुस में २९ प्रतिशत। यह परीक्षण पशुओं पर किये थे और बाद में उन्हें मार कर पहले भार की अपेक्षा से यह वजन निकाले गये थे।

वास्तव में उपवास से एक बार तो शरीर में विद्यमान सारे के सारे पदार्थ जो आहार में जाते हैं वह पचने लगते हैं फिर उसके बाद बहुत कुछ आंतों में फंसे हुए, संचित हुए विकृत द्रव्य छुटते हैं। पहले आंतों में संचित या लगे पदार्थों के छुट जाने के बाद फिर रक्त में विद्यमान पदार्थों की बारी आती है। इसके बाद फिर संचित कोष में से शरीर के लिये शक्ति और उत्ताप को स्थिर रखने का प्रयत्न होता है। उपवास में जल, कुछ लवण और ऊपर वर्णित क्षारों को लेते रहने से कोई इतनी हानि नहीं होती। क्योंकि उपवास काल में उजल का पयोग आवश्यक होता है। हमारे शरीर का ६०-६५% भाग तो केवल जल का अंश ही होता है। यदि जल न लिया जाय तो कोई प्राणि १० दिन भी उपवास में नहीं काट सकता। जल लेते रहने से रक्त की द्रवता ठीक बनी रहती है। उसमें लवण और कुछ क्षार मिला देने पर रक्त की प्रगाढता बढ़ जाती है और वह उस स्थिति में आ जाता है जो उसके भ्रमण में तथा हृदय के कार्य करने में सहायता देता है। रक्त संचार ठीक बना रहे, और हृदय अपना काम उस रक्त की द्रवता पर ठीक तौर पर करता रहे तो उस दशा में किसी प्रकार के उपद्रव की सम्भावना नहीं रहती। और बहुत अच्छी तरह से मनुष्य उपवास काल को निकाल देता है। उपवास से सबसे बड़ा लाभ यही होता है कि शरीर की चलती व्यवस्था में जो व्याघात आ जाता है उससे मुक्ति मिल जाती है।

आम संधि वात की नयी औषधियां

आमबात की चिकित्सा इतनी कठिन नहीं है, किन्तु आम सन्धि वात इतना कठिन रोग है कि यह जब हो जाता है तो पीछा नहीं छोड़ता। इसका लक्षण यह है कि जब आदमी आराम से सोया होता है तो उस समय कोई तकलीफ नहीं होती, किन्तु जब नींद खुलती है तब एकाएक दर्द की तकलीफ बढ़ती है और कुछ देर तक तो अच्छा दर्द रहता है फिर सन्धियों के हिलने से कुछ देर में दर्द कम हो जाता है। किन्तु जब रोग बढ़ जाता है उस समय तो हर समय ही दर्द की तकलीफ बनी रहती है, इसमें जब रोग का जोर होता है सन्धियां जुड़ने लगती हैं अर्थात सन्धि बन्धन और सन्धि आवरक दोनों ही मिलकर ग्रन्थि का रूप धारण कर लेते हैं। हमारा अपना अनुभव है कि इस रोग की आयुर्वेद में कोई औषध नहीं है। किसी भी

[शेष पृष्ठ ४७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुविलीन के आविष्कार का इतिहास

हम जितना भी सितसारीय भोजन करते हैं या जितनी भी चीनी या मीठा खाते हैं वह सब का सब उदर में जाकर द्राक्ष शर्करा में बदलता है। खाई हुई कोई भी शर्करा जब तक द्राक्षज में न बदले तब तक वह शरीर में सात्म्य रूप को प्राप्त नहीं होती। किन्तु किसी को क्या मालूम था कि द्राक्षज की क्षय पूर्ति या सात्म्यीकरण भी किसी ओज प्रभाव के बिना पूर्ण नहीं होता। खाई हुई वस्तुओं के पचन के लिये जिस तरह से अन्न प्रणाली में कई प्रकार के विकर निकल कर उसमें मिलते हैं और उनके मिलने से ही खाद्य द्रव्यों का परिपाक होकर विपाक रस बनता है। इसी तरह से आगे भी सात्म्यीकरण के लिये शरीर के भीतर ओजों के निःस्रवण की व्यवस्था है, इसे कोई नहीं जानता था।

इससे भिन्न एक एक चीज के लिये एक एक ओज होगा, इसका भी किसी को कोई गुमान नहीं था। १९२० की बात है बैंटिंग नाम का एक डाक्टर जो पहले फौज में चिकित्सक का काम करता था, विश्व व्यापि युद्ध के समाप्त होने पर उसे उस पद से अवकाश मिल गया। तब वह ओटोरियो मेडिकल स्कूल में अध्यापक का कार्य करने लगा। किन्तु उसे अध्ययन का बड़ा शौक था, दूसरे अपने छात्रों को पढ़ाने के लिये भी तात्कालिक विषयों का अध्ययन करना पड़ता था। वह उन दिनों क्लोम ग्रन्थि के सम्बन्ध में छात्रों को समझाने के लिये अध्ययन कर रहा था।

आयुर्वेद में क्लोम के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं मिलती, "क्लोम पिपासा स्थाने" इतना ही कहा है। किन्तु आजकल के शरीर रचना विषयक ज्ञान वृद्धि के कारण क्लोम एक आमाशय के नीचे पिस्तौल के आकार की ग्रन्थि देखी जाती है जिसे यूनानी वाले लबलबा के नाम से जानते हैं। अंगरेजी में उसे पैंक्रियास कहते हैं। इस पैंक्रियास के पर्याय में हमने क्लोम शब्द को स्वीकार कर लिया है। कुछ ग्रंथकारों ने इसका नाम अग्न्याशय दिया है। हमें तो अग्न्याशय से क्लोम नाम उपयुक्त जचा है। अग्न्याशय का अर्थ है अग्नि के रहने का स्थान, यहाँ पर कोई तिल प्रमाण अग्नि तो रहती नहीं। जो इसे अग्न्याशय कहा जाय। अग्नि की कल्पना तो आयुर्वेद की थी। किन्तु अब जो कुछ प्रयोगों से पाचक द्रव्यों के रूप हमारे सामने आ रहे हैं वह अग्नि रूप को नहीं सिद्ध करते प्रत्युत सोम रूप को करते हैं। इसलिये उस ग्रन्थि को अग्न्याशय कहना भ्रम उत्पन्न करना है। क्लोम शब्द पिपासा स्थान के लिये आया है, उसे कोई कण्ठ में मानता है, कोई कण्ठ से नीचे। किन्तु स्थान निर्देश निश्चित न होने से यदि इसे नई जानी ग्रन्थि के लिये क्लोम शब्द को ले लिया जाय तो मेरी समझ में उचित किया गया है।

इस क्लोम ग्रन्थि के सम्बन्ध में जब बैंटिंग अध्ययन कर रहा था तो उस समय तक इतना ज्ञात हो गया था कि यह ग्रन्थि कुछ ऐसे रस निर्माण करती है जो आहार

[शेष अगले पृष्ठ पर]

जुकाम और फ्लू की दवा

कुछ अमेरिकन डाक्टरों ने अभी हाल में यह प्रकट किया है कि सन्तरे और निम्बू के फलों के छिलकों में एक खाद्योजांश (विटामिन) बी की तरह का एक रासायनिक पदार्थ विद्यमान रहता है जिसे वायोफ्लोवो नायट्रेटस कहते हैं। इस द्रव्य का यह प्रभाव देखा गया है कि फुप्फस की और रक्त की आन्तरिक श्लेष्मकला को सक्षम बनाता है यह तत्व शरीर में विद्यमान रहे तो वीरसाणु जन्य प्रतिरोध शक्ति बढ़ जाती है। इस पदार्थ का उस तरह से तो १९३६ में ज्ञान हो गया था और इसका यह गुण भी जान लिया गया था कि यह जुकाम आदि में लाभ करता है। किन्तु किस तरह से यह अपना लाभ दिखाता है? इसको अभी हाल में जाना जा सका है। यह खाद्योजांश श्लेष्म कला को सक्षम रखता है इसी से कला स्वयं अपना बचाव रोगों से कर लेती है। "सक्षमो विजयी भवेत्" जो बलवान होता है वही विजय प्राप्त करता है।

इसी तरह से ज्ञात हुआ है कि अद्रकरस में भी एक विशेष प्रकार का खाद्योजांश होता है जो मनुष्यों को फ्लू से बचाता है। इसके सम्बन्ध में अधिक अनुसन्धान चीन में हुए हैं। फ्लू अर्थात इन्फ्लुइन्जा में अद्रक रस और निम्बू नारंगी के छिलके का रस मिलाकर देने से जुकाम और फ्लू दोनों में लाभ होता है यह तो ऐसी दवाइयां हैं जो हर स्थान में मिल जाती है। वैद्यों को इन्हें प्रयोग में लाकर इनके फलादेश से सूचित करना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[पृष्ठ ४२ से आगे]

के भिन्न २ अंशों को पचाने का काम करते हैं। उसे अध्ययन करते हुए एक स्थान पर पढ़ने को मिला कि किसी प्रयोगशाला में कुछ कुत्तों के क्लोम काटकर निकाल दिये गये तो उन कुत्तों को मधुमेह हो गया। और वह कुत्ते इसी मधुमेह रोग से मर गये। इसी तरह एक दूसरी पुस्तक में उसने यह पढ़ा कि जर्मन के एक वैज्ञानिक लैंगर हैन नामक ने यह मालूम किया कि क्लोम के अन्दर कुछ तन्तु ऐसे होते हैं जिनमें नलिका नहीं होती, इससे अनुमान लगाया गया कि वह कोई अन्तः स्राव अवश्य उत्पन्न करते हैं। यह अन्तः स्राव किस प्रयोजन से उत्पन्न होता है लैंगर हैन को इस बात का पता नहीं चला था। उसने यह बात भी किसी प्रायोगिक पत्रिका में पढ़ी थी, कि यदि किसी कुत्ते की क्लोम ग्रन्थि की नलिका का मुख बाँध दिया जाय जिसमें से होकर ग्रहणी में उसका रस टपका करता है तो ऐसे क्लोम नलिका बंधे कुत्ते को मधुमेह नहीं होता। उसे यह ध्यान आया कि जब क्लोम काटकर निकाल देते हैं तब मधुमेह हो जाता है और जब नली बांध देते हैं तब नहीं होता तो सम्भव है लैंगर हैन के ज्ञात किये तन्तु कोई अन्तःस्राव उत्पन्न करते हों और उस अन्तःस्राव से मधुमेह का सम्बन्ध हो। उन्हीं दिनों बैंटिंग को एक मासिक पत्र में क्लोम और मधुमेह के सम्बन्ध में एक लेख पढ़ने को मिला, उसमें लिखा था कि यदि किसी व्यक्ति को पित्ताश्मरी हो जाय तो उस पित्ताश्मरी का यह प्रभाव क्लोम पर पड़ता है कि उसके स्राव को वह अश्मरी दबाव डालकर रोक देती है और उसका स्राव बन्द हो जाता है। क्लोम का स्राव बन्द होने पर उस रोगी को मधुमेह तो नहीं होता, किन्तु उस कष्ट से ही रोगी कुछ दिन में मर जाता है। उस पत्रिका में यह भी उल्लेख था कि उस आदमी की जब शव परीक्षा की गई तो क्या दिखाई दिया कि इस अश्मरी की बाधा से उसका क्लोम सूख गया था, किन्तु लैंगरहैन ज्ञात तन्तु बिलकुल स्वस्थ थे। इससे उसे निश्चय हो गया कि मधुमेह से इन लैंगरहेन ज्ञात तन्तुओं का अवश्य गहरा सम्बन्ध है। अब उसे इस पर प्रयोग करके देखने की सूझी। उस पत्रिका में जिसका लेख था उसके लेखक का नाम था बेरन मोजेज इसी व्यक्ति का अगली पत्रिका के अंक में दूसरा लेख पुनः इसी विषय पर था जिसमें उसने एक कुत्ते पर अपने निम्न प्रयोग का उल्लेख किया था, कि एक कुत्ते का पेट चीरकर उसके क्लोम प्रणाली की स्राव नली को बांध दिया था और दो महीने बाद उस कुत्ते को मारकर उस कुत्ते के क्लोम की परीक्षा ली थी, कि वह किस दशा में है। उसने देखा था कि नली बांध देने से क्लोम तो सूख गया है किन्तु लैंगर हैन ज्ञात तन्तु बिल्कुल ही स्वस्थ थे। इससे यह इस निश्चय पर पहुँच गया कि क्लोम के लैंगरहैन ज्ञात तन्तु स्वस्थ दशा में हैं, इन्हीं से मधुमेह का अवश्य सम्बन्ध है। इस लेख से अब उसे प्रयोग करने की सूझी कि इसे स्वयं जांचा जाय। क्योंकि बेरन मोजेज ने अपने लेख में इस बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया था कि, जिस कुत्ते पर उसने परीक्षा की थी उसने यह भी देखा था कि उस कुत्ते को मधुमेह दो महीने तक क्लोम के बंधे रहने पर नहीं हुआ था। उसने इस बात का भी अपने लेख में उल्लेख किया था कि क्लोम अवश्य ही कोई ओज उत्पन्न करता है जो रक्त में विद्यमान शर्करा को पचाता है। इससे उसे निश्चय हो गया था कि क्लोम के लैंगर हैन ज्ञात तन्तुओं से रक्त के शर्करा के पचन का निश्चित सम्बन्ध है।

इस पर प्रयोग करने का उसने निश्चय करके टारंटो विश्व विद्यालय के भौतिकीय प्रयोग विभाग के प्राध्यापक प्रो० मैक्लि ओड से जाकर मिला और उससे प्रार्थना की उसे कुछ कुत्ते प्रयोग के लिये दिये जांय। उसने प्रयोग का कारण पूछा, कि किस बात पर प्रयोग करना चाहते हो? बैंटिंग ने प्रोफेसर साहब को सारी बात बता दी, कि हम क्लोम पर लैंगर हैन ज्ञात कोषाओं के सम्बन्ध में परीक्षा करना चाहते हैं। वह भी डाक्टर था, किन्तु बैंटिंग के कथन पर उसे कोई विश्वास नहीं जमा। क्योंकि इस बात पर उसने कुछ भी नहीं पढ़ा था। फिर भी उसने अपनी प्रयोगशाला में रखे गये १० कुत्तों को परीक्षा के लिये देने का आर्डर दे दिया। बैंटिंग के पास जो छात्र पढ़ते थे, उनमें एक छात्र चार्ल्स बेस्ट था, जिसे प्रयोग करने का बड़ा शौक था, इसी से वह प्रायः रक्त मूत्र आदि की खूब परीक्षा किया करता था और वह रक्त मूत्र में विद्यमान शर्करा की परीक्षा अच्छी तरह से कर लेता था उसे डाक्टर बैंटिंग ने अपना सहायक चुना। उन दोनों ने मिलकर एक कुत्ते का पेट चीरकर ग्रहणी में गिरने वाले स्राव की नली का मुख बांध दिया। इस तरह उसने दस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुत्तों के पेट चीर कर सबके क्लोम नलिकाओं को बांध कर फिर सबों के पेट सी दिये वह कुत्ते दो सप्ताह में ठीक हो गये और खाने पीने लगे। दो महीने बाद डाक्टर साहब ने उन कुत्तों के फिर पेट चीरकर के देखा कि क्लोम में क्या परिवर्तन हुआ है। उन्होंने जब पेट चीरकर क्लोम देखे तो कुछ के क्लोम स्वस्थ दशा में मिले, कुछ के क्लोम में विकार आ गया था और वह सूखने लग रहे थे। उसने फिर इन्हें देख दाख कर के जिनके क्लोम ठीक थे उनकी स्राव नलिकाओं को और अच्छी तरह से बांधकर फिर सबके पेट सी दिये, दो सप्ताह के भीतर ही वे कुत्ते फिर ठीक हो गये। दो महीने के बाद उन कुत्तों के फिर पेट चीरकरके उसने उनके क्लोमों की फिर जांच की, तो देखा कि सबके ही क्लोम मुर्झा गये हैं, किन्तु लेंगरहैन ज्ञात तन्तु सबों के ठीक स्वस्थ दशा में हैं उसने चार कुत्तों के लेंगरहैन तन्तु काट कर निकाल लिये और उन सबों के पेट फिर सी दिये। जिन तन्तुओं को उसने काटकर निकाल लिया था, उनका उस ने लवण घोल के योग से सत्व निकाला और उसे अपने पास सुरक्षित रख लिया। जिन कुत्तों के लगरहैन तन्तु काटे गये थे, उन सबों को मधुमेह हो गया। उनके मूत्र में काफी मात्रा में शर्करा जा रही थी, जिन कुत्तों को मधुमेह हो गया था उसने क्या किया कि वह निकाले हुए सत्व को सूची भरण विधि से कुत्ते के पेट में उसने उसे पहुँचाया। जो कुत्ता मरने ही वाला था उसको यह सूची भरण जब दिया गया था वह चेतन्य हो गया। उसने उस कुत्ता को सूची भरण देने के एक घन्टे बाद ही उसका रक्त निकालकर उसमें विद्यमान शर्करा की परीक्षा ली इस कुत्ते की रक्त की शर्करा सूचीभरण देने से पहले भी उसने देख ली थी, उस समय ५ प्रतिशत से ज्यादा थी। किन्तु सूई लगने के एक ही घण्टा बाद जब रक्त की पुनः परीक्षा ली तो रक्त में शर्करा का नाम तक न था। यह परिणाम देखकर वह उछल पड़ा और बड़ा खुश हुआ कि मैं तथ्य तक पहुँच गया हूँ। उसने फिर बाकी उन तीनों कुत्तों को जो मधुमेह से पीड़ित होकर मर रहे थे, उस निकाले सत्व के सूचीभरण दिये, सबको लाभ हुआ, और वह कुत्ते फिर स्वस्थ होने लग गये और खाने पीने लगे। तब वह पूर्णतया इस निश्चय पर पहुँचा कि शर्करा का शरीर में सात्म्यीकरण इसी क्लोम ग्रन्थि के अन्तःस्राव से होता है। उसने फिर कुछ कुत्तों के क्लोम से लेंगरहैन तन्तु काटकर फिर निकाले और उसका सत्व निकाला और उसे एक मधुमेही व्यक्ति को गुप्त रूप से सूचीभरण दिया और उसके मूत्र तथा रक्त की जब दो घण्टे के बाद परीक्षा ली तो न उसे मूत्र में शर्करा मिली न रक्त में। प्रत्युत इससे वह रोगी लाभ का अनुभव करने लगा इस आविष्कार से उसकी खुशी का ठिकाना न रहा उसने इस क्लोम से निकाले सत्व का नाम आईलेटिन (Isletin) रखा, उसने फिर इस सत्व का परिणाम देखने के लिये उसका सूचीभरण अपने शरीर में लिया किन्तु उसको कोई बुरा परिणाम नहीं दिखाई दिया इससे उसे निश्चय हुआ कि यह निरापद सत्व है। उसने फिर १० जनवरी १९२२ को एक कुत्ते का क्लोम काटकर निकाल दिया और उस पर उसने परीक्षा की देखा कि इस कुत्ते को मधुमेह हो गया है, उसे आईलेटीन के सूचीभरण देने लगा। ७५ दिन तक वह उस कुत्ते को जीवित रख सकने में समर्थ रहा। इसके बाद तो उसने कई मधुमेह पीड़ित रोगियों पर प्रयोग करके आशातीत सफलता प्राप्त की। एक दिन प्रो० मैक्लिओड को धन्यवाद देने के लिये उनके मकान पर गया और परीक्षा के लिये जो कुत्ते दिये थे, इसके लिये उनको बहुत बहुत धन्यवाद दिया। उनके पूछने पर अपने प्रयोग का सारा विवरण उन्हें उसने सुना दिया। किन्तु उसे बैंटिंग पर अधिक विश्वास नहीं हुआ क्योंकि वह कोई प्रसिद्ध प्रयोग कर्ता नहीं था, साधारण डाक्टर था, वह भी स्कूल में अध्यापक के रूप में काम करता था। इसके कुछ दिन बाद ही वाले विश्वविद्यालय में चिकित्सकों की बहुत बड़ी कान्फ्रेन्स हुई। जिसमें दूर २ से बड़े बड़े चिकित्सक आये हुए थे। वहाँ बैंटिंग भी पहुँचा और वहाँ उक्त विषय पर बोलने का समय ले लिया, किन्तु अच्छा वक्ता न होने के कारण वह अपने प्रयोग विषय का अच्छी तरह से स्पष्टीकरण न कर सका। इसीलिये श्रोताओं ने उसके प्रयोग की सत्यता पर अधिक विश्वास न किया।

इधर प्रो० मैक्लिओड का एक सहायक जो उन चिकित्सकों की कान्फ्रेंस में गया था वहाँ उसने बैंटिंग के दिये व्याख्यान का जिकर किया तो उन्हें ध्यान आया कि उसके प्रयोगों में अवश्य कुछ सत्यता है। इसीलिये उन्होंने स्वयं इस पर प्रयोग करने का निश्चय किया। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोगशाला में तो काफी कुत्ते तथा अन्य प्राणि थे, वह अपने सहायकों के साथ इस अनुसन्धान में लग गये। प्रयोग की सत्यता में तो कोई बात सन्देह वाली न थी, थोड़े ही दिनों में उन्हें पता चल गया कि क्लोम के लैंगरहैन ज्ञात तन्तुओं में अन्तःस्रावी ओज बनता है जिसे उन्होंने अम्ल युक्त हलाहल मिश्र के मिश्रण द्वारा भिन्न कर लिया था, और कई क्लोम निकाले कुत्तों पर जिन्हें मधुमेह हो गया था उन पर सूची भरण से प्रयोग किया। बस, सबों को मधुमेह में लाभ हुआ। फिर उन्होंने मनुष्यों पर प्रयोग किया और वहाँ भी उन्हें चमत्कारी लाभ दिखाई दिया। तब उन्होंने इसका नाम इन्सुलीन रखा बड़ों की ही सब जगह पूछ होती है, छोटे को कौन पूछता है। बैंटिंग का रखा नाम प्रचलित नहीं हुआ। किन्तु प्रो० मैक्लिओड का नाम रखा हुआ प्रचलित हो गया। क्योंकि वह अच्छे वक्ता थे और कुछ ही दिन बाद वह अमेरिका गये. और वहां जाकर उन्होंने चिकित्सकों की एक कान्फ्रेंस में बड़ी योग्यता से उस आविष्कार का जिकर किया और उसका आविष्कारक अपने को बताया। इसी से उनका रखा नाम प्रचलित हो गया। उन्होंने बैंटिंग की बावत वहां इतना तो जिकर जरूर किया कि वह हमारे नीचे काम करने वाला एक सहकारी डाक्टर है। जिसकी सहायता इस आविष्कार में मिली। चूंकि इससे पहले ही बैंटिंग वाले विश्वविद्यालय में अपने आविष्कार के सम्बन्ध में स्वयं जाकर व्याख्यान दे आया था जहाँ पर उसने अपने को ही इस इन्सुलीन का आविष्कारक सिद्ध कर चुका था, वह बात अनेकों चिकित्सकों के कानों में पड़ चुकी थी। प्रो० मैक्लिओड का वक्तव्य जब इग्लेंड के पत्रों में प्रकाशित हुआ तो कोनाट प्रयोग शाला के अधिकारियों ने जब वह वक्तव्य पढ़ा, उनमें से एक अधिकारी उस वाले विश्वविद्यालय के चिकित्सकों की कान्फ्रेंस में भी गया था और उसने बैंटिंग का वह व्याख्यान सुना था। उसने प्रयोग शाला के मुख्य अधिकारी को बताया कि इन्सुलीन का आविष्कारक प्रो० मैक्लिओड नहीं है, न बैंटिंग उसका सहकारी रहा है। वास्तव में इसका आविष्कारक बेंटिंग और उसका सहायक चार्ल्सवेस्ट है। इन दोनों ने मिलकर यह आविष्कार किया है और इन्होंने इसका नाम आइलेटीन रखा था। जब इस मुख्य अधिकारी को इस बात का सही ज्ञान हुआ तो उन्होंने बैंटिंग और चार्ल्सवेस्ट को अपनी प्रयोगशाला में बुला लिया और उन्हें प्रयोग के लिये पूरी सुविधा देकर वहां अच्छे पद पर नियत कर दिया। वहाँ आकर उसने प्रयोगशाला की ओर से बूचड़ खानों से काफी मात्रा में क्लोम नित्य ही प्राप्त करके उसमें से मधुविलीन ओज निकालने और अधिक जन समाज को लाभ पहुँचाने का उपक्रम किया। फिर क्या था, अगले वर्ष ही अर्थात् १९-२३ से ही विलायत में कई कम्पनियां और प्रयोग शालाएं इस ओज को निकालने और बेचने का काम करने लग गई। बैंटिंग यह चाहता तो वह अपने आविष्कार का पेटेन्ट ले सकता था। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। पर अधिक काल तक वह व्यक्ति वैज्ञानिक जगत से छिपा न रहा। और उसके इस काम को देखकर फिर टोरन्टो विश्वविद्यालय वालों ने उसे अपने विश्वविद्यालय का प्रोफेसर बना दिया। और उसी साल बैंटिंग तथा मुफ्त से ख्याति प्राप्त करने वाले प्रो० मैक्लिओड को आधा आधा नोवल पुरस्कार मिला। प्रोफेसर इस पुरस्कार का वास्तव में अधिकारी नहीं था प्रत्युत बैंटिंग का सहायक वेस्ट था। किन्तु बैंटिंग ने अपने हिस्से में से वेस्ट को भी कुछ रकम दी।

यद्यपि इस समय मधुविलीन कृत्रिम रासायनिक विधि से बन कर यह बाजार में आ गई है किन्तु आज भी कई कम्पनियां बैंटिंग की आविष्कृत विधि से ही मधुविलीन तयार करके हजारों मधुमेहियों को जीवन प्रदान कर रही हैं।

हमारे देश में भी टाटा कम्पनी ने बंगलौर की सरकारी विज्ञान संस्था को १९४६ में काफी धन देकर मधुविलीन तयार करने के लिए उत्साहित किया था, किन्तु उक्त संस्था ने अब तक इस ओर कितना कार्य किया और वह देश के लिए कितना मधुविलीन तयार करके दे रही है कुछ ज्ञात नहीं हो सका। इन्सुलीन की कहानी वैद्य समाज के सामने मैंने इसलिये रखी है कि वह देखें संसार में आविष्कार का कार्य किस तरह से चल रहा है और वैद्य समाज किस तरह से इन आविष्कारों का तमाशा देखता है किन्तु यह योग्यता सम्पादन करने की चिन्ता नहीं करता। कितने दुःख का विषय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुरासानी अजवायन

यह काकमाच्यादि वर्ग की वनस्पति है। हमारे यहाँ इसे पारसीक यवानी नाम दिया है। आयुर्वेद में इसका उपयोग बहुत कम ही हुआ है। यूनानी में इसका उपयोग अधिक हुआ है और अलोपैथी में तो इसका उपयोग खूब हुआ है।

उत्पत्ति स्थान—यह यूरुप में सायबेरिया, एशियामाइनर, खुरासान, काकेशिया, ईरान, अमेरिका आदि सारे योरुप में होती है हमारे यहां भी यह हिमालय की पर्वत शृंखला से जम्बू, कश्मीर, लदाख, गूरिकोट लेह, पहल गाँव, गुलमर्ग, अनन्तनाग, बारामूला, विलोचिस्तान आदि स्थानों में उगती है। अब तो जम्बू कश्मीर रियासत की ओर से इसकी खेती भी की जाती है। क्योंकि इसकी विलायत में मांग रहती है। इसके पौधे दो प्रकार के हैं एक वार्षिक दूसरे द्विवार्षिक। वार्षिक पौधा तो तीन फुट ऊंचा और शाखें पतली होती हैं द्विवार्षिकी पौधा इससे बड़ा उसके तने मोटे और ज्यादा शाखाओं वाले होते हैं। यह आठ हजार से लेकर ११ हजार फुट की ऊंचाई पर होता है। इसके बीज को तो यूनानी वाले प्रयोग में लाते थे, किन्तु अलोपैथी वालों ने विश्लेषण करके देखा कि इसके पत्तों में एक विशेष क्षारसमोद (अल्कलाइड) होता है जिसका नाम पारस्यीन हायोसायमीन है। यह द्रव्य बड़ा ही प्रभावशाली है। इसकी रासायनिक रचना धतूरीन (एट्रोपीन) से मिलती है, इसके त्रिपार्श्वाकार, मणिभीय, सूच्याकार रवे होते हैं और धतूरिन वत् ही नेत्र की कनीनिका को प्रसारण करते हैं। वेदना हर औषध के रूप में इसका अधिक उपयोग होता है। आमवात, गृध्रसी और वातरक्त जैसे रोगों की वेदना में इसका अधिक उपयोग होता है। जब इस पर फूल आते हैं उन दिनों इसके पत्ते और फूल का झुमका तोड़कर उसे सूंघ लेते हैं। इन पत्तियों में क्षारसमोद की मात्रा ०·०४ प्रतिशत होती है यह नशीली होती है, इसीलिये युनानी वाले इसे स्तम्भक औषधियों में अधिक उपयोग करते हैं।

सितसार निकलना

वैद्यों से छिपा नहीं कि हम सब गिलोय का सत, अदरक का सत आदि निकालते हैं हरी गिलोय को कूटकर के उसे पानी में डाल देते हैं और उसे हाथों से खूब मलते हैं फिर उस छने हुए पानी को थिर होने के लिए रख देते हैं। कुछ देर के बाद नीचे तह में सफेद २ जो सत बैठ जाता है वही वास्तव में सितसार या मंड होता है। यह सितसार हमारे भोजन में त्रिपोष्यों में से एक है जिसे हम रसायन शास्त्र की परिभाषा में कज्जलोदेत या शार्करी पदार्थ कहते हैं। यह सितसार गेहूँ के आटे में, यवमें, चावलों में, सबमें होता है। गेहूँ में से इसे इस तरह से निकालते हैं कि गेहूँ को चार-पांच दिन भिगो कर रखते हैं, फिर तीन चार दिन के बाद गेहूँ का छिलका नरम हो जाता है तब उसे कपड़े की पोटली में बांध करके खूब जोर से दबाकर मलते हैं इससे दाने पिस जाते हैं और उसका सत दाने से बाहर निकल आता है। उसे खूब खुले पानी में मलते हैं इससे वह सत पानी में घुलकर नीचे बठता चला जाता है जब सारा सत उसका निकल आता है पानी निकालकर उसे सुखा लेते हैं उसे ही निशास्ता कहते हैं इसी तरह से आलू, शलगम, टेपियोका, शकरकन्दी, आम की गुठली, केले के तने से भी इसी तरह से इस सत को निकालते है। इस सत से ही मिलों में कपड़ों पर माड़ी दी जाती है और इसी से सन्धान द्वारा विकर प्रभाव से द्राक्षशर्करा बनाई जाती है जो ग्लुकोज के नाम से बाजार में बिकती है जिसे हम बीमार को हल्की गिजा के रूप में देते हैं। इसीलिये इस सितसार को निकालने के लिये इस समय बड़ी २ मशीनें लग गई हैं, जिनसे टेपियोका, शकरकन्दी आदि को मशीनों से कुचलकर और मशीनों के द्वारा उन्हें घोलने और फोग भिन्न करने तथा छानने की सारी प्रक्रिया अब अपने आप होती रहती हैं।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[शेष पृष्ठ ३६ का]

इससे भिन्न उन लोगों का रहन सहन बहुत निम्न कोटि का, गन्दा था, सफाई नाम को नहीं थी, खान, पान भी निकृष्ट श्रेणी का था, तभी उनके परिवार में कई कई आदमी पांच सात वर्ष में ही यक्ष्मा के शिकार होकर संसार से कूच कर गये।

आज संसार में यक्ष्मा के लिये जो सेनीटोरियम साधारण अस्पतालों से भिन्न खोले जा रहे हैं उनका अभिप्राय भी यही है कि इस रोग के रोगी के लिए स्वच्छता की विशेष व्यवस्था करनी पड़ती है। किसी भी यक्ष्मा के अस्पताल में आप चले जांय तो वहां आप देखेंगे कि रोगी को बात करते समय यह हिदायत की गई होती है कि किसी से बात करते समय अपने मुंह के आगे कपड़ा रख कर दूसरे आदमी से बात करो, ताकि मुंह की हवा दूसरे आदमी को न लगे। सेनीटोरियम में सबसे अधिक ध्यान सफाई की ओर रहता है। अनेक देशों में जहां पर सफाई की अच्छी व्यवस्था है, बाजार में कहीं मक्खी दिखाई नहीं देती, मकान भी स्वच्छ साफ सुथरे हैं, वहां उन देशों में यह मूंजी रोग इतना घट गया है कि हजारों में आपको एक भी रोगी वहां नहीं मिल सकेगा। यह जीवाणु कीटाणु इतने छोटे जीव हैं, जिन्हें हम अपनी नंगी आँखों से नहीं देख सकते। न इनके आने जाने को ही हम जान सकते हैं। हमारे यहां निशाचर इन्हें कहा गया है अर्थात् अन्धेरे में रहने वाले और अन्धेरा जिनको प्रिय है प्रकाश से इनको द्वेष है, इसलिये इन अदृश्य निशाचरों से बचने का एक ही तरीका है कि कहीं भी अन्धकार न रहने दिया जाय। जहां पर अन्धकार न होगा वहां यह निशाचर भी नहीं होंगे।

इस समय भारत में यक्ष्मा रोग जितना अधिक फैला हुआ है इतना किसी भी देश में नहीं फैला। चीन में भी था, किन्तु वहां आपने पढ़ा होगा कि मक्खी मार आन्दोलन इतने जोर से चला कि थोड़े ही दिनों में वहां मक्खियों का नामोनिशान मिटा दिया गया। यहां के लोगों ने चीन वालों की खिल्ली उड़ाई। पर वह जब इस रहस्य को ही नहीं जानते तो उनके लिये ऐसे काम मजाक ही हो सकते हैं। भारतवासी अभी स्वास्थ्य के रहस्य को नहीं जानते। वरना मक्खीमार जैसे आन्दोलन से जितना अधिक मनुष्य बीमारी से बच सकता है इतना किसी से नहीं। क्योंकि मक्खियां केवल यक्ष्मा रोग ही नहीं फैलातीं, प्रत्युत इससे हैजा, पेचिस, अतिसार, मन्थर ज्वर (टाइफाइड), सन्तत ज्वर (टाइफस) आदि कई संचारी रोग फैलाती हैं। इसलिये ही तो चीन ने जो निश्चय किया था वह देश के स्वास्थ्य हित के लिये किया था। अभी पिछले वर्ष ही वहां यह आन्दोलन आरम्भ हुआ था किन्तु इसका देश व्यापि परिणाम कोई दो चार महीनों में दिखाई देने वाला नहीं है। कुछ समय में ही इसका परिणाम भी सामने आ जायगा।

क्षय रोग की चिकित्सा

इस समय तो इसकी एक ही औषध स्ट्रेप्टोमायसीन निकली है। यह अमोघ तो नहीं, किन्तु इससे ५० प्रतिशत रोगी अवश्य ठीक हो जाते हैं। जिस रोग को असाध्य माना जाता हो उस रोग के यदि ५० प्रतिशत रोगी बच सकें तो यह बड़ी बात है।

[शेष पृष्ठ ४१ का]

औषध से इसमें यत्किंचित लाभ नहीं होता। अलोपैथी में भी कोई औषध नहीं थी, पर अब आकर कई औषधियों का आविष्कार हो गया है। वृक्कोपरि ग्रन्थि का ओज जो कार्टीजोन के नाम से प्रसिद्ध हो चुका है उससे भी अच्छी दो नई औषधियों अभी थोड़े दिन हुए अमेरिका में आविष्कृत हुई हैं। इन नई औषधियों का नाम है मैटाकार टैन्डरालोन दूसरी का नाम है मैटाकार टेन्डर.सीन। इन दवाओं को लगातार भयंकर सन्धिवात के रोगी को तीन मास तक सेवन कराने पर चमत्कारी लाभ देखा गया है। जिनकी सन्धियां जुड़ गई थीं, वह भी खुल गई। दूसरे इन दवाइयों की खुराक इतनी छोटी है कि रत्ती का १६ वां भाग से भी कम। संसार में किस तरह से अनुसन्धान हो रहे हैं नित्य ही कोई न कोई आविष्कार होते रहते हैं। आयुर्वेद में भी आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व आविष्कार होते थे, पर आज तो वैद्य समाज मुर्दा हो गया है। इस तीन चार शताब्दियों से तो आविष्कार का यहां नाम ही रह गया है। जो वैद्य कोई नई औषध मालूम भी कर लेता है वह अपने पुत्र को भी बतलाने के लिए तयार नहीं होता। जिस समाज में ऐसे विचारशील व्यक्ति हो जाते हैं यह निश्चय है कि उस समाज में रहा सहा ज्ञान भी उन व्यक्तियों के साथ ही चला जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४३वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन स्थगित

४३वें अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्वागत समिति की ओर से निम्न सूचना प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई है।

हमें यह सूचित करते हुए हार्दिक खेद है कि वैद्य मोहनलाल पुरुषोत्तमदास गुप्ता, ने बम्बई न्यायालय में प्रार्थना-पत्र देकर महासम्मेलन की स्थायी-समिति और ४३वें अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलनाधिवेशन (जो २२, २३, २४ तथा २५ फरवरी १९५९ को श्री महासम्मेलनाध्यक्ष की अनुमति से देहली में सम्पन्न हो रहे थे) को न्यायालय के स्थगनादेश (इजंक्शन आर्डर) द्वारा स्थगित करवा दिया है। इसी प्रकार का एक अभियोग देहली के न्यायालय में नागपुर के गुलराज शर्मा तथा ज्वालाप्रसाद ने भी किया है।

अधिवेशन स्थगित होने से आपको जो असुविधा हुई है उसके लिए हम विवश हैं तथा दुःख अनुभव करते हैं। अधिवेशन की भावी तिथियों से आपको यथावसर सूचित कर दिया जावेगा। भवदीय

कविराज वैद्यनाथ सरकार — वैद्य ओंकार प्रसाद शर्मा
स्वागताध्यक्ष — स्वागत मंत्री

कार्यालय मंत्री—कविराज आशुतोष मजुमदार

नोट—इस सम्बन्ध में बाद में प्राप्त हुए समाचारों से विदित हुआ है कि स्वागत समिति के अध्यक्ष महोदय ने महासम्मेलन प्रधान को पत्र लिखा है जिसमें २९-३०-३१ मार्च को सम्मेलन का अधिवेशन दिल्ली में करने की स्वीकृति उनसे मांगी है। महासम्मेलन स्थायी समिति की एक बैठक ५ मार्च को नागपुर में बुलाई गई है जिसके एजेण्डा में उक्त तिथियों की स्वीकृति का विषय भी सम्मिलित है। तिथियों का अन्तिम निर्णय स्थायी समिति की स्वीकृति के बाद ही घोषित किया जायगा।

—सम्पादक

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्य समिति का अधिवेशन

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की नव निर्वाचित कार्य समिति का प्रथमाधिवेशन श्रीमाधव आयुर्वेदिक चिकित्सालय जोधपुर में दिनांक २५ जन० ५९ को श्री आचार्य नित्यानन्दजी के सभापतित्व में प्रारम्भ हुआ। राज्य के विभिन्न जिलों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। उदयपुर के श्री महन्त श्री गंगादास जी के स्वर्गवास पर शोक प्रस्ताव के बाद निम्न महत्वपूर्ण निर्णय हुए।

१. सम्मेलन के स्थायी कार्यालय के लिये भूमि अधिग्रहण करने के लिए वैद्यराज मोहनलालजी आयुर्वेदाचार्य संयुक्त मन्त्री के संयोजकत्व में तथा अर्थ संग्रह के लिये वैद्यराज सीतारामजी मिश्र, उपाध्याय के संयोजकत्व में उप समितियां बनीं।

२. आयुर्वेदोन्नति के लिये सरकार के पास भेजे जाने वाले प्रस्तावों को क्रियान्वित कराने के लिये वैद्य राज श्री बहादुरसिंह जी एम० एल० ए० के संयोजकत्व में उप समिति बनी।

३. सम्मेलन की जिला सभाओं का संगठन और भी दृढ़ करने का निश्चय हुआ।

४. भारत विख्यात वैद्यराज श्री मणिरामजी महाराज की हीरक जयन्ती मनाने के सम्बन्ध में एक समिति का निर्माण हुआ।

५. राजस्थानी बनौषधियों का निघंटु शास्त्र ग्रन्थ बनाया जाय।

६. स्त्रियों में आयुर्वेद शिक्षा को प्रोत्साहन देने के उपायों पर विचार हुआ।

७. राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन पत्रिका को आत्म निर्भर बनाने के लिए कविराज परमानन्द जी शर्मा आयुर्वेदाचार्य के संयोजकत्व में एक समिति बनाई गई तथा सम्पादक मंडल के परामर्श से पत्रिका को उन्नत करने का निश्चय हुआ।

८. आयुर्वेदीय वातावरण के लिये श्री अध्यक्ष महोदय प्रदेश के विभिन्न भागों का दौरा करेंगे।

९. कार्य समिति का द्वितीयाधिवेशन दिल्ली में तथा तृतीयाधिवेशन बाली में होगा।

१०. निर्णय हुआ कि नि भा० आयुर्वेद महा सम्मेलन को आगामी अधिवेशन उदयपुर में करने का निमन्त्रण भेजा जाये।

प्रधान मन्त्री,
राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषध निर्माण की मशीनें

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। छोटे बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन भट्ठियों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सकते हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीनों में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभाव शीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं:-

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

पता—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

६०-६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

विश्व विज्ञान

[श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी की नवीन कृति]

दर्शन और विज्ञान का समन्वयात्मक ग्रन्थ। पृष्ठ संख्या २५०, मूल्य ३)।

सृष्टि रचना का जो क्रम सांख्य दर्शन में वर्णित है उसकी तह तक विज्ञान वादी कैसे पहुँचे? वास्तव में जो सृष्टि क्रम चला, उसे प्रत्यक्ष साधनों से कैसे देखा व जाना गया? इस विषय का ग्रन्थ में विस्तार से विवेचन किया गया है। वैद्यों को नव्य ज्ञान से शून्य नहीं रहना चाहिये। वस्तु स्थिति का जो प्रत्यक्ष निदर्शन हुआ है उसे हृदयंगम करना चाहिये। आयुर्वेद से इस विषय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिये यह विषय पठनीय ही नहीं मननीय भी है।

घुमक्कड़ स्वामी

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी महाराज का जीवन चरित्र

[ले० महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी]

साधु बन कर योगाभ्यास की लगन में किसी पहुँचे योगी की खोज में किस तरह हिमालय की कंदराओं में कैलाश मानसरोवर तक उन्हें ढूंढते फिरे? किस तरह योगाभ्यास में रमे और विघ्न पड़े? किस तरह फिर वैद्य बन कर हिमालय में जड़ी बूटियां ढूंढते फिरे? फिर बिना पूंजी के लक्षाधीश बनने की अभिलाषा लेकर फार्मेसी की स्थापना की। इन सब बातों का अत्यन्त रोचक वर्णन विश्व विख्यात लेखक श्री राहुल जी की ओजस्विनी लेखनी द्वारा अंकित इस पुस्तक में पढ़िये। १५वर्ष वैद्य बनकर घुमक्कड़ जीवन में जो अनेक देशाटन के समय उन्हें अनेक चमत्कारिक योग साधु सन्तों एवं रसायनियों से प्राप्त हुए थे, वे योग भी इस ग्रन्थ के अन्त में स्वामी जी ने प्रकट कर दिये हैं। मूल्य केवल ३)।

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसायन)

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर और योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आया है। इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी है जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण की औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावित कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कुछ अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बनाई जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु. नपुन्सकता, मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुप्फुस एवं हृदय के कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इस का मुख्य गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग से, जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर की कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्बल विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पुनः बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर और अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है। जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों एवं वृद्धावस्था में होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटिका विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ नहीं करती। दो गोली प्रातः सायं २-३ मास तक निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन करने योग्य ५ तोला गोली के पैकट का मूल्य केवल ५) हैं। पैकिंग डाक खर्च भिन्न।

पता---मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

६०--६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६ चैत्र सम्वत २०१६ सं० ...

अप्रैल १९५९

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. सावधान ! संगठन के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता ४९
२. पं० शिवशर्मा महामण्डल की अन्त्येष्टि करने पर तुला है ५०
३. अद्भुत पेंन्सिलीन ६१
४. शिवशर्मा भुक्त भोगी कैसे बना ? ६२
५. पक्षाघात की अपूर्व दवा ६३
६. बहरों को भी शल्य चिकित्सा से सुनाई देने लगा ६३
७. प्रतिश्याय के कारण का प्रत्यक्ष ज्ञान ६४
८. साहित्य समालोचना ६५

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाइवड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न ए रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्र और उत्तर छापे जायेंगे।

मैनेज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

शिवा गुटिका

(जीर्ण और वृद्ध रोगियों के लिये दिव्य रसाय

यह योग चक्रदत्त भैषज्य रत्नाकर औ योगरत्नाकर ग्रन्थों में रसायनाधिकार में आ है। इस योग का प्रमुख द्रव्य शिलाजीत सूर्यतापी जिसे कई वनस्पतियों और जीवनीय गण क औषधियों द्वारा ग्रीष्म काल की आतप में भावि कर उसकी मलाई उतारी जाती है। पश्चात कु अन्य औषधियां मिला कर इस की गुटी बना जाती है।

शास्त्र में इसे आमवात, यक्ष्मा, पाण्डु. नपुन्सकत मृगी तथा शिर, नेत्र, कण्ठ, फुप्फुस एवं हृदय कई रोगों में लाभकारी लिखा है। इस का मुख गुण रसायन है। अर्थात् किसी भी जीर्ण रोग जरावस्था में अथवा किसी भी तरह जब शरीर क कार्य व्यवस्था बिगड़ जाय, शरीर की कोषायें निर्ब विकृत हो जायें तो यह औषधि स्वास्थ्य को पु बिल्कुल ठीक कर देती है, ऐसा अपने पर औ अन्य रोगियों पर इसे प्रयोग करके हमने देखा है जीर्ण रोगों से पीड़ित रोगियों एवं वृद्धावस्था होने वाले विकारों तथा दुर्बलता में तो यह गुटि विशेष रूप से लाभप्रद रसायन सिद्ध हुई है।

रसायन औषध दो चार दिन खाने से लाभ न करती। दो गोली प्रातः सायं २-३ मास त निरन्तर खानी चाहिये। एक मास सेवन कर योग्य ५ तोला गोली के पैकट का मूल्य केवल ५ हैं पैकिंग डाक खर्च भिन्न।

पता-मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मे

६०--६१ अकालीमार्केट, अमृतस

अथवा—लाला बावली दिल्ली।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ६ | चैत्र २०१६ वि०, अप्रैल १९५९ ई० | अंक ४

सावधान ! सावधान ! सावधान !!

संगठन के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता

जब मनुष्य जंगली अवस्था में था, तब भी वह समूहों में रहता था यदि कहीं एकाकी होता तो शत्रु उसे कब का समाप्त कर देता और आज उसका बीज भी ढूंढे न मिलता। संगठित होकर रहने पर ही उस समय जब कि इसके पास अस्त्र शस्त्र नहीं थे इसी सामूहिक शक्ति ने बड़े २ बलवान् जीवों से इसकी रक्षा की और आज के जमाने में तो "संघशक्ति कलौयुगे" जो इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करते, वह समाप्त हो जाते हैं।

इस युग में संगठित होकर प्रतिस्पर्धा करने का दृश्य हमारे सामने है। संसार में समस्त राज्य नीतिज्ञ दो गुटों में बंट गये हैं, एक साम्यवादी दूसरा समाजवादी या यों कहो स्वार्थवादी। स्थार्थवादियों का गुट तो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये संसार पर अपना पंजा गड़ाये रखना चाहता है साम्यवादी इसके पंजे से संसार को मुक्त करना चाहते हैं। दोनों में भयंकर संघर्ष अन्दर अन्दर चल रहा है जिसे शीत युद्ध के नाम से पुकारा जाता है। यह दोनों ही शक्तियाँ संसार को अपने अपने गुट में मिलाने के लिये प्रयत्नशील हैं, जो निर्बल होगा वही मरेगा। पर आज तो परमाणु बम का युग है बलवान् भी भीतर २ इसकी भयंकर संहार कारणी शक्ति को देखकर कांपते हैं। इसने अब दोनों का सन्तुलन बना रखा है। खैर ! इसे छोड़िये विज्ञान और चिकित्सा क्षेत्र पर निगाह डालिये।

कोई भी व्यक्ति कितना ही योग्य हो अकेला कुछ नहीं कर सकता। अकेला चना कभी भाड़ नहीं फोड़ सकता। इसीलिये विद्वानों ने देखा हमें भी परस्पर मिल कर काम करना चाहिये। और अपने अनुभव दूसरों को बताना चाहिये, तभी दूसरे भी अपना अनुभव हमें बतावेंगे।

विज्ञान और चिकित्सा क्षेत्र में संगठित होकर उन्होंने अपनी अपनी संस्थाएं बनाईं, उनमें ज्ञान गोष्ठियां चलने लगीं, छोटे से छोटे अनुभव और अनुभूत बातें एक दूसरे के सामने जब आने लगीं और उनका प्रकाशन हुआ, इसी का परिणाम यह हुआ कि इस दो सौ वर्ष में ही इस संगठन शक्ति के प्रभाव से बूंद बूंद ज्ञान की मात्रा इतनी बढ़ती गई कि आज मनुष्य का वह कल्पित ज्ञान विज्ञान में परिणत हो गया। यदि वैद्य समाज भी इसी तरह संगठित होकर एक दूसरे से सहयोग करे और अपना अनुभव दूसरों को दे, तो दूसरा भी निश्चय ही अपना अनुभव उसे देगा, इस तरह हम करने लगें तो निश्चय ही आयुर्वेद भी एक महान् विज्ञान बन सकता है।

किन्तु यहां तो हमारा मूल संगठन ही विग्रह की भंवर में फंसा हुआ है, और धूर्त, प्रपंची उसे नष्ट करने पर तुले हों तो समाज के नष्ट होते ही व्यक्तित्व का नष्ट हो जाना निश्चित बात है। यदि आयुर्वेद महा मंडल न रहा तो समझ लीजिये आयुर्वेद नहीं रहेगा। इस समय जो इस विग्रह का प्रभाव राज्याधिकारियों पर पड़ रहा है और विरोधी चिकित्सा पद्धतियाँ हमारी इस निर्बलता से लाभ उठाकर हमारी पद्धति को समाप्त करने की योजना बना रही हैं, यह निश्चित बात है कि वह हमें छोड़ने वाली नहीं हैं। इसीलिये वैद्य समाज को सावधान हो जाना चाहिये। राज्य सरकार का कोई मुकाबला कर सकता है तो वह संस्था ही के द्वारा ही संगठित होकर कर सकते हैं, वरना अलोपथी जैसी संगठित शक्ति के सामने हमारे व्यक्तित्व का क्या मूल्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पं० शिवशर्मा महामण्डल की अंत्येष्ठि करने पर तुला है

नवम्बर १९५५ के आयुर्वेद विज्ञान में मैंने निम्न शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया था:—

"क्या आयुर्वेद महामण्डल की अन्त्येष्ठि होने वाली है ?" इस लेख में मैंने शिवशर्मा पर ४२ अभियोग लगाये थे, संक्षिप्त से वे निम्न थे :—

(१) यह महामन्डल को राहू बनकर ग्रसे हुए है।

(२) यह महामन्डल में फूट बनाये रखकर उसे समाप्त करना चाहता है।

(३) यह कीर्ति लोलुप स्वार्थ साधक व्यक्ति है।

(४) यह प्रतिवर्ष विधान में इसलिये संशोधन करता रहता है कि उसके अधिकार अक्षुण बने रहें।

(५) वह प्रतिवर्ष अपने साथियों में से पदाधिकारी चुनता है ताकि मन्डल पर उसका अधिकार बना रहे।

(६) यह जब से महामन्डल में आया तब से लड़ाई झगड़े का सूत्र पात हुआ जिसे वह आज तक बनाये हुए हैं।

(७) वह प्रान्तों में दौरा वैद्य समाज की भलाई के लिये नहीं करता, प्रत्युत अपनी ख्याति फैलाने के लिए करता है।

(८) महामन्डल का प्रधान एक बार बन जाने पर वह मत पत्रों में गड़बड़ कर पुनः २ प्रधान बनने का प्रयत्न करता आ रहा है।

(९) वह महामन्डल के चुनावों में हथकन्डे करता है। और अधिवेशनों में जालसाजी कर सदस्य संख्या बढ़ाता है

(१०) जहां प्रान्तीय वैद्य मन्डल नहीं बने उन प्रान्तों से झूठे प्रति निधि महा मन्डल के अधिवेशनों में लाता है।

(११) लखनऊ में जब वह प्रधान मन्त्री बना था वहां इसने यह हथकण्डा किया कि कार्य कारिणी के सदस्य वहां नहीं चुने और लाहौर आकर उसने कार्य कारिणी में अपने साथियों के नाम लिखकर सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित करा दिये।

(१२) इस चुनाव में उसने कुछ ऐसे वैद्यों को कार्य कारिणी में ले लिया जो महामन्डल के सदस्य तक नहीं थे और कुछ इसके साथी, अनुचरों ने सदस्यता शुल्क तक नहीं दिया था। जब प्रान्तीय वैद्य मण्डलों की ओर से आपत्ति उठाई गई उनमें से कइयों को इसने निकाला।

(१३) यह महामन्डल के अधिवेशन ऐसे स्थानों पर करता है जहां विरोधी सदस्य कम से कम संख्या में पहुँचें।

(१४) वह वार्षिक सम्मेलन भी ऐसे दूर स्थानों में करता है जहां विरोधी सदस्यों की कम से कम संख्या पहुँचे। जहां उसको अपना बहुमत होता दिखाई देता है, वहीं अधिवेशन रखता है।

(१५) वह महामन्डल का प्रधान ऐसे व्यक्तियों को ढूंढता है जो महामन्डल में कभी नहीं आये, वह कीर्ति लोलुप प्रधान पद प्राप्त कर इसके इशारों पर नाचते हैं।

(१६) पं० किशोरी दत्त शास्त्री के पास तिलकराम को भेजकर पत्रिका नीति के विरुद्ध जीवराम कालीदास का वक्तव्य प्रकाशित कराया, इसी अनीति के विरुद्ध उन्होंने पत्रिका के सम्पादकत्व से त्याग पत्र दे दिया। शास्त्री जी के वक्तव्य को पढ़कर यह फिर उनके विरुद्ध महामन्डल में अविश्वास का प्रस्ताव लाया।

(१७) जब यह प्रधान मन्त्री था इसने प्रान्तीय वैद्य मंडलों द्वारा प्रति निधि पद्धति से महामण्डल का प्रथम बार चुनाव कराने का नया नियम बनाया। इस विधान के द्वारा महामण्डल के समस्त सदस्यों का दो बार प्रधान के चुनने का अधिकार उनसे छीन लिया। यह इस प्रतिनिध्यात्मक पद्धति से चुनाव में जाल साजी करता आ रहा है।

(१८) इसने अपने मित्रों साथियों को महामण्डल की निधि बांटने का बड़ा अच्छा वैधानिक ढंग निकाला।

(१९) वह प्रान्तों का दौरा प्रचार के लिये करता है तब यह दिखलाता है कि मैं महामण्डल से एक पाई नहीं लेता, किन्तु यात्रा व्यय आदि अनेक रकमें महा मंडल से लेता चला आता था।

(२०) इसने प्रधान के चुनाव में एक और जालसाजी की, प्रान्तीय वैद्य मण्डलों द्वारा जैसे पाँच नाम कार्यालय में मांगता था, जिनमें से चार उम्मीदवार अपना नाम एक के पक्ष में वापस ले लेते थे, इस तरह वह बिना चुनाव के प्रधान चुनकर वैद्य समाज का अधिकार अपहरण करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ रहा है। इस तरह से वह कई बार आप प्रधान बना और अपने साथी बनाये।

(२१) इस अनैतिक प्रथा को बनाये रखने के लिए १९५२ में उसने विधान में परिवर्तन किया।

(२२) १९५० में प्रधान का चुनाव था उसे बहुमत की जरूरत थी उसने पटियाला अपने पिता को सूचना भेजी वह स्टेट के नौकर वैद्य, अवैद्य, चपरासी तक को सदस्य बनाकर अधिवेशन में पहुँच गये।

(२३) वैद्यों द्वारा जब विधान सम्बन्धी प्रबल विरोध होता दिखाई दिया नियमावली में संशोधनार्थ एक उप समिति खड़ी करदी। उसमें उसने अपने आदमी बहुमत में चुने।

(२४) नियमावली में संशोधन उसकी इच्छा के अनुसार हुए इसीलिये उसने गाजियाबाद के अधिवेशन पर अजेन्डा विषय के विरुद्ध इसे पास कराने का प्रयत्न किया।

(२५) यह अवसरवादी है, १२-८-५१ के अधिवेशन पर जबकि प्रधान श्री यादव जी महाराज न आ सके, इसने अवसर देख कार्य वाहक के रूप में महामण्डल की गद्दी संभाल ली।

(२६) और पं० गुरुदत्त जी को देखा कि यह साथ नहीं दे रहे अवैधानिक ढंग से उनसे मन्त्रित्व पद छीन कर अपने साथी वामनराव वैद्य को दे दिया।

(२७) इस संशोधित नियमावली को पास कराने के लिये १४।६।५२ को दिल्ली में अधिवेशन बुलाया उधर बाप को सूचना भेज दी, वह ट्रक भर कर वैद्य, अवैद्य, चपड़ासी तक—जो मातहत थे—सबको लेकर पहुँच गये। इनमें कई महामण्डल के सदस्य तक नहीं थे। मत गणना के समय इन्हें हटाया नहीं गया, इन्होने जब मत विभाजन में हिस्सा लिया तो इसके विरोध में अनेक मान्य सदस्य महामण्डल अधिवेशन से उठकर चले गये फिर त्याग पत्र दे दिये। श्री यादव जी को भी जब इस बात का पता लगा उन्होंने भी प्रधान पद से त्याग पत्र दे दिया।

(२८) यह स्थिति देखकर शिवशर्मा ने उक्त नियमावली को पास कराने के निमित्त एक प्रस्ताव रखा उस प्रस्ताव में था कि सदस्यों से पोस्टल सार्टीफिकेट से मत पत्र मंगाये जांय उसे उप प्रधान व प्रधान मन्त्री ही खोलें।

(२९) इस हथकन्डे से वह बहुमत प्राप्त करना, चाहता था किन्तु जब पं० गुरुदत्त जी उसका साथ छोड़ बैठे तभी उसने यह आज्ञा जारी की कि बैलट बक्स खोलने के समय केवल उपप्रधान ही बैलट बक्स खोलें।

(३०) पहले तो उसने समस्त सदस्यों को मत पत्र भेजने के लिये आदेश दिया था, फिर मत पत्र भेजते समय रूलिंग दिया कि किन किन को यह मत पत्र भेजे जांय, इसकी उसने स्वयं व्याख्या की।

(३१) फिर उसने इन्दौर सम्मेलन पर स्थायी समिति के अधिवेशन में निम्न प्रस्ताव स्वीकार कराया "यह अधिवेशन इस समय की स्थिति को देखते हुए १४ जून वाले मत संग्रह के प्रस्ताव पर अब मत संग्रह कराना आवश्यक नहीं समझता, इसलिये रेफरेन्डम न लिया जाय।"

(३२) और वहीं उसने नियमावली संशोधन के अर्थ एक उपसमिति बना दी और इच्छित नियमावली संशोधन करा कर वहीं पास करवा ली।

(३३) उसने पहले प्रतिनिधियों की एक श्रेणी बना कर नियमावली में उसे रखा, वह जब मतलब की नहीं दिखाई दी इन्दौर अधिवेशन पर उसे निकाल दिया।

(३४) पहले नियमावली संशोधन का अधिकार स्थायी समिति को था, इन्दौर अधिवेशन पर यह अधिकार उससे छीन लिया।

(३५) "स्थायी समिति को नियमावली संशोधन का अधिकार हो" इसी बात को लेकर पीछे यह भयंकर झगड़ा कर चुका था, जब उसने देखा इससे कार्य सिद्धि नहीं होती, तभी उससे यह अधिकार छीनकर महामण्डल को दे दिये।

(३६) कई वर्षों से वैद्य चाहते थे कि दिल्ली में महा मण्डल का वार्षिक अधिवेशन हो शिवशर्मा यहाँ अधिवेशन करना नहीं चाहता था। इसका निर्णय कराने के लिए स्थायी समिति का १०-११-५३ को उसने दिल्ली में अधिवेशन बुलाया, फिर उसने अपने बाप को फोन पर सूचना भेजी, सदस्यों को लेकर मीटिंग में पहुँचो। वह ट्रक भर कर सदस्य ले आये। पार्थ नारायण प्रधान को हवाई जहाज से पहुँचने की सूचना भेजी। इधर उसका अनुचर तिलकराम कार्यालय का इन्चार्ज था, उसने विरोधी सदस्यों को छांट २ कर मत पत्र नहीं भेजे, केवल, एजेन्डा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेज दिया और अपने पक्ष वालों को मत पत्र भेजे ताकि अपना बहुमत रहे यह आपत्ति दिल्ली के ३६ वैद्यों की ओर से उठाई गई। इस पर शिवशर्मा का साथी प्रधान मन्त्री वामनराव कहता है. ऐसी बातों की जांच के लिये समय चाहिये। जाँच के लिये उसने अपने साथियों में से उप समिति बनादी, पर यह तो टालने की बात थी।

(३७) जिस व्यक्ति की पांचों अँगुलियाँ शिवशर्मा की बदौलत घी में डूबी रहें, वह शिवशर्मा का पक्ष समर्थन न करेगा तो और कौन करेगा। इसीलिये यहां शिवशर्मा को ४४१ मतपत्र मिलते हैं और श्री यादव जी के कुल १९१। इस तरह हजरत १९५४ में फिर महामण्डल की गद्दी संभाल बैठा।

(३८) यह तो जब से प्रधान बना आयुर्वेद विद्यालय स्थापन करने की इसकी नियत नहीं थी, क्योंकि यदि विद्यालय स्थापित हो जाय तो वह और उसके साथी गुलछर्रे कहां से उड़ावें इसीलिये १९४० में जब पहले पहल कोटा नरेश ने एक लाख रुपया नगद और २०० बीघा जमीन तथा ५०० रु० मासिक देने का विचार प्रकट किया था, शिवशर्मा उनसे जाकर मिला, और उन्हें क्या पट्टी पढ़ाई गई तो यह ईश्वर जाने, वह मामला वहीं रफा दफ़ा हो गया।

(३९) फिर १९४२ में बनवारी लाल आयुर्वेद विद्यालय दिल्ली के संचालक सेठ श्री वृजमोहन लाल जी ने अपना विद्यालय और ७२ हजार रुपया नगद विद्यापीठ को देने की इच्छा प्रगट की। महामण्डल ने फैसला किया कि तीन ट्रस्टी सेठ साहब के और तीन ही महामण्डल के इस विद्यालय ट्रस्ट में रहें। यह बात हजरत को सहन नहीं हुई। अगले २७-९-४२ के अधिवेशन में यह मामला फिर उसने उठाया, वहां उसने पास करा लिया कि महामण्डल का तत्कालीन प्रधान मन्त्री भी ट्रस्टियों में चौथा ट्रस्टी रहे। जब सेठ व्रजमोहनलाल को पता लगा कि महामण्डल ने पहले फैसले को रद्द करके अपनी ओर से चार ट्रस्टी बना लिये हैं वह इन्कार कर बैठे, तब हजरत को होश आई और ४-६-४३ के अधिवेशन में इन्होंने अपना नाम ट्रस्टियों में से वापस ले लिया। पर जो बात बिगाड़ दी गई थी वह भला फिर कैसे बन सकती थी, यह मामला यहीं रह गया।

(४०) महा मण्डल कार्यालय दिल्ली में है और शिवशर्मा अधिवेशन दक्षिण देश के कोने में करता है क्योंकि नियम जो पास करा लिया था। वह २४-४-५३ को स्थायी समिति का अधिवेशन बेंगलौर में करता है, वहां वह स्वयं ऋषिकेश में आयुर्वेद विद्यालय खोलने की योजना सभा में उपस्थित करता है और स्वयं उसके सम्बन्ध का सारा विवरण देता है। वहां शिवशर्मा की वह रिपोर्ट पास होती है और शिलान्यास के समस्त अधिकार सभा उसे और उसके सम्बन्धी श्रीदत्त को सौंपती है। १३-१०-५४ को राष्ट्रपति जी वहां उद्घाटनार्थ पहुँचते हैं। किन्तु शिलान्यास के स्थगित होने का उसे पता था किन्तु रंज नहीं था। वह राष्ट्रपति जी को अपना व्याख्यान सुनाने के लिये वहां पहुंच गया। आयुर्वेद विद्यालय की योजना स्थगित होने पर इस अविवेक पूर्ण कार्य का राष्ट्रपति जी पर क्या प्रभाव हुआ होगा, इसकी उसे जरा चिन्ता नहीं थी।

(४१) विद्यालय स्थगित होने का दोष पं० श्रीदत्त पर मढ़कर उसे महामण्डल से किस तरह इलहदा किया? यह बात वही सदस्य जान सकते हैं जिन्होंने इसमें रस लिया है।

मेरे द्वारा लिखे इन अभियोगों का कच्चा चिट्ठा जब उसने पढ़ा उन दिनों वह अपने को एक बहुत बड़ा प्रतिष्ठित आदमी समझता था, आग बबूला होकर बम्बई की अदालत में मेरे और पं०रामनारायण जी के विरुद्ध मानहानि का दावा दायर कर दिया। और १५ नवम्बर १९५५ को सम्मेलन पत्रिका में बड़ी गर्वोक्ति के साथ लिखता है :—

(१) इन लेखों के उत्तर देने में जो समय लगेगा उसे किसी आवश्यक कामों में लगाना कहीं उपयुक्त होगा।

(२) उत्तर देना लेखकों को वह महत्व प्रदान करना है जो न तो उन्हें प्राप्त है और न आगे होने की सम्भावना है।

(३) श्वेत वस्त्र पर कोई कीचड़ फेंक दे, न वह फिर कर उस पर कीचड़ फेंकता है, न कपड़े धोने बैठता है। प्रत्युत वह कपड़े धोबी को संभाल देता है। लेखों द्वारा जो मेरे पर कर्दम फेंका गया उसे दूर करने का प्रबन्ध है ही न्यायालय।

(४) हमारे बन्धु कुछ सत्य जानना चाहते हैं कुछ तमाशा देखना चाहते हैं न्यायालय दोनों की इच्छा पूर्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता है, वहां सत्य का निर्णय भी निश्चयात्मक होता है।

(५) व्यक्तिगत रूप से अदालत में जाना अपराध नहीं है, इन कारणों से मैंने लेख अपने एडवोकेट को संभाल दिये हैं।

दोनों अभियोगों में शिवशर्मा बुरी तरह से हारा

पं० रामनारायण जी पर जो उसने मान हानि का केस दायर किया था उन्होंने मेरे लिखे जो दो लेख प्रकाशित किये थे उन में जो अभियोग उसपर लगाये थे वे सब के सब उन्होंने अच्छी तरह सिद्ध कर दिये।

मैंने जो ४२ अभियोग उस पर लगाये थे, उसमें से शिवशर्मा ने स्वयं ऋषिकेश विद्यालय सम्बन्धी ६ अभियोग जो स्वतः सिद्ध थे, उसने छोड़ दिये थे। ३६ अभियोगों में से न्यायाधीश की आज्ञा से उसने मुख्य मुख्य ९ अभियोग छांटे। जिस पर सारे अभियोगों का निर्णय न्यायाधीश ने रखा था। और उन्हीं ९ अभियोगों पर प्रमाण प्रस्तुत करने की मुझे आज्ञा हुई थी। केस पूरे १ वर्ष ५ महीने चला, मैंने समस्त अभियोग पूरे के पूरे अदालत के सामने सिद्ध कर दिये। एक अभियोग में से आधा सिद्ध कर दिया था, उसका अर्धांश सिद्ध न हो सका जिसमें १७ सदस्य ऐसे भर्ती करने का आरोप था जिनका सदस्य शुल्क ५१ रु० किसी से दान में लेकर इन्हें सदस्य बनाया गया था। इस अंश पर माननीय न्यायाधीश ने अपने फैसले में लिखा—"कि अभियुक्त ने इस घटना की सत्यता को पुष्ट करने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। उसने यह भी नहीं बताया कि उसे इस घटना की सूचना कहां से मिली। जिन १७ वैद्यों को सदस्य बनाने का आरोप लगाया गया था उनमें से कई सदस्य मौजूद होंगे पर उनमें से किसी को गवाही के लिये पेश नहीं किया गया। इसी बात पर माननीय न्यायाधीश ने इसे अप्रमाणित समझ कर मुझपर फर्द जुर्म लगादी।

इन दोनों अभियोगों में शिवशर्मा की इतनी मिट्टी पलीद हुई कि कोई शरमदार आदमी होता तो वैद्यसमाज को अपना मुंह न दिखाता। पर जो धूर्त होते हैं जिन्होंने ४२० करके रोटी कमाने का पेशा बनाया होता है, उन्हें मानापमान का कोई ख्याल नहीं होता। वह तो जहां से स्वार्थ सिद्धि दिखाई देती है उसे कैसे छोड़ सकते हैं। इसीलिये तो शिवशर्मा महामण्डल से चिपका हुआ है। उसे न तो महा मण्डल की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने का ख्याल है, न वैद्य समाज की मान प्रतिष्ठा का ख्याल है। वह आज भी महा मण्डल पर अपना आधिपत्य बनाये रखना चाहता है, और उसके इस काम में उसने अनेक स्वार्थी वैद्य साथी बना लिये हैं। इनमें कोई मान प्रतिष्ठा का भूखा है कोई रोटी का। उसके कब्जे में महामण्डल एक ऐसा कल्पवृक्ष है जो उन सबों को इच्छित फल देता है। इसी से महामण्डल और वैद्य समाज की प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिलाने के लिये उसका साथ दे रहे है। और यह सब लोगों को धोका क्या देते हैं कि संस्था जो बातें अपने अधिवेशनों में पास करती है हम तो समाज की आज्ञा के अनुकूल काम करते हैं। महामण्डल अधिवेशनों में जब बहुमत से बातें पास होती हैं उसमें एक व्यक्ति का हाथ है, यह किस तरह माना जा सकता है। ये लोग कहते हैं कि शिवशर्मा पर दोषारोपण करना बिलकुल अन्याय है।

इन्हीं बातों के आधार पर तो हम पर और पं० रामनारायण जी पर इसने मान हानि का केस किया था और वह स्वयं मानता है कि जिस न्यायालय द्वारा सत्यासत्य का निर्णय निश्चयात्मक होता है यदि उस न्यायालय का निर्णय निश्चयात्मक है तो पाठकों से अनुरोध करता हूँ थोड़ा सा ही उसका निम्न अंश आंख खोलकर पढ़लें और देखें कि इसमें कितनी सच्चाई है।

पं० शिवशर्मा महामंडल में डिक्टेटर था मेरे और पं० रामनारायण जी के केस में न्यायाधीश का निर्णय

"२२०० रुपये की वापसी का मामला—आयुर्वेद विद्यालय स्थापना के लिये महासम्मेलन को आठ हजार की धन राशि दान में प्राप्त हुई थी। इसमें से ११०० सौ रु० पंडित शिवशर्मा के पिता ने और ११०० सौ रुपये उसके अन्य सम्बन्धी श्रीदत्त ने दान दिया था। मई १९५५ के एक प्रस्ताव द्वारा केवल यह दो रकमें वापस दे दी गईं। यह प्रस्ताव स्वयं पं० शिवशर्मा द्वारा प्रस्तुत किया गया था। जैसाकि जिरह के अन्त में उसे बाध्य होकर स्वीकार करना पड़ा।

यह दान विश्वविद्यालय के लिये था और किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष उद्देश्य के लिए पहले से निश्चित नहीं किया गया था। इस प्रकार केवल अपने पिता और एक सम्बन्धी को दान वापस करने के लिए चुनना मेरे विचार में एक ऐसा कार्य है जो इस नुक्ताचीनी के योग्य है, कि वह महासम्मेलन में स्वच्छन्द रीति से कार्य करता था और उसका डिक्टेटर था। जिन व्यक्तियों को दान लौटाया गया उनके नाम प्रस्ताव में उल्लिखित नहीं, और प्रस्ताव में यह बहाना उपस्थित है कि वह रकमें ऋषिकेश में जमीन का टुकड़ा खारीदने के लिये दान दी गई थीं, परन्तु इस सम्बन्ध में रिकार्ड पर कोई चीज मौजूद नहीं। यह बातें प्रकट करती हैं कि वह दान की वापसी शुद्ध भावना से नहीं की गई।"

मीटिंग बुलाने वालों के विरुद्ध निषेधाज्ञा

"जैसा कि अभियुक्तों का कथन है शिवशर्मा के डिक्टेटरीय आचरण का एक और प्रकाशमान उदाहरण उसके उस व्यवहार से मिलता है जो उसने जुलाई १९५२ में ३१ सदस्यों द्वारा मीटिंग बुलाने की मांग करने वाले उसके नाम भेजे गये पत्र के प्रति किया था। ऐसा मालूम पड़ता था कि शिवशर्मा के इशारे पर १४-६-५२ को दिल्ली में होने वाली स्थायी समिति में मत संग्रह के लिए एक प्रस्ताव पास किया गया था। उसके परिणाम स्वरूप महा सम्मेलन के प्रमुख सदस्यों और अधिकारियों ने—जिनमें प्रधान यन्त्री भी सम्मिलित था, शिवशर्मा की हिटलराना नीति के प्रति अपना विरोध प्रकट करते हुए त्यागपत्र दे दिये थे। शिवशर्मा ने मीटिंग बुलाना स्वीकार करने अथवा उससे इन्कार करने की बजाय, मीटिंग बुलाने की मांग करने वालों को कानूनी एवं आर्थिक उत्तरदायित्व की धमकियां दीं। और जब वह इन धमकियों से नहीं दबे, तो उसने अपनी जेब से उपप्रधान पं० ओंकार प्रसाद जी को ५०० रुपया भेजा और उसे आदेश दिया कि वह इस मीटिंग को रोकने के लिए अदालत में अर्जी देवे। पं० ओंकार प्रसाद उप प्रधान और शिवशर्मा के बीच जो पत्र व्यवहार हुआ वह लेख में लगाये गए इन दोषारोपणों का स्पष्ट प्रमाण है कि मुद्दई महा सम्मेलन में डिक्टेटर था, जिसने विरोधियों को समाप्त किया। और वह अपनी मनमानी करना चाहता था, परन्तु यहीं पर बस नहीं हुई, अभी इस निषेधाज्ञा की अवधि समाप्त भी नहीं हुई थी कि विधान में मांग करने वाले सदस्यों की संख्या २५ से बढ़ा कर ५० कर देने का उसने संशोधन पास कर दिया। यह प्रस्ताव विषय निर्धारिणी समिति द्वारा शिवशर्मा के प्रधानत्व में पास किया गया और यह विधान का अंग बन गया। जिससे ३१ सदस्यों द्वारा की गई मांग निरर्थक हो गई। शिवशर्मा ने इस संशोधन के उत्तरदायित्व से बचने का प्रयत्न किया, परन्तु रिकार्ड पर जो तथ्य हैं उनके द्वारा मेरे सामने यह स्पष्ट होगया है कि वह संशोधन शिवशर्मा के इशारे पर ही पास किया गया था और इसका केवल मात्र उद्देश्य मीटिंग की मांग करने वाले मुद्दई के विरोधी सदस्यों को पूरी तरह पराजित करने के लिए शतरंज की अन्तिम चाल थी।

पार्थनारायण पं० का निर्वाचन अवैधानिक था

अभियुक्त की ओर से इस सम्बन्ध में दिया गया एक अन्य उदाहरण मई १९५५ में पार्थ नारायण का निर्वाचन है। मई १९५५ के त्रिवेन्द्रम अधिवेशन में जब शिवशर्मा ने खुले अधिवेशन की तीन दिन प्रधानता करने के बाद त्याग पत्र दे दिया, तो उसके इशारे पर पार्थ नारायण प्रधान चुना गया। पार्थनारायण का निर्वाचन विधान में निश्चित दो बार मत दान की विधि से नहीं हुआ। अपितु स्थायी समिति द्वारा एक मीटिंग में हुआ, जिसमें लगभग ८०० सदस्यों में केवल २५ सदस्य उपस्थित थे और जिसके एजन्डा में यह विषय सम्मिलित नहीं था। शिवशर्मा ने पार्थनारायण का नाम प्रस्तुत किया और वह स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार जो निर्वाचन का तरीका अपनाया गया वह स्पष्ट रूपेण अवैधानिक था। क्योंकि २३ प्रान्तों में से वहां केवल १० प्रान्तों का प्रतिनिधित्व करने वाले केवल २५ सदस्यों ने उस स्थायी समिति की मीटिंग में भाग लिया—जिसके एजेन्डे पर यह विषय ही नहीं था। केवल एक बार के मत दान से प्रधान का चुनाव कर लिया। यह विधान का एक बड़ा भद्दा उलंघन था और यह बात निश्चित है कि क्योंकि उसी समय वहीं पर अपना पदाधिकारी चुनने की शिवशर्मा की इच्छा थी, उसने वैधानिक औचित्य को अपने इस भद्दे तरीके से एक ओर रख दिया। इन बातों को देखते हुए मेरे विचार में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहना न्याय संगत है कि महा मंडल में शिव शर्मा डिक्टेटर था।

मोरारजी देसाई को निमन्त्रण

अभियुक्तों ने शिवशर्मा की उस मनमानी की चर्चा भी की है जो उसने मई १९५५ के त्रिवेन्द्रम अधिवेशन में मोरारजी देसाई को बिमन्त्रित करने में की। उसी अधिवेशन में जिसमें पार्थनारायण पंडित का अवैधानिक चुनाव किया था। शिवशर्मा के कथनानुसार उसने श्री मोरारजी देसाई को इसलिए निमन्त्रित किया था, क्योंकि स्वागत समिति ने उसे ऐसा करने के लिये कहा था। परन्तु इसने यह स्वीकार कर लिया है कि स्वागत समिति ने श्री मोरार जी देसाई के वायुयान का किराया १७०० सौ रुपये देने से इन्कार कर दिया था। यदि स्वागत समिति ने मोरार जी देसाई को निमन्त्रित करने के लिए शिवशर्मा को कहा होता तो यह विश्वास करना कठिन है कि वह अपने उस अतिथि के किराये का बिल देने से इन्कार करती। यह बात कि स्वागत समिति ने ऐसा किया, प्रकट करती है कि मोरारजी देसाई को उसके कहने पर निमन्त्रित नहीं किया गया, अपितु यह शिवशर्मा की व्यक्तिगत इच्छा और मर्जी थी।" (क्योंकि वह उन्हें अपना प्रभुत्व दिखाना चाहता था)

पं० शिवशर्मा आयुर्वेद महा मंडल में झगड़ों का मुख्य कारण था

आयुर्वेद महा सम्मेलन के झगड़ों और विरोधों का विवेचन करते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने लिखा "पंडित शिवशर्मा के महामंडल के साथ सक्रिय सहयोग के सारा काल ही महामंडल में झगड़ों और विरोध का इतिहास है और इस सम्बन्ध में रिकार्ड पर उपस्थित प्रमाण निश्चित रूप से प्रकट करते हैं कि शिवशर्मा इन झगड़ों का और विरोधों का एक मात्र कारण नहीं तो मुख्य कारण अवश्य रहा है।

१९३८ में उसके प्रधान बनने के शीघ्र बाद झगड़े शुरू हो गये और १९४४ में उसके महा सम्मेलन के मंच से ओझल हो जाने पर झगड़े समाप्त हो गए। और १९५० में उसके महा सम्मेलन में पुनः प्रकट होने पर झगड़े फिर से उठ खड़े हुए और यह लेख लिखा जाने तक जारी थे और इन झगड़ों, विरोधों का एक मात्र उत्तरदायी शिव शर्मा हैं। आगे विद्वान न्यायाधीश ने आयुर्वेद संसार को सावधान किया है कि पं० शिवशर्मा के यह तरीके महा मंडल को नाश की ओर ले जायेंगे। अन्त में न्यायाधीश ने लिखा है कि लेखक ने उचित टीका-टिप्पणी की सीमाओं का उलंघन नहीं किया है और न कोई ऐसा दोषारोपण किया जो वस्तुतः सत्य घटनाओं पर अथवा उनसे युक्ति पूर्वक समझ में आने वाले परिणामों पर आधारित न हों।"

शिवशर्मा की कुछ अन्य चालें

१९५२ की बात है, मध्य प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन नागपुर में हो रहा था। सम्मेलन पर जब अगले वर्ष के के लिये पदाधिकारी चुने जाने लगे तो पं० शिवकरण जी छांगाणी को प्रान्तीय आयुर्वेद मंडल का प्रधान चुना गया। वहां पं० गुलराज शर्मा बैठा था, यह देख कर वह आयुर्वेद वृहस्पति पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी जी के चरण पकड़ लिये कि मैं आपका पुराना शिष्य हूँ, आपने पीछे कहा था कि इस बार प्रान्तीय आयुर्वेद मंडल का प्रधान तुझे बनावेंगे आपने वचन देकर उसे पूरा नहीं किया। पं० जी ने अपने सुपुत्र को आज्ञा दी कि तुम इस पद से त्याग पत्र दे दो। उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। पं० शिवशर्मा उस अधिवेशन का प्रधान था ही। उसने पं० गुलराज शर्मा को प्रधान घोषित कर दिया। तब से पं० गुलराज शर्मा, शिवशर्मा का पिछलगुआ बन कर उसके पीछे पड़ा है कि आप मुझे विद्यापीठ का प्रधान बनाइयेगा। शिवशर्मा ने देखा कि यह तो मान, प्रतिष्ठा का भूखा है, उसे तो ऐसे ही आदमियों की सदा जरूरत रहती है, उसको आश्वासन दिया कि घबराओ नहीं, जल्दी ही इसके लिये तुम्हें चान्स दूंगा। किन्तु तुझे हमारा साथ देते रहना चाहिये,तभी यह अवसर आ सकता है। सुना है कि उसने आश्वासन दिया कि मैं आपका साथ कभी नहीं छोड़ूंगा।

पाठक देखें! तब से गुलराज शर्मा का नाम प्रतिवर्ष विद्यापीठ के पांच नामों में बराबर आ रहा है। यह इसका सबल प्रमाण है। हालांकि विद्यापीठ के प्रधान के पांच नाम प्रांतीय वैद्य मंडल चुन कर भेजते हैं। क्या आपको विश्वास है कि पं० गुलराज शर्मा वैद्य समाज में अपनी योग्यता के लिये भारत प्रसिद्ध है? क्या आप को यह भी विश्वास है कि उसने वैद्य समाज में अपनी काफी ख्याति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्जन कर ली है ? जो उसे प्रति वर्ष प्रान्तीय वैद्य मंडल विद्यापीठ की प्रधानता के लिये नाम भेजते हैं ? यदि ऐसा नहीं, तो सिवाय उक्त कारण के और कौन सा कारण हो सकता है ? इसे पाठक ढूंढें। क्योंकि यह इस बार भी विद्यापीठ प्रधान के ५ नामों में से एक था, जिसे शिवशर्मा ने कलकत्ते के प्रभाकर चटर्जी के पक्ष में बिठा दिया था। उसने देखा कि उपेन्द्रनाथ दास के मुकाबले में इस समय कोई सफल हो सकता है तो वह एक व्यक्ति प्रभाकर चटर्जी ही हैं। इस बार इसके लिये अवसर नहीं, इसीलिये उसने उसे बिठा दिया। तभी उससे काम लेने का शिवशर्मा को अवसर आ गया।

दिल्ली में अधिवेशन स्थगित

शिवशर्मा ने देखा कि इस बार यदि दिल्ली में अधिवेशन हो गया तो मेरे हाथ से महामंडल की बागडोर सदा के लिए छिन जायगी। जिस संस्था की बदौलत ख्याति अर्जन की, जिस संस्था की बदौलत उसकी प्रेक्टिस बम्बई में चमकी, जिस संस्था की बदौलत बम्बई राज्य की अनेक आयुर्वेदिक संस्थाओं का प्रधान व चेयरमैन बनने का उसे सौभाग्य मिला, जिस संस्था की बदौलत वह नेता के रूप में जन समाज के सामने आया, जिस संस्था की बदौलत वह अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों से परिचय प्राप्त कर साधन सम्पन्न हो सका, जो संस्था कल्प वृक्ष होकर उसके सैंकड़ों हिमायती पैदा करने वाली हुई, ऐसी साधक संस्था को भला यह कैसे छोड़ सकता है। उसके कृत्यों से स्पष्ट दिखाई देता है कि जब तक वह इसे समाप्त नहीं कर देता तब तक वह महा मंडल का पीछा छोड़ने वाला नहीं।

एक और कारण भी उसके सामने है, वैद्यों का नेता बनने पर इसकी जो कुछ करतूतें थीं वह इस बीस वर्ष में वैद्य समाज के सामने आ चुकी हैं और उसकी करतूतों का बुरी तरह से जो भांडा अदालत में आकर फूट चुका था उसके विरुद्ध वैद्य समाज ने कई अविश्वास के प्रस्ताव भेजे थे। जिन्हें उसने पढ़ लिया है, और उसे निश्चय हो गया है कि इस बार महा मंडल से मुझे सदा के लिये निकाल दिया जायगा। क्योंकि यहाँ पर उसके विरोधियों का निश्चय ही बहुमत होगा। महा मंडल से इस तरह बेइज्जत होकर निकलने की अपेक्षा महा मंडल की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाना और वैद्य समाज को संसार की नजरों में गिराना श्रेयस्कर समझता है। परन्तु उसे समझ लेना चाहिये कि अपने कृत्यों से महामण्डल की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाने वाले व्यक्ति को अब सदस्य सहन नहीं करेंगे क्योंकि वैद्य समाज अब जागरूक दिखाई देता है। अदालत में चल रहे मामलों का निबटारा होते ही अधिवेशन तो कहीं न कहीं होगा ही। तभी उक्त कथन कटु यथार्थ के रूप में उसके सम्मुख आने वाला है।

वामनराव शिवशर्मा का आज का साथी नहीं, १९३९ से ही उससे चिपका हुआ है।

यह व्यक्ति बुरहानपुर का रहने वाला है। काम-धन्धा कुछ था नहीं। इसीलिये वह व्यक्ति १९३९ से ही शिवशर्मा के साथ आयुर्वेद प्रचार के नाम पर कई महीने गुजरात काठियावाड़ का दौरा करता रहा। तब से इसकी शिवशर्मा मदद करता चला आ रहा है। १९५२ में इसी व्यक्ति को शिवशर्मा ने अपना रूलिंग दे कर प्रधान मन्त्री श्री गुरुदत्त जी से अधिकार छीनने के लिये भेजा था। उसके बाद ही तब से यह प्रधान मन्त्री पद पर विराजमान है। यह व्यक्ति भी महामंडलके पैसे किस तरह से नष्ट करता आरहा है इसका प्रमाण में अप्रैल १९५८ के आयुर्वेद विज्ञान में—जो मैंने १९५४ के महा मंडल के हिसाब में पकड़ा था—मय तारीखों के वहाँ बतला चुका हूँ। यह स्पष्ट रकमें तो उसके नाम पड़ी थीं, सम्भव है वेतन खाते या और किसी खाते में उसके नाम व डालकर उसे और रकमें भी दी जाती रही हों, यह तो सारा हिसाब चेक करने पर ही पता लग सकता है।

जिस व्यक्ति की रोटी शिवशर्मा की बदौलत चल रही हो वह शिवशर्मा का साथ न देगा तो कौन देगा ? इसलिये आठ वर्ष से बार २ उसे प्रधान मन्त्री बनाने का प्रयत्न करता चला आया है।

जरा इसकी भी सुन लीजिये कि मोहनलाल गुप्ता कौन हैं ?

इसी फरवरी को दिल्ली में नियमावली संशोधन समिति का अधिवेशन था उसमें शिवर्मा और प्रधान पं० अनन्त त्रिपाठी दोनों व्यक्ति आये हुए थे। उस अधिवेशन में जो और सदस्य वहाँ बैठे थे उन्होंने शिवशर्मा से पूछा मोहनलाल गुप्त वैद्य कौन हैं? शिवशर्मा ने कहा कि हम उन्हें नहीं जानते। यही बात जब वामनराव प्रधान मन्त्री से पूछी गई थी तो उसने भी कहा था यह हमारे परिचित व्यक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं हैं। तब उक्त सदस्य को उत्कण्ठा जागी कि यह व्यक्ति कौन है इसका पता महामण्डल कार्यालय से लेना चाहिये। कार्यालय से मोहनलाल गुप्ता आजीवन के सदस्यता फार्म की प्रतिलिपि मांगी गई, बड़ी टालमटोल के तीन दिन बाद मिली। यद्यपि मोहनलाल गुप्ता १९५८ से महामण्डल का मान्य सदस्य था, किन्तु आजीवन सदस्य अभी बनाया गया। अभी उसकी आजीवन सदस्यता स्वीकृति नहीं हुई। उसके आजीवन सदस्यता की जो प्रति लिपि महामन्डल कार्यालय से हमारे मान्य सदस्य को प्राप्त हुई है उस पर इस व्यक्ति के आजीवन सदस्यता के प्रस्तावक शिवशर्मा जी हैं और समर्थक वामनराव दीनानाथ जी प्रधान मन्त्री।

और उस सदस्यता के आवेदन पत्र के ऊपर नोट दिया है कि इनकी रसीद वैद्य रत्न पं० शिवशर्मा के यहां भेजी जाय। जिसका मतलब स्पष्ट है कि शिवशर्मा ने इन्हें अभी आजीवन सदस्य बनाया है।

नागपुर का अधिवेशन योजनाबद्ध किस तरह समाप्त किया गया

इस अधिवेशन पर देश के विभिन्न भागों से लगभग १२०-२२ महामण्डल के आजीवन मान्य सदस्य गण पहुँचे हुए थे।

पम्फलेटों का वितरण

जब सदस्य एकत्र हो चुके तो दो विज्ञापन वहां बांटे गये। इसमें से एक पम्फलेट गुलराज शर्मा की ओर से साइक्लोस्टाइल पर छपा था। जिसमें उसने महामन्डल पदाधिकारियों और स्वागत समिति पर अनेक लांछन लगाये थे। और उसने अपने मुकदमे के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए निम्न पंक्तियां दीं :—

"ऐसी ही अनेक बातों से दुखी होकर मुझे दिल्ली का अधिवेशन रोकने के लिये कार्यवाही करना पड़ी, यद्यपि इस कार्य को मैंने सहसा नहीं किया। बहुत पहले पं० शिवशर्मा जी और प्रधान वामनराव जी को लिखकर इसके सम्बन्ध में मैंने स्वीकृति ले ली थी।"

महामण्डलाध्यक्षजी बम्बई पं० शिवशर्मा का आतिथ्य स्वीकार कर नागपुर पधारे। मध्यान्ह के बाद दो बजे के लगभग अधिवेशन का कार्य जब आरम्भ हुआ तो सुरमचन्द जी ने दिल्ली ने उठकर यह आपत्ति उठाई कि बहुत से सदस्यों को इस अधिवेशन का एजेन्डा नहीं भेजा गया है इस पर प्रधान ने उत्तर दिया कि एजेन्डा सबको भेजा गया है आप बतलाइये कि किसे एजेन्डा नहीं मिला। इस पर सुरमचन्द ने कहा कि पं० गुलराज शर्मा और पं० ज्वाला प्रसाद को नहीं भेजा गया प्रधान ने उत्तर दिया, सदस्य महानुभाव को ज्ञात होना चाहिये कि सम्मेलन विधान के अनुसार जो व्यक्ति महा मन्डल पर या उसके पदाधिकारियों पर कोई अदालती कार्यवाही कर देता है वह नियमानुसार अपनी सदस्यता का अधिकार खो देता है, यह दोनों व्यक्ति दावा करते ही महामन्डल सदस्य नहीं रहे। इसलिये इनको एजेन्डा भेजने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

इसके बाद अधिवेशन की कार्यवाही आरम्भ करने की आज्ञा प्रधान ने दी। अधिवेशन में प्रत्येक विषय का उपस्थित करना प्रधान मन्त्री का काम होता है किन्तु वामनराव जी प्रधान के पीछे बैठे रहे और कार्यवाही तिलक राम ने पढ़नी आरम्भ की।

कलकत्ते के स्थायी समिति के अधिवेशन में पं० दीनदयालु जी ने आपत्ति उठाई थी कि तिलकराम कर्मचारी है, यह महा मन्डल का कोई पदाधिकारी नहीं है, यह संस्था के प्रति जुम्मेवार व्यक्ति नह , सका उत्तरदायित्व कुछ नहीं है। वहां प्रधान जी ने आश्वासन दिया था कि मैं इस की जांच कराऊंगा। यहां फिर जब तिलकराम ने कार्य वाही आरम्भ की तो वही आपत्ति फिर उठाई गई। किन्तु प्रधान ने कहा यह तो केवल छपी हुई कार्यवाही पढ़कर सुना रहा है। यह कोई अधिकार की बातों में हस्ताक्षेप नहीं कर रहा। इसे छपे विषय को सुनाने दीजिये। तिलक राम ने गत अधिवेशन की कार्यवाही के सम्बन्ध में कहा कि यह कार्यवाही अगस्त १९५८ की सम्मेलन पत्रिका में पृष्ठ ४४७ पर छपी हैं सदस्यों ने वहां पढ़ी होगी। इसे पुनः पढ़कर समय नष्ट करने की जरूरत नहीं इसे पास करें, सदस्यों ने प्रधान की यह बात स्वीकार करली।

नोट—यह परम्परा बिल्कुल ही गलत चली आ रही है बड़ी धोखे की चीज है। पीछे कई बार देखा गया है कि कार्यवाही जिस रूप में पास हुई था उस रूप में लिखी नहीं गई, प्रस्ताव जिस रूप में पास हुए थे उन के शब्दों में ऐसे हेर फेर कर दिये हैं जिससे प्रस्ताव का अर्थ ही बदल गया है। ऐसा कई बार किया जा चुका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बात—अधिवेशन में पहुँचे सब सदस्य उस कार्यवाही की पत्रिका को लेकर अधिवेशन में थाड़े ही पहुँचा करते हैं।

तीसरे—६-६, ७-७ महीने की बात होती है किसको स्मरण रहती है कि वह कार्यवाही किस प्रकार से हुई थी, अथवा प्रस्ताव किस रूप में पास हुआ था। यह बात तो तभी स्मरण में आ सकती है जब पिछली कार्यवाही पढ़ कर सुनाई जाय। सुनाने पर वह चट स्मरण हो आती है। इसीलिये यह प्रथा धोका धड़ी की चीज है, सदस्यों को इससे सावधान रहना चाहिये। खैर!

इसके बाद दूसरा विषय तिलकराम ने नवीन सदस्यता स्वीकृति तथा संस्था सम्बद्धता का पढ़ा। इस पर आशुतोष मजूमदार ने कहा—यह कार्यकारिणी का अधिवेशन नहीं है, इनकी स्वीकृति तो कार्यकारिणी ही कर सकती है। यह विषय जिन्होंने एजेन्डा में रखा उन्हें विधान का कुछ भी ज्ञान नहीं है।

वामनराव दीनानाथ तो मिट्टी का माधो बना प्रधान के पीछे बैठा रहा। वास्तव में न तो उसे विधान सम्बन्धी किसी बात का पता है, न उसने कभी कार्यालय में बैठकर कोई महामन्डल का काम ही किया है। इस विषय को प्रधान जी ने अगले कार्य कारिणी के अधिवेशन तक के लिये स्थगित कर दिया।

इसके बाद तिलकराम ने महामण्डल और विद्यापीठ सन् ५७-५८ का वार्षिक आय व्यय एवं सन्तुलन पत्र का विषय पढ़ कर सुनाया। सदस्यों ने आय व्ययं आनुमानिक पत्र और खर्च के सन्तुलन पत्र का जब मिलान किया तो जितना आनुमानिक आय व्यय पत्र स्वीकृत हुआ था उससे अधिक व्यय किया गया था, जिसकी स्वीकृति अधिकारियों ने खर्च करने से पहले स्थायी समिति से नहीं ली थी। बिना मंजूरी के यह रकम खर्च की थी।

(२) दूसरे पत्रिका व्यय के मदों का जहां पर उन्होंने टोटल का योग दिखाया था वह गलत था। बजट में वह रकम १२०३९-५५ दर्ज हैं जबकि वहां टोटल होना चाहिये था १२०३९-२५ पैसे, इसमें ३० पैसों का फरक था।

(३) जिन मदों में आनुमानिक आय व्यय से अधिक रकम व्यय की गई थी बिना स्थायी समिति की स्वीकृति के उसको आय व्यय निरीक्षक महोदय ने बिना देखे समझे और बिना नोट दिए कैसे स्वीकृत कर दिया था। यह बात समझ में नहीं आ रही थी। वह मदें निम्न थीं।

महासम्मेलन की मदें	अनुमानिक बजट में स्वीकृत रकम	खर्च की गई रकम
डाक तार व्यय	८००)	१४५६·९७
यात्रा व्यय	१५००)	२२५९·१०
वेतन खाता	१२०००)	१३५९४·६५
मुद्रण और लेखन व्यय	२०००)	२४५०·३६
यात्रा व्यय	१०००)	१६०१·५४
कर्मचारी रक्षा कोष	५००)	५१४·५९
कानूनी व्यय	५००)	१००८·७९

(४) सन्तुलन पत्र में विद्यापीठ का महा सम्मेलन ने १५७१३६·३१ पैसे का जो ऋण अपने ऊपर दिखलाया है, महा सम्मेलन इस ऋण का ब्याज, लाभ आदि के रूप में विद्यापीठ को नहीं देता। जबकि महासम्मेलन उस रु० से ६५४०·६० की आय प्रति वर्ष प्राप्त कर रहा है। इस ऋण को महासम्मेलन के सन्तुलन पत्र में श्रेष्ठ ऋण के रूप में दिखलाया गया है, जबकि महासम्मेलन की सम्पत्ति उस ऋण की तुलना में कुछ नहीं के बराबर है। यह प्रश्न नरदेव मोंगा बी० ए० ने उठाया था।

(५) महासम्मेलन के सन्तुलन पत्र में १६९३·४७ पैसे की रकम कानूनी व्यय में (अडजस्टेबल) सम्पत्ति में दिखलाई गई है। यह रकम कानूनी व्यय में कार्यालय से पहले ही दी जा चुकी है। यह बात वहां पर तिलकराम ने अधिवेशन में स्वीकार की। यह रकम खर्च खाते इसलिये नहीं दिखलाई गई क्योंकि यह रकम आनुमानिक व्यय की रकम से बहुत अधिक थी। इस तरह व्यय की रकम को दूसरे खाते में डालकर सदस्यों को धोका दिया गया। महा मंडल सदस्य प्रधान मन्त्री से पूछ रहे थे इस हिसाब की गड़बड़ी कैसे हुई? क्यों की गई? बारम्बार प्रश्न पूछते थे किन्तु पन्डित अनन्त त्रिपाठी ढाल बनकर उसके आगे आ रहे थे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर वह स्वयं देते रहे। सदस्यों ने उस समय प्रधान मन्त्री की इस अयोग्यता को देखकर शेम शेम के नारे लगाये।

प्राप्तव्य शुल्क भी सन्तुलन पत्र में

बजट के सन्तुलन पत्र में ५३८६·५० पैसे प्राप्तव्य शुल्क के महामण्डल ने जमा किये हैं। यह वह धनराशि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है जिन सदस्यों ने गत दो तीन वर्षों से महामन्डल का सदस्यता शुल्क ही अदा नहीं किया है। यह रकम तो महामण्डल को प्राप्त ही नहीं हुई।

इसीलिये आशुतोष मजूमदार जी ने पूछा कि यह प्राप्तव्य शुल्क की ५३८६.५० पैसे किस बैंक में महामण्डल ने जमा कराये हैं? जो जमा के खाते में दिखाये गये हैं।

यह प्रश्न सामने आते ही प्रधान प्रधान मन्त्री व सबके होश उड़ गए। इतना बड़ा धोका सदस्यों से चन्दा प्राप्त नहीं हुआ और जमा के खाते में उसे प्राप्तव्य शुल्क के नाम पर दिखाया गया। जब वहां अधिकारियों के मुंह सूखने लगे तो पानी भी उन्हें जिव्हा तर करने को नहीं मिला।

मजूमदारजी ने पूछा, यात्रा व्यय में दो मदें इलहदा इलहदा पड़ी हैं इसमें जो १६०१·५४ की जो खर्च की मद है १७ जुलाई १९५८ को जो स्थायी समिति का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ था उसमें क्या विद्यापीठ मन्त्री भी सम्मिलित हुए थे? क्या उनका यात्रा व्यय कार्यालय की ओर से दिया गया था? इसको तिलकराम ने स्वीकार किया, कि हां। यह अधिवेशन विद्यापीठ का नहीं था, ऐसी दशा में वहाँ विद्यापीठ मन्त्री को व्यय देकर कार्यालय ने क्यों भेजा? प्रश्नों की बौछार वहां होने लगीं। जब विद्यापीठ प्रधान से पूछा गया, क्या आपने इन्हें वहां जाने का आदेश दिया था। उन्होंने कहा, मैंने ऐसा कोई आदेश नहीं दिया। तब सदस्यों ने पूछा इस तरह महामन्डल का धन क्यों लुटाया जा रहा है? किन्तु अधिकारी व प्रधान सदस्यों का समाधान नहीं कर सके।

विद्यमान प्रधान ने भी विधान की मिट्टी पलीद की

धारा ४१ प्रधान के अधिकार व कर्त्तव्य

महा सम्मेलन पदाधिकारियों के कर्त्तव्य और अधिकार नियमावली की जिस ४१वीं धारा में दिये हैं, वह निम्न हैं :—

(क) स्थायी समिति के कार्यों की जांच पड़ताल और साधारणतया महा सम्मेलन की प्रवृत्तियों को संचालित करना तथा उसमें सहायता देना।

(ख) महा सम्मेलन कार्य निर्वाह में प्रधान मन्त्री को परामर्श देना।

(ग) यथा सम्भव स्थायी समिति एवं कार्यकारिणी समिति की सभाओं में स्वयं उपस्थित होकर अध्यक्षता करना और आवश्यकतानुसार सम्मति एवं परामर्श देना।

(घ) महा सम्मेलन के समुचित संचालन एवं कार्य व्यवस्था के लिए आवश्यकतानुसार समय समय पर आवश्यक व्यय स्वीकार करना। ऐसे व्यय की स्वीकृति आगामी स्थायी समिति से लेनी होगी।

(ङ) विधि विधानों के उद्देश्यों को कार्य में परिणत करना एवं साधारणतया महा सम्मेलन के उद्देश्यों पर ध्यान रखना तथा उन्हें प्रगति देना।

इस विधान के इन नियमों में यह अधिकार कहां प्रधान के लिये उल्लिखित हैं कि अधिवेशन में मन्त्री आदि पदाधिकारियों के स्थान पर हर एक बात का प्रधान ही उत्तर देते रहे। क्या यह बात प्रधान के कर्त्तव्यों में निहित हैं? जब नहीं हैं, तो उसने अवैधानिक रूप में हस्तक्षेप क्यों किया?

जो व्यक्ति कभी महा मंडल के कार्यालय में नहीं आया, जिसने कभी महा मंडल का हिसाब किताब चेक नही किया, जिस मिट्टी के माधो को आज आठ वर्ष से प्रधान मन्त्री बनाया हुआ है उसको उत्तर देना नहीं आता तो उसका स्थान लेना प्रधान का काम नहीं है। प्रधान ने मंत्री का स्थान लेकर अपने पद का दुरुपयोग किया है।

यदि कहीं लोक सभा का अधिवेशन होता और इस तरह अन्य मन्त्रियों के स्थान पर प्रधान बोलने लगता तो क्या उसे वहां बोलने दिया जाता? यह भोले भाले वैद्य ही हैं जिन्होंने प्रधान की प्रतिष्ठा को बनाये रखा।

आय व्यय संतुलन पत्र को चेक करने के लिये समिति

बजट की इस गड़बड़ी को देखकर सदस्यों ने प्रधान से मांग की कि महा मंडल के हिसाब किताब को देखने के लिए एक उप समिति बना दी जाय प्रधान इसे टालना चाहता था किन्तु सदस्यों ने इस बात पर जोर दिया कि इस पर मत विभाजन करा लीजिये। बड़ी आनाकानी के बाद प्रधान ने मत विभाजन की आज्ञा दी। पक्ष में १०१ और विपक्ष में कुल १६ वोट आए। इस पर (१) महा मंडल प्रधान (२) कवि० आसुतोष मजूमदार और दीन दयालु तिवारी नागपुर इन तीन व्यक्तियों की उप समिति बना दी गई जो सारा हिसाब चेक करके अगले स्थायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिति के अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट के साथ बजट की भूलों का मसौदा पेश करेगी, तब वह पास होगा। इस तरह से बजट पास होने से रह गया।

वहां एक बात रह गई, इस उप समिति का संयोजक नियत करना था वह निश्चित नहीं किया गया, इसका अर्थ क्या समझा जाय कि प्रधान इसका संयोजन करेगा।

पांचवां तिथियों के निश्चय का विषय

इसके बाद तिलकराम को पांचवां विषय उपस्थित करने की आज्ञा हुई। यह था दिल्ली में अधिवेशन सम्पन्न करने के लिये स्वागत समिति द्वारा प्रस्तावित तिथियों के विषय में विचार।

इस पर काफी देर तक विवाद होता रहा, अन्त में सब इस बात पर सहमत हो गये कि तीन सदस्यों की एक उप समिति बना दी जाय, इस पर तीन नाम १ प्रधान, दूसरे वैद्यनाथ सरकार ३ स्वामी मंगलदास जी का नाम पेश हुआ इस पर प्रधान ने शिवशर्मा से पूछा कि आपको यह नाम स्वीकृत हैं उसने कहा, 'नहीं !' इसमें हमारी पार्टी का का एक व्यक्ति लें।

अधिवेशन कैसे रोका जाता है ?

इस पर प्रधानजी ने मजूमदारजी को अपने समीप बुला कर कहा "विरोधी दल के किसी व्यक्ति को इसमें ले लें तो झगड़ा समाप्त हो जायगा। मजूमदार जी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। तब शिवशर्मा ने बड़े तुनक मिजाज से कहा कि तब तो इस विषय पर निर्णय नहीं हो सकता।

पाठक ! इस गर्वोक्ति से समझें कि स्थायी समिति का यह अधिवेशन किस प्रकार से भंग कराया गया ? इससे बड़ा निन्द्यकर्म और कौन सा हो सकता है जो समाज को नष्ट करने पर तुला ही। उसने देखा कि यदि यहाँ इस पर मत विभजन हो गया तो बाजी हाथ से निकल जायगी, उसने अपने साथियों को इशारा किया।

सूरम चन्द बी० ए० ने उठकर कहा "अधिवेशन को रोकने के लिये बम्बई कोर्ट में अभियोग चल रहा है, कहीं इस मीटिंग पर केन्टेम्प्ट आफ कोर्ट का मामला न हो जाय इसलिये इस अधिवेशन की आगे की कार्यवाही में से मेरा नाम निकाल दिया जाय।

इसके बाद शिवशर्मा का दूसरा साथी हरिकृष्ण सहगल जी उठे उन्होंने भी यही शब्द दोहराये। फिर हरबंश चौपड़ा ने दोहराये। शिवशर्मा ने भी यही बात कही। कहने लगा मैं भुक्त भोगी हूँ ऐसी ही एक चोट का चुका हूँ। इस अधिवेशन की आगे की कार्यवाही में से मेरा नाम निकाल दिया जाय। इस पर पं० शिव करण जी छांगाणी ने कहा कि जिस प्लेंट की इतनी दुहाई देकर सदस्यों को भयभीत किया जा रहा है और अधिवेशन का वातावरण विक्षुब्ध किया जा रहा है वह नोटिस क्या है ? सदस्यों को उसे सुनाया जाय। किन्तु उस बम्बई के नोटिस को टाल दिया गया। और दूसरा एक और नोटिस जो गुलराज शर्मा ज्वालाप्रसाद तथा मोहन लाल पुरुषोत्तम दास गुप्ता की ओर से उसके वकील हरदयाल हार्डी ने भेजा था वह शिवशर्मा ने प्रधान को पढ़ने के लिये दे दिया। प्रधान ने उसे पढ़ने के लिये तिलकराम को दे दिया।

नोटिस का विषय

इस नोटिस में गुलराज शर्मा और ज्वाला प्रसाद और मोहनलाल की ओर से जो उनके वकील ने भेजा था, और उसमें लिखा था कि हमारे मवक्किल स्थायी समिति के सदस्य हैं, इन्हें एजण्डा क्यों नहीं भेजा गया, हमें ऐजन्डा न भेज कर आप सबों ने अवैध कार्य किया है। इनकी अनुपस्थिति में आप जो भी कार्यवाही करेंगे वह सब अवैधानिक होगी और उसके उत्तरदायी आप सब होंगे।

यह नोटिस कोई आफिसियल नहीं था

इस नोटिस का सम्बन्ध न तो अदालत से लिये इंजंक्शन के दावे से था न यह अदालत के द्वारा भेजा गया था। प्रत्युत गुलराज शर्मा के वकील की ओर से था। विरोधी पक्ष की ओर से दिये इस नोटिस का कोई कानूनी महत्व नहीं था। इस पर सदस्यों ने कहा कि हमें तो वह नोटिस बतलाया जाय जो बम्बई की अदालत से इस अधिवेशन को रुकवाने के लिये महा मंडल कार्यालय को भेजा गया है, जिस पर अदालत का आर्डर है। किन्तु ऐसा तो कोई नोटिस था नही। इस आगे की कार्यवाही को स्वयं योजना बद्ध प्रधान ने रोकना था। कहने लगा, कानूनी जिम्मेदारियां हम पर आ सकती है, आप पर नहीं। इसका परिणाम हमको भुगतना पड़ सकता है। इसलिए मैं अधिवेशन की आगे कार्यवाही को स्थगित करता हूँ। सदस्यों ने कहा यदि आप अधिवेशन स्थगित करते हैं, तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर यहां के किसी एडवोकेट से परामर्श ले लें यदि कोई आपत्ति की बात न हो तो स्थगित मीटिंग पुनः यहीं बुलानी होगी। इसलिए इस समय हम सब लोग लगभग १० हजार रुपया खर्च कर यहां पहुँचे हुए हैं। वकील से परामर्श करके रात को या कल किसी समय वहां स्थगित मीटिंग करके अवशेष एजेण्डा के विषय को समाप्त करिये। यह सुनकर प्रधान ने कहा हम मीटिंग स्थगित नहीं करते प्रत्युत एजेन्डा के चार विषय तक निर्णय करके इसे भंग करते हैं। और ३१ मार्च को दिल्ली में स्थायी समिति का अधिवेशन हो, उसने अधिवेशन समाप्ति की घोषणा कर दी। सदस्यों ने बहुत कहा कि जब उपसमिति बन चुकी है और उसको अधिवेशन की तिथियों का निश्चय करने का अधिकार दे दिया गया है, तो यहाँ तक कार्यवाही लिखी जाय, इस पर प्रधान ने कहा नहीं केवल ४ संख्या तक के विषय ही पास हुए समझे जायें आगे की कार्यवाही अनिर्णीत है। उसने अधिवेशन भंग कर दिया।

कहते हैं पं० अनन्त त्रिपाठी जी प्रधान महा मंडल अच्छे अंग्रेजी संस्कृत के विद्वान हैं और यह भी कहा जाता है कि वह विधान के अच्छे ज्ञाता हैं। हम उसके द्वारा होने वाली उक्त कार्यवाही को देख कर किस तरह मान लें कि वह विधान के ज्ञाता हैं। वादी पक्ष के नोटिस पर सभा को रोकना उनकी विधान सम्बन्धी अज्ञानता को प्रकट करता है। अथवा स्पष्ट रूप से यह माना जा सकता है कि जिस व्यक्ति ने महा मंडल का सदस्य न होते हुए उन्हें प्रधान के पद पर बिठाया, उनके महा मंडल में आने से पूर्व महा मंडल का कोई सदस्य उनके नाम से भी परिचित नहीं था, जीवन में वह कभी किसी महा मडल के अधिवेशन में आये नहीं, ऐसे व्यक्ति को जो महा मंडल का ऐसा प्रतिष्ठा का पद उन्हें देता है और कहीं दिल्ली में अधिवेशन हो जाता तो वह राष्ट्रपति जी के साथ बराबर की कुर्सी पर विराजमान होते। इतने बड़े प्रतिष्ठा के पद को दिलाने वाले के प्रति उसकी नीति का समर्थन कर उसके प्रति उन्होंने कृतज्ञता दर्शाई हो तो क्या आश्चर्य। यही कारण है कि प्रधान ने पहले उक्त उपसमिति पर शिवशर्मा का पक्ष का व्यक्ति लिया जाना स्वीकार कराने का प्रयत्न किया परन्तु जब उसमें सफलता न मिली तो सभा भंग कर दी। इस नोटिस की प्रतिलिपि तो सभा स्थल पर पहुंचते ही दिल्ली वार्षिक अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री वैद्यनाथ सरकार ने प्रधान के हाथ में दे दी थी। यदि इस नोटिस पर इस विषय पर विचार स्थगन करना था तो इस पर विचार प्रारम्भ करने की आज्ञा ही नहीं देनी चाहिये थी यह है प्रधान जी का विधि विधान सम्बन्धी ज्ञान ?

मध्य प्रदेश राज्य द्वारा आयुर्वेद ग्रन्थों पर पुरस्कार

मध्य प्रदेश राज्य सरकार ने आयुर्वेद सम्बन्धी पुस्तक लेखकों को तथा अनुवादकों को उत्साह बढ़ाने के लिए ४०००) रुपये का पुरस्कार प्रतिवर्ष देने की एक योजना बनाई है। आलोच्य पुरस्कार आयुर्वेद सम्बन्धी उन नवीन पुस्तकों के लेखकों को तथा प्राचीन पुस्तकों के अनुवादकों को दिए जायेंगे जो १ जनवरी १९५६ के पश्चात् प्रकाशित ग्रन्थ होंगे। पुरस्कार प्रतियोगिता के लिये रचनाएं भेजने की अन्तिम तिथि २८ फरवरी थी।

अद्भुत पेंन्सिलीन

जैवोद्भवीं ओषधियों में पेंन्सिलीन जितनी प्रभावकारी औषध है ऐसी शायद ही कोई हो। किन्तु देखा गया है कि जो व्यक्ति बराबर पेंन्सिलीन का प्रयोग करते रहते हैं कुछ समय के पश्चात फिर उन पर पेंन्सिलीन का प्रभाव कुछ नहीं होता। जिन रोगों में पहले पेंन्सिलीन बड़ा लाभ करती थी, फिर उसका असर कुछ नहीं होता। कारण यह होता है कि धीरे-धीरे पेंन्सिलीन के प्रभाव में आकर वह कीटाणु अपने को सक्षम बनाते चले जाते हैं और फिर वह इतने सक्षम बन जाते हैं कि उन पर फिर इस पेंन्सिलीन का कोई प्रभाव नहीं होता। इसीलिये विलायत में लंडन की बीच में अनुसन्धान शालाके चार डाक्टर आज तीन वर्ष से प्रयोग कर रहे थे कि ऐसी पेन्सिलीन तयार की जाय तो एक निश्चित रोग पर अपना पूरा प्रभाव दिखा सके इस अर्से में उन्होंने कुछ निश्चित रोगों पर प्रभाव दिखाने वाली अचूक पेन्सिलीन के योगिक तयार करने पर वह सफल हो गये हैं अब उन्होंने घोषणा की है कि रक्त विकार, फुप्फुस प्रदाह, पूयमेह आदि कुछ रोगों पर निश्चित लाभकारी पेंसिलीन आविष्कृत हो चुकी है और जल्दी ही यह पेंसिलीन जन समाज को मिलने लगेगी।

यह संगठन शक्ति का ही प्रभाव है कि मिल कर काम करने से बड़े २ कठिन कार्य भी आसानी से हल हो जाया करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवशर्मा भुक्त भोगी कैसे बना

मेरे पर और पं० रामनारायण जी पर जो मान-हानि का दावा शिवशर्मा ने किया था उसका जो निर्णय माननीय न्यायाधीश ने दिया था। उस पर शिवशर्मा ने अदालत के निर्णय पर टीका टिप्पणी करते हुए हिन्दी अंगरेजी में अपनी सफाई सम्मेलन पत्रिका में प्रकाशित की थी। यह वास्तव में अदालत की मानहानि का मामला था इसीलिये पं० रामनारायण जी ने एक प्रार्थना-पत्र देकर हाईकोर्ट का इस ओर ध्यान आकर्षित किया। अदालत ने पं० शिवशर्मा और स्वामी चेतनानन्द सम्पादक पत्रिका से जवाब-तलब किया। इन दोनों व्यक्तियों ने हाईकोर्ट के सामने किस तरह से क्षमा याचना की और कोर्ट तथा प्रार्थी का खर्चा अदा किया उसकी अदालत द्वारा प्रतिलिपि प्राप्त हुई निम्न है—

बम्बई हाई कोर्ट का फैसला ति. १४-८-५८

प्रार्थी—पं० रामनारायण शर्मा

उत्तरवादी—१. पं० शिवशर्मा

२. स्वामी चेतनानन्द,

उत्तरवादियों ने कहा है कि जिस मान्य न्यायाधीश ने फैसला सुनाया जो इन लेखों का विषय है उस पर अथवा सामान्य कानूनी अदालत पर किसी प्रकार से प्रतिकूल टीका टिप्पणी करने का उनका अभिप्राय नहीं था। उन्होंने लेख में आये ऐसे परिच्छेदों पर हार्दिक खेद प्रकट किया है जो अनजाने में उस लेख में आ गये हों, जिनसे अदालत की मानहानि हो सकती है। हम दोनों उत्तरवादियों की ओर से की गई इस क्षमा याचना को स्वीकार करते हैं और रूल को खारिज करते हैं। उत्तरवादियों ने यह भी स्वीकार किया है कि आज से दो मास के भीतर भीतर वह उत्तरवादी संख्या २ द्वारा प्रकाशित पत्रिका में हिन्दी और अंगरेजी दोनों भाषाओं में यह प्रकाशित कर देंगे कि उत्तरवादी संख्या एक के हस्ताक्षरों से जो लेख उनके द्वारा प्रकाशित किये गये हैं उनके सम्बन्ध में उन्होंने इस अदालत से क्षमा याचना करली है। उत्तरवादी ४५) रुपये खर्चा प्रार्थी को अदा करे और ४५) रुपया सरकार का खर्चा अदा करे।

शिवशर्मा बड़ा झगड़ालू है एक और प्रमाण

१४-८-५८ को हाई कोर्ट के सामने शिवशर्मा ने जब क्षमा याचना की थी और खरचा दिया था। खर्चा देने की बात प्रकाशित न की जाय क्योंकि इससे उसकी बदनामी फैलती है और ख्याति में बट्टा लगता है। इसलिये उसने इसे प्रकाशित न करने का वायदा अदालत के सामने प्रार्थी के वकील से लिया होगा। किन्तु वह अपने मुअक्कल को इसकी सूचना देना भूल गया। इसी भूल से वह प्रकाशित हो गया बस, शिवशर्मा ने चट कोर्ट का ध्यान एक प्रार्थना पत्र देकर खींचा। उसी का यह निम्न फैसला है!

बम्बई हाई कोर्ट का फैसला तिथि ३०-१०-५८

श्री चैनानी कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश

श्री पटेल न्यायाधीश

प्रार्थी—पं० शिवशर्मा

उत्तरवादी—पं० रामनारायण शर्मा,

जब उत्तरवादी ने प्रार्थी के विरुद्ध अदालत मान हानि की कार्यवाही किये जाने का आवेदन पत्र दिया था तो उनके वकील श्री जेठमलानी ने जो श्री वर्मा के साथ उनकी ओर से पेश हुए थे यह आश्वासन दिया था कि हमारे द्वारा खरचे के सम्बन्ध में दी हुई आज्ञा को वह विज्ञापित नहीं करेंगे। कार्यवाही समाप्त होने के बाद उत्तरवादी के वकील श्री वर्मा जो अदालत में उपस्थित थे, ने उत्तरवादी को निम्न तार भेजा।

शिवशर्मा ने अदालत से क्षमा याचना करली है, शिवशर्मा को ९०) खरचा अदा करने की आज्ञा हुई है।

उसने अपने तार में यह नहीं लिखा कि खर्चे के सम्बन्ध में विज्ञापन नहीं करना चाहिये, यह उसे लिखना चाहिये था। श्री वर्मा ने एक शपथ पत्र दिया है जिसमें उसने कहा है कि अदालत को दिये उक्त आश्वासन के सम्बन्ध में उन्हें ऐसा स्मरण है कि खर्चे के सम्बन्ध में अनुचित विज्ञापन नहीं किया जायेगा। श्री वर्मा अदालत में उपस्थित हैं और उन्होंने हमें सूचना दी है कि इस गलत धारणा के कारण उनका कार्य सद्भावपूर्ण था। और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि अदालत को दिये गये आश्वासन का अर्थ उन्होंने यह समझा होता कि खरचे के सम्बन्ध में अदालत की आज्ञा को विज्ञापित नहीं करना तो वह उत्तरवादी को दिये तार में इसका उल्लेख करते। श्री वर्मा के इस कथन पर अविश्वास करने का हमारे सामने कोई कारण नहीं।

खर्चा अदा करने की आज्ञा का समाचार १० जुलाई को उत्तरवादी द्वारा प्रेस में प्रकाशनार्थ भेजा गया। यह समाचार १२ जुलाई को प्रकाशित हुआ। उससे पूर्व ११ जुलाई को श्री वर्मा उत्तरवादी से मिले थे और उन्हें आश्वासन के सम्बन्ध में अपनी धारणा से सूचित किया श्री वर्मा का कथन है कि उन्होंने उत्तरवादी को केवल यही बताया कि खर्चा देने सम्बन्धी आज्ञा का अनुचित विज्ञापन नहीं किया जाना चाहिये। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि इस आज्ञा के सम्बन्ध में समाचार प्रकाशित करने से उत्तरवादी ने अदालत की मान हानि की है। परन्तु इस अदालत को दिये गए आश्वासन का भंग हुआ है। अदालत में जो कुछ हुआ था उसका विवरण श्री वर्मा से सुनने के बाद उत्तरवादी को समाचार पत्रों में इस समाचार के प्रकाशन को रोकने के सम्बन्ध में पग भी उठाने चाहिए थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

वर्तमान कार्यवाही की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्योंकि उत्तरवादी की ओर से अदालत को दिए आश्वासन का भंग हुआ इसलिए हम सरकार और प्रार्थी दोनों का खर्चा दिये जाने की आज्ञा देते परन्तु हम यह देखते हैं कि जिस पत्रिका में इस अदालत के सामने की गई क्षमा याचना प्रकाशित हुई है, उसी पत्रिका में एक सम्पादकीय लेख है जिसमें उस लेख को उचित सिद्धकरने का प्रयास किया गया है जिसके सम्बन्ध में अदालत से क्षमा याचना की गई है। इस बात को देखते हुए हम यह नहीं समझते कि हम प्रार्थी के पक्ष में खर्चा अदा करने का आदेश दें। प्रार्थी के वकील श्री रजनी पटेल ने प्रार्थी की ओर से कहा है कि उक्त पत्रिका में जो सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ है उसके लिए वह जिम्मेदार नहीं हैं। इस बात को देखते हुए हमारे लिए प्रार्थी के इस कथन को स्वीकार करना कठिन है कि यह लेख पत्रिका में उसीदिन प्रकाशित हुआ जिस दिन पत्रिका के पिछले पृष्ठ पर क्षमा याचना का समाचार प्रकाशित हुआ। इस परिस्थिति में खर्चे के सम्बन्ध में हम प्रार्थी के पक्ष में कोई आदेश नहीं देना चाहते। उत्तरवादी को इस सम्बन्ध में सरकार का खर्च दे देना चाहिए।

पक्षाघात की अपूर्व दवा

आज चार वर्ष की बात है कि डाक्टर जोनास सल्क ने एक ऐसा सूचीवेध आविष्कृत किया था जो बाल पक्षाघात पर बहुत लाभकारी था। किन्तु कुछ दिन के प्रयोग करने पर उसमें कुछ दुर्गुण दिखाई पड़े और कुछ बच्चे मर गये। यह खबर संसार में फैल गई। किन्तु डाक्टर साल्क इससे निराश नहीं हुए। वह बराबर अनुसन्धान में लगे रहे डेढ़ वर्ष के प्रयत्न से उसके वह दोष दूर करने में सफल हो गए। आज यह सूची वेध इतना लोकप्रिय हो रहा है। और प्रत्येक देश की सरकारें इसकी मांग कर रही हैं। सारे संसार को अमेरिका ही यह सूचीवेध भेजता रहे और पैसे बटोरे यह अच्छी चीज नहीं है अमेरिकन सरकार ने इसका योग अन्तर्राष्ट्रीय रूप में प्रकट कर दिया है इसी से अब अनेक देश स्वयं इसे बनाने लगे हैं।

बहरों को भी शल्य चिकित्सा से सुनाई देने लगा

मौंट सिनाई अस्पताल के शल्य चिकित्सक डाक्टर सेम्यूल रोजन १९५६ में जब भारत आये थे तो यहां के डाक्टरों को अपनी शल्य चिकित्सा की विधि सिखाने के उद्देश्य से उन्होंने चार व्यक्तियों के कान की शल्य क्रिया कलकत्ते में की थी और ३ व्यक्तियों की उन्होंने बम्बई में की थी यह सातों व्यक्ति जो सुन नहीं सकते थे, उन्हें शब्द बोध होने लगा था इनमें एक व्यक्ति तीन वर्ष बाद मुझे मिला, उसे सुनाई तो देने लगा था, किन्तु उसके कान में जहां शल्य कर्म हुआ था वहां नासूर बन गया था वह अब जाकर ठीक हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिश्याय के कारण का प्रत्यक्ष ज्ञान

वैद्यों को विद्यमान समय में जो अनुसन्धान हो रहे हैं उनके सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी होती है क्योंकि वह इस समय के अनुसन्धान में—जो चिकित्सा से सम्बन्ध रखते हैं—उन्हें वह आयुर्वेद का अंग नहीं मानते। यह उनकी भारी भूल है।

मानव प्राणी को जो भी व्याधियां होती हैं वह समस्त भूभाग पर बसने वाले प्रत्येक प्राणी पर एक सी लगती हैं। ऐसा नहीं होता कि जो राजयक्ष्मा भारतीयों को लगता है वह यूरुप वालों को न लगता हो, प्रत्युत सबको एक सा लगता है और इन व्याधियों के उत्पादक कारण भी दो प्रकार के नहीं होते। जब किसी व्याधि का कारण एक हो और हम उस कारण को बिना प्रत्यक्ष किये किसी और रूप में मानते हों तो हमारा माना हुआ यह कारण तभी सत्य हो सकता है जब हम उसे प्रत्यक्ष करलें। जब तक प्रत्यक्ष न करें वह विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। दुर्भाग्य से आज ५-६ शताब्दी से वैद्य समाज प्रयोग के क्षेत्र से हटता हटता इतना हट गया है कि इस समय आयुर्वेद में अनुसन्धान और प्रयोग द्वारा किसी बात की सत्यता को जानने समझने का कोई साधन ही नहीं रह गया। किन्तु इसके विरुद्ध विदेशों में काफ़ी से अधिक अनुसन्धान के काम हो रहे हैं, वहां इतनी अधिक प्रयोग विधियां विकसित हो चुकी हैं कि सूक्ष्म से सूक्ष्म महान् सूक्ष्म को भी प्रत्यक्ष देखने समझने का प्रयत्न हो रहा है और वैज्ञानिक इस सूक्ष्मता की अन्तिम सीमा तक पहुँच गये हैं, कि शायद ही उससे सूक्ष्म सजीव प्राणी हों।

हमारी सूक्ष्मता की सीमा त्रसरेणु थी, किन्तु वैज्ञानिक इस त्रसरेणु से सैंकड़ों गुणा सूक्ष्म जीवाणुओं कीटाणुओं को प्रत्यक्ष कर चुके हैं। किन्तु जब इन सूक्ष्म जैवों के बाद इनसे भी सूक्ष्म सैंकड़ों गुणा सूक्ष्म वीरसाणुओं का उन्हें जब आभास मिला और उन वीरसाणुओं से मसूरिका कक्षा आदि अनेक रोग के होने का भान हुआ तो इन वीरसाणुओं को प्रत्यक्ष देखने जानने का प्रयत्न होने लगा। वैज्ञानिक जगत् किस द्रुत गति से आगे बढ़ रहा है इसी से अन्दाजा लगाइये कि कुछ ही दिनों में अनुसन्धान कर्ताओं ने ऐसे वैद्युतिक सूक्ष्म दर्शक यन्त्र का आविष्कार कर लिया जिसके द्वारा लाखों गुणा सूक्ष्म सत्ता वाली सूक्ष्म वस्तु प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी। इसी यन्त्र की सहायता से जाना गया कि प्रतिश्याय, श्वास, फ्लू आदि श्लेष्मज व्याधियां किसी दोषज कारणों से नहीं होतीं, प्रत्युत इनके उत्पादक कारण यही वीरसाणु हैं। यही वीरसाणु जब जन-पद-विध्वन्सी होकर हवा मन्डल में व्याप्तमान हो जाते हैं तभी फ्लू जैसी मारक व्याधियां संसार व्यापि होती हैं। पिछले वर्षों जब जापान में प्रादुर्भाव हुआ फ्लू संसार व्यापि हो गया था, वह इन्हीं वीरसाणुओं से उत्पन्न होने वाला रोग था।

क्या जीवाणुओं कीटाणुओं वत् इनकी कृषि की जा सकती है

यह वीरसाणु इतने सूक्ष्म आकार प्रकार के हैं कि किसी एक निश्चित व्याधि के इन वीरसाणुओं को दूसरे वीरसाणुओं से पृथक् करना असम्भव समझा जाता था, जब तक किसी एक प्रकार के वीरसाणुओं को पृथक् न कर लिया जाय तब तक इनका कृषिवत् रोपण, वर्धन कठिन था। किन्तु वैज्ञानिक इस प्रयत्न में लगे हुए थे कि किसी तरह इन्हें भी शुद्ध एक प्रकार के वीरसाणुओं को पृथक् करके इनकी भी कृषि बढ़ाई जाय। अभी ताजी सूचना प्राप्त हुई है कि शेफील्ड अनुसन्धान शाला के डाक्टर रिचर्ड सुटन ने प्रतिश्याय के वीरसाणुओं को शुद्ध रूप में भिन्न कर लेने में सफलता प्राप्त करली है सरकारी तौर पर भी इसकी पुष्टि करदी गई है कि यह सही है। अब वह इसकी कृषि करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यदि इन्हें रोपण विधि से कृषि बढ़ाने में सफलता मिल गई तो इसका अर्थ है कि वह जिस देश के हवा मंडल को दूषित करना चाहेंगे कर सकते हैं। वहां जाकर इन वीरसाणुओं को हवा मण्डल में छोड़कर हवा दूषित कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य समालोचना

विश्व विज्ञान

(स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य की नई रचना)

वैद्यों को देखने समझने की इसमें क्या चीज है? आयुर्वेद पढ़ते ही सबसे पूर्व यह जानने की जरूरत होती है कि शरीर की रचना किन तत्त्वों से हुई? जब तक शरीर की रचना करने वाले तत्त्वों को नहीं जाना जा सकता तब तक दोषों को नहीं समझा जा सकता। तत्त्व पांच हैं या इससे अधिक? इसका प्रत्यक्षीकरण दर्शन ग्रन्थों की रचना के समय नहीं हुआ था। न इस बात को सही तौर पर देखा समझा जा सका था कि विश्व की रचना के पंच तत्त्व ही कारण है या कोई अन्य तत्त्व। इसी बात का प्रत्यक्ष विवेचन इस ग्रन्थ में किया गया है कि शरीर रचना किन तत्त्वों से हुई। शरीर की रचना का और विश्व की रचना का ठीक ज्ञान होने पर ही हम आयुर्वेद में प्रवेश करने के अधिकारी बनते हैं। जो विषय दर्शन ग्रन्थ में अत्यन्त संक्षेप में था उसका प्रत्यक्ष प्रायोगिक ज्ञान इस विश्व विज्ञान में है। वास्तव में विश्व विज्ञान आयुर्वेद प्रवेश से पूर्व पढ़ने पर वैद्य निर्भय होकर शरीर के मर्म को समझने के योग्य हो सकता है। यह पुस्तक कितनी ज्ञानवर्धक है। इस पर जो समालोचनाएं अब तक प्राप्त हुई हैं पाठक उससे इसकी उपयोगिता का अन्दाजा लगा सकते हैं। २५० पृष्ठ के ठोस मैटर का मूल्य केवल ३)।

दैनिक नवभारत टाईम्स दिल्ली २५-१-५९

प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक विज्ञान के विभिन्न पहलुओं को सरल भाषा में समझाया गया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि यह पुस्तक आम आदमी के लिये विज्ञान का कोष है। विश्व-विस्तार, विद्युत शक्ति, पदार्थ, पृथ्वी, जीवनोत्पत्ति, हवा मंडल, जल मंडल आदि का विवरण है। अन्त में अंग्रेजी शब्दों के हिंदी रूप दिये गये हैं।

धनवन्तरि दिसम्बर १९५८ अंक

आयुर्वेद में मानव का महत्व है उसकी चिकित्सा का ध्येय है। इस मानव प्राणी को समझने के लिये संसार की रचना और प्रकृति का रहस्य जानना आवश्यक है। यह सजीव विश्व जिस सत्ता का अंश है उसी का अंश मानव प्राणी भी है। हमारे दर्शन शास्त्रों में विश्व रचना को सोचने में जो मान्य सिद्धान्त थे उन्हें आधुनिक विज्ञान ने प्रत्यक्ष दिखाकर परिवर्तन करा दिया है। ९८ मौलिक तत्त्वों के सम्मिलन से ही पदार्थों की रचना है। इस आधार पर लेखक ने प्राचीन के साथ नवीन विज्ञान का दृष्टिकोण उपस्थित कर आयुर्वेद के सम्मुख मानव शरीर पर सोचने का दृष्टिकोण उपस्थित कर दिया है।

हमारा प्रयोग क्रम या विदेशी विज्ञान क्रम किसी देश या जाति की निजी सम्पत्ति नहीं है जो श्रेष्ठ लाभदायक हो उसी को सहर्ष सभी अपनालें। यदि हमारे प्रयोगों से आधुनिक प्रत्यक्ष प्रयोग अच्छे हैं तो हमें उन्हें अपनों के सामने अवश्य अपना लेना चाहिए।

प्रयोग विज्ञान को जानने से पहिले यह जान लेना आवश्यक है कि वर्तमान में विज्ञान का रूप क्या है? वह कितना बढ़ा हुआ है उसके साधारण सिद्धान्त क्या हैं। बस इन बातों को जानने के लिये ही यह पुस्तक लिखी है। यह सब एक वैद्य के द्वारा संकलन हुआ है जिसमें साधारण जन या वैद्य इस समय के वैज्ञानिक उन्नति को देखें और उसे समझें। लेखक पुराने रूढ़िवादी बन्धनों, विश्वासों को तोड़ फेंकने में सदैव ही तत्पर रहे हैं उनकी दृष्टि सदैव एक वैज्ञानिक का मत रहा है यह कृति भी उनकी उसी दृष्टि की भारी रक्षा करती है। पुस्तक सुन्दर कागज पर सुन्दर टाइप में छापी गई है।

सुधा निधि प्रयाग

यद्यपि स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य आयुर्वेद के कटु आलोचक हैं तथापि उनकी यह हार्दिक इच्छा है कि आयुर्वेद आजकल के विज्ञान के साथ उन्नत अवस्था में दिखाई पड़े और वैद्य आयुर्वेद के प्राप्त ज्ञान से ऊँचे उठकर विश्व के ज्ञान भण्डार का भी परिचय प्राप्त करें। इस पुस्तक में उन्होंने विश्वविख्यात वैज्ञानिक विषयों का वर्णन देकर हिन्दी भाषा के पाठक और वैद्यों की वैज्ञानिक रुचि की पूर्ति के लिये प्रयत्न किया है। पुस्तक में सात परिच्छेद हैं और प्रत्येक परिच्छेद के अन्तर्गत कितने ही अभीष्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयों का विवेचन किया गया है। १९ पृष्ठों में भूमिका लिखने के बाद प्रथम परिच्छेद में विश्व का विस्तार बतलाते हुए प्रकाश, विश्व का आकार, आकाशगङ्गा, नीहारिकाएँ, लोकरचना, सूर्य की रचना और नीहारिकाओं के पदार्थों का परिचय दिया गया हैं। दूसरे परिच्छेद में विद्युत, रश्मि, सताणु, महत और महत की व्यापकता, विद्युत और महत, प्रकाश, शक्ति-गति, रश्मियां, रजाणु-सताणु, ब्रह्माण्डरश्मि, दीप्त्याणु आदि का वर्णन है। तृतीय परिच्छेद में पदार्थ, परमाणु, सताणु, रजाणु, घनताप, तत्व-अहङ्कार, तत्त्वों के भेद, पदार्थों में परिवर्तन, धातुतत्त्व, वायु और अधातुतत्त्व आदि अनेक विषयों का वर्णन है। चतुर्थ परिच्छेद में पृथ्वी के सम्बन्ध में विस्तृत विचार हुआ है। पांचवें परिच्छेद में जीवनोत्पत्ति क्रमानुसार स्तर विभेद का वर्णन और विविध जीवों का रोचक वर्णन है। छठे में वायु-हवा मण्डल का विस्तृत वर्णन है। सातवें परिच्छेद में जल-मण्डल और चेतन सृष्टि का विवरण है। अन्त के पृष्ठों में वैज्ञानिक परिभाषिक शब्दों का हिन्दी और अंग्रेजी में पर्याय है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। कितनी ही पुरानी धारणाओं को नया स्वरूप मालूम होगा। कितनी ही पुरानी जानकारी का नया स्वरूप मालूम होगा। पुस्तक प्रत्येक विज्ञान प्रेमी विद्यार्थी के पढ़ने योग्य है। सुन्दर छपाई, सफाई और जिल्द बँधी छोटे टाइप के सवा दो सौ से अधिक पृष्ठों की पुस्तक का दाम ३) है।

डा० सत्यप्रकाश डी० एस० सी०

म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग, लिखते हैं :—

श्री हरिशरणानन्द जी वैद्य अपने आयुर्वेदिक साहित्य के लिए हिन्दी जगत में समुचित ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। वैद्य जी के लिखित अनेक ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। आपने त्रिदोष सिद्धान्त के विरोध में आयुर्वेदज्ञों का जो ध्यान आकर्षित किया था वह ऐतिहासिक महत्व का है। स्वामी जी का आयुर्वेद रसायन का व्यवहारिक और सैद्धान्तिक ज्ञान अच्छा है। आप आधुनिक रसायन के विकास से भी परिचित हैं और आप उन प्रगतिशील व्यक्तियों में से हैं जो वैज्ञानिक अनुसन्धानों से लाभ प्राप्त करने के लिए सर्वदा उद्यत रहते हैं। यह हर्ष की बात है कि श्री हरिशरणानन्द जी ने विश्व विज्ञान सम्बन्धी यह महत्वपूर्ण पुस्तक हमारे समक्ष रक्खी है। इस पुस्तक में सात परिच्छेद हैं जिसमें विश्व विस्तार, विद्युत, प्रकाश, विविध रश्मियां, परमाणु, तत्व, परिवर्तन, गुरुत्व आकर्षण, पृथ्वी और उसके पर्वतों का जन्म, भूकम्प, जीवनोत्पत्ति सम्बन्धी विविध खंड, वायु मण्डल, जल मण्डल, आदि विषयों पर रोचक, सरल और उपयोगी विवरण दिए हैं। लेखक की शैली सरल और भाषा प्रांजल है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि श्री हरिशरणानन्द जी के इस उपयोगी ग्रन्थ से समुचित लाभ उठावें। पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दों की एक सूची है। लेखक से हमारा अनुरोध यह है कि वह इस पुस्तक के आगामी संस्करण में उस शब्दावली का प्रयोग करें जिसको भारतीय शासन द्वारा मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

दैनिक स्वतन्त्र भारत लखनऊ दिसम्बर १९५८

जैसा कि भूमिका में इंगित है, अभी इसी शृंखला में मानव जीवन विकास और पाखण्ड विज्ञान शीर्षक से दो रचनाएं इसी लेखक से और प्राप्त होने वाली हैं। भूमिका में ज्ञान-विज्ञान की परिभाषा, त्रिकालज्ञ दृष्टि, आस्तिकता, पारिभाषिक शब्द, तथा संकेत व सूत्रों का विवेचन है। उसी को देखकर कोई भी बिना पूरी पुस्तक पढ़े तथा अन्य की प्रतीक्षा किये नहीं रह सकता। आज भी कुछ मनीषी यह माने बैठे हैं कि ज्ञान-विज्ञान के उच्च तत्वों पर मौलिक विचार तथा ग्रंथ रचना हिन्दी में उपलब्ध नहीं। प्रस्तुत रचना उनकी मान्यता की चुनौती है। अन्त में अंगरेजी शब्दपर्याय दिये हैं जिनसे पता चलता है कि हिन्दी शब्द अधिक सरल और प्रभावशाली हैं।

रचना-शैली बड़ी रोचक है। कहीं-कहीं तो लेखक ने विज्ञान के क्षेत्र में कवित्व को पहुँचा दिया है।

गेटअप और छपाई स्वच्छ तथा सुन्दर है। मूल्य सामग्री को देखते हुए कम है। पुस्तक अवश्यमेव पठनीय एवं संग्रहणीय है।

दैनिक विश्वामित्र कलकत्ता २१ दिसम्बर, १९५८

श्री हरिशरणानन्द वैद्य द्वारा विरचित 'विश्व विज्ञान' सामयिक एवं मौलिक ग्रन्थ है। विज्ञान की मौलिक पुस्तकों का हिन्दी में अत्यधिक अभाव है। यह पुस्तक अपने में परिपूर्ण है इसके अध्ययन से यह पता चलता है कि लेखक को विविध सामग्री के संकलन में बड़ी कठिनाइयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का सामना करना पड़ा है। यद्यपि पुस्तक आकार में विषयानुसार बहुत छोटी है (लगभग २५० पृष्ठ) परन्तु सार रूप में सभी विषयों का समावेश है। महत्वपूर्ण विषयों का जिनका आज के युग में विशेष महत्व है स्पष्टीकरण वृहद् क्षेत्र में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक ढंग से किया गया है।

महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने लेखक की विज्ञान सम्बन्धी कृतित्व की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इस पुस्तक की रचना उस समय जब स्वतन्त्रता संग्राम में २ वर्षों के लिए जेल में १९२९ से रखे गये थे वैद्य जीने अपने समय का सदुपयोग करने की दृष्टि से सृष्टि रचना शास्त्र नामक वृहद् ग्रन्थ की रचना कर डाली जिसको श्री राहुल जी के परमर्शानुसार तीन भागों में (१) विश्व विज्ञान (२) मानव-जीवन-विकास (३) पाखण्ड विज्ञान में विभक्त कर दिया गया। 'विश्व विज्ञान' के अतिरिक्त अन्य दो भाग अभी अप्रकाशित है।

पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी भाषा विशुद्ध किन्तु सरल हिन्दी है। उर्दू या अंग्रेजी के शब्दों को ठूस कर भाषाओं का अजायबघर नहीं बनाया गया है। पुस्तक विज्ञान प्रेमियों एवं विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। पुस्तक आकर्षक आवरण पष्ठ से युक्त सजिल्द है।

घुमक्कड़ स्वामी

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी महाराज का जीवन चरित्र

[ले०महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी]

साधु बन कर योगाभ्यास की लगन में किसी पहुँचे योगी की खोज में किस तरह हिमालय की कंदराओं में कैलाश मानसरोवर तक उन्हें ढूंढते फिरे ? किस तरह योगाभ्यास में रमे और विघ्न पड़े ? किस तरह फिर वैद्य बन कर हिमालय में जड़ी बूटियां ढूंढते फिरे ? फिर बिना पूंजी के लक्षाधीश बनने की अभिलाषा लेकर फार्मेसी की स्थापना की। इन सब बातों का अत्यन्त रोचक वर्णन विश्व विख्यात लेखक श्री राहुलजी की ओजस्विनी लेखनी द्वारा अंकित इस पुस्तक में पढ़िये। १५वर्ष वैद्य बनकर घुमक्कड़ जीवन में जो अनेक देशाटन के समय उन्हें अनेक चमत्कारिक योग साधु सन्तों एवं रसायनियों से प्राप्त हुए थे, वे योग भी इस ग्रन्थ के अन्त में स्वामी जी ने प्रकट कर दिये हैं। मूल्य केवल ३)।

इस पुस्तक पर समालोचना

—डा.सत्य प्रकाश डी०एस०सी०म्योर सेण्ट्रल कालेज प्रयाग

इस पुस्तक में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ महापंडित श्री राहुल संकृत्यायन ने श्री वैद्य हरिशरणानन्द जी के उस प्रारम्भिक जीवन का मनोरंजक विवरण दिया है जो वैद्य जी ने सन्यासी के रूप में बिताया था। राहुल जी ने अपनी शुद्ध भाषा में बहुत ही सरल और सरल शैली में श्री हरिशरणानन्द जी के कर्मठ जीवन का इसमें उल्लेख किया है। हम राहुल जी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति के जीवन की झांकी हमारे सामने प्रस्तुत की है जिसने उच्च आदर्शवाद को व्यवहारिक स्तर पर सत्य सिद्ध करके हमारे समक्ष रक्खा। पुस्तक रोचक और पठनीय है।

कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान

यह ग्रन्थ स्वामी हरिशरणानन्दजी की मौलिक कृतियों में से एक है। इस ग्रन्थ की ऐतिहासिक पदार्थ सामग्री सञ्चित करनेमें आपने १५-१६ वर्ष व्यतीत किये और जिन कूपीपक्व रसोंको आप अनेक प्रकारसे बनाकर इसविषयको आज ३०वर्ष से समझते व अनुभव लेते आ रहे हैं उन्हीं रहस्योंका उद्घाटन आपने अपने इसग्रन्थमें किया है। इस ग्रन्थको आयुर्वेदमार्तण्ड यादवजी त्रिकमजी आचार्यने आयुर्वेद विद्यापीठके रसतन्त्र की पाठ्यविधिके आलोच्य ग्रन्थोंमें रखने की सिफारश की है।

२०×३० सोलह पेजी ऐण्टिक पेपर पृष्ठ संख्या ५०० आर्ट पेपर पर मनोहर १४ चित्रोंसे सुसज्जित, ग्रन्थ का मूल्य सजिल्द ५) रुपया, पोस्ट और पैकिंग खर्च भिन्न।

इस ग्रन्थ पर सम्मतियां

(२)श्रीयुत बालचन्द्र जी नाहटा सरदार शहर, बीकानेर से १९-२-४२ के पत्र में लिखते हैं—बहुत अर्से के बाद आप को यह पत्र लिख रहा हूँ। दो कारणों से—एक तो आप को बधाई देने के लिये और दूसरे कुछ जानने के लिये।

बधाई ! आपके अनुपम ग्रन्थ 'कूपीपक्व-रसनिर्माण-विज्ञान, के प्रकाशनार्थ है जिसको पढ़कर मैंने बहुत अधिक व्यावहारिक ज्ञानप्राप्त किया। मैं आपके उक्त ग्रन्थमें दिये विधानकी विद्युत भट्ठी बनाने की बहुत इच्छा रहने पर भी समयाभावसे कलकत्ते में न बना सका। किन्तु सामान लाकर एक विद्युत् भट्ठी की सहायता से यहां उसे तैय्यार किया और उसमें १०तोला पारद, १० तोला गन्धक, १ तोला सुवर्ण डालकर उस विद्युत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भट्ठीमें मकरध्वज चढ़ाया। १००० हजार वाट प्रति घण्टे के हिसाबसे विद्युत् शक्ति खर्च करके ६ घण्टेमें मकरध्वज बना ही लिया।

जिस परीक्षणकी इच्छा वर्षोंसे थी और जिसकेलिये कलकत्ता की एक फर्मने विद्युत् भट्ठीकी कीमतका इस्टीमेट २५०) का दिया था वह विद्युत् भट्ठी आपकी कृपासे १५) या २०) रुपये में ही बना कर देखली, देखही नहीं ली उसपर कूपीपक्व रस तय्यार भी कर लिया।

इसके लिये आपको बधाई नहीं अनेकानेक धन्यवाद देना चाहिये। किन्तु यदि इतना ही होता तो धन्यवाद देकर ही रह जाता. आपने तो उसमें और इतनी अधिक प्रायोगिक बातें दी हैं जिसके लिये धन्यवाद पर्याप्त नहीं। बधाई इस लिये कि आप अपने प्रयत्न में सफल हुए।

(२) आयुर्वेदिक कालेज पत्रिका, काशी विश्वविद्यालय अक्टूबर १९४१

उपर्युक्त पुस्तक कूपी द्वारा पके हुए रसों पर लिखी गई है। लेखक उन वैद्योंमेंसे हैं जो हर एक विषयको वैज्ञानिक तरीकों से समझने और समझानेका प्रयत्न करते हैं। पूरी पुस्तक इस बात का प्रमाण है। उपोद्घात विद्वत्तापूर्ण है। रसशास्त्र और उससे सम्बन्धित अन्य विषयोंके इतिहास का संग्रह जिस परिश्रमसे किया गया है वह प्रशंसनीय है। स्थान स्थान पर विषय को नवीन विज्ञानके अनुसार स्पष्ट किया गया है। कई रसों पर प्रयोगोंका वर्णन किया गया है। अग्नि देनेके विषय में निश्चित शताँश देकर लेखक ने रसशास्त्रकी दृष्टि से आयुर्वेदज्ञ लोगोंका उपकार ही किया है पृष्ठ १५५ से अन्त तक शास्त्रोक्त कूपीपक्व रसों का वर्णन है। नवीन आयुर्वेद जगत्को ऐसी ही पुस्तकोंकी आवश्यकता है। आशा है वैद्य समुदाय इस पुस्तक का स्वागत करेगा।

(३) नृसिंहदेव शर्म्मा शास्त्री B. A. आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न, रावलपिंडी

श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी

अध्यक्ष 'पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर द्वारा रचित रसायनकी नवीन पुस्तक, कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान मैंने आद्योपान्त पढ़ी है। स्वामी जी की यह मौलिक कृति है, जिसे पढ़कर कोई भी वैद्य रसों को बिना कुछ हानि उठाये निर्माण कर सकता है। स्वामी जी ने वैज्ञानिक सिद्धान्तोंके इस विषय पर गम्भीर और मौलिक विवेचन किया है। पुस्तकके प्रत्येक पृष्ठ से स्वामीजीके अत्यन्त गम्भीर अध्ययन, मनन और विशाल अनुभव का पता लगता है। पुस्तक वैद्य समाजके लिये अत्यन्त उपयोगी और विद्वानोंके लिये संग्रहणीय है।

(४) वैद्य-रत्न कविराज डा. प्रतापसिंह जी

(भू० पू० डायरेक्टर आफ आयुर्वेद राजस्थान)

मैंने श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित 'कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञान, का आपात अवलोकन किया। श्री स्वामी जी सिद्ध-हस्त लेखक हैं।

इसके पूर्व स्वामी जीने 'कूपीपक्व रसायन' और 'त्रिदोष-मीमांसा'नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं और उससे वैद्यसमाज में नवीन चिन्तन का प्रादुर्भाव किया है।

स्वामीजी क्रान्तिवादी हैं। आयुर्वेद समाज के मृत-जीवन में पुनः क्रान्ति करके नवीन जीवन संचार करने के अभिलाषी हैं,इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये कठिन परिश्रम करते रहते हैं।

कूपीपक्व-रस-निर्माण-विज्ञान इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। पुस्तक का प्रकाशन बड़ा ही सुन्दर हुआ है। इसका उपोद्घात् प्रत्येक वैद्यके लिये मनन करने योग्य है। इस उपोद्घात् में पौर्वात्य एवं पाश्चात्य रसायन शास्त्र का क्रमबद्ध अच्छा इतिहास है। यदि पाश्चात्य मौलिक तत्वोंके सामने उनके प्रचलित वैज्ञानिक नाम अंग्रेजी भाषा में भी दे दिये जाते तो पाठकों के लिये अधिक सरलता होती।

मैं स्वामी जी को इस वृद्धावस्था में भी कठिन परिश्रम के लिये हार्दिक बधाई देता हूँ।

आशा है स्वामी जी 'धातुवाद' पर भी विशेष प्रयोग कर आज के आणविक रसायनवाद का विवेचन कर वैद्यों के ज्ञान में परिवर्धन करने का यत्न करेंगे।

भगवान् जगन्नियन्ता से प्रार्थना है कि स्वामी जी को दीर्घायु करे और स्वास्थ्य प्रदान करे ताकि अपने अनुभव और प्रयोगोंसे चिरकाल तक आयुर्वेदका उपकार करते रहें।

क. प्रतापसिंह. १६-९-५२.

आसव विज्ञान

(तृतीय परिवर्द्धित संस्करण)

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेद का एक चमत्कार-पूर्ण अंग आसवारिष्ट का निर्माण क्रम हमारे पास कितने अपूर्ण रूप में रह गया है। सौ बार आसव बनाइये कठिनता से दो-चार बार खराब होने से बचता है। इसका मुख्य कारण है हमारी प्राचीन रीति का लुप्त हो जाना। इसी लुप्त प्रायः विधि को स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से पुनः प्राप्त किया है और उसी को आधुनिक विज्ञान से परिमार्जित कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त पुस्तक में सरल सुस्पष्ट रूप में अंकित किया है। जिसका विस्तार निम्न रूप में है—

[१] आसव की प्राचीनता और उसका ज्ञान, [२] आसव का व्यवहार और उसकी मादकता का अनुभव, [३] नाड़ी यन्त्र का आविष्कार और उसके भिन्न-भिन्न सचित्र रूप, [४] आसव व सुराकी ऐक्यता और उसके प्रभाव, [५] आयुर्वेद में आसव का स्थान [६] आसव बनाने का प्राचीन क्रम व भेद, [७] बने बिगड़े आसव की परीक्षा, [८] आसव बिगड़ने का कारण और उसका विकृत रूप, [९] आसव और चुक्र अम्लादि में भेद, [१०] आसव बनने का कारण, [११] आसव में परिवर्तन और किण्व कीटाणु [१२] आसवोत्पादक वस्तुएं और उनका परिमाण, [१३] उत्ताप ऋतु परिवर्तनादि से आसव का बनना, बिगड़ना, [१४] भिन्न-भिन्न ऋतुओं में आसव का बनाना, [१५] आसव को सुरक्षित रखने का अनुभूत उपाय, [१६] आसव बनाने का अधिकार व राज्य नियम, [१७] आसव का शुद्ध रूप और उसका वैज्ञानिक विश्लेषण [१८] आसव के मौलिक पदार्थ व उनका गुण इत्यादि बातों का खूब अनुभवजन्य वर्णन है। स्वामी जी ने इस पुस्तक को दस वर्ष के परिश्रम के पश्चात् लिखा है।

दूसरे संस्करण की विशेषता

इस पुस्तक का जब पहिला संस्करण निकला तो अनेक रूढ़िवादी वैद्यों ने उस पर पेट भर कर आलोचनायें की। दूसरे संस्करण के प्रकाशन समय में स्वामी जी ने उनकी आलोचनात्मक बातों का जब प्रामाणिक व तर्कसिद्ध उत्तर दिया और उन वैद्यों को आह्वान किया गया कि वे पुनः इन पर अपने पक्ष को पुष्ट करने के साधन ढूंढें, इस पर उन वैद्यों से कुछ न बन पड़ा। तीसरे संस्करण तक उन वैद्यों में से एकने भी उत्तर देने का साहस नहीं किया, न स्वामीजी के दिये तर्कों का किसी ने खण्डन किया। इससे स्पष्ट हो गया कि स्वामी जी के तर्क प्रायोगिक आधार पर स्थित हैं। आसव बनाते समय उन प्रायोगिक बातों की सचाई जब स्पष्ट दिखाई देती है तो वे अपनासा मुंह लेकर चुप हो जाते हैं।

तीसरा संस्करण

इस तीसरे संस्करण में स्वामी जी ने कई संदिग्ध तथा अन्य कई ऐसी बातों की भी व्याख्या दे दी है जिसे वैद्यों द्वारा प्रश्न रूप में उपस्थित किया गया था। पुस्तक अपने विषय की इतनी जानकारी से पुष्ट हो गई है कि वैद्यों को अन्य पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। ऐसी अत्युपयोगी पुस्तक का मूल्य डेढ़ रुपया पोस्ट खर्च भिन्न।

त्रिदोष-मीमांसा

"गवेषणापूर्ण-नव्यउपोद्घातयुक्त विवर्द्धित"

द्वितीय संस्करण

लेखक—स्वामी हरिशरणानंद वैद्य

प्रथम बार जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई थी, वैद्य संसार में खलबली मच गई थी। बहुतसे वैद्योंने उसे पढ़कर अपनी राय दी—कि "स्वामीजीने यह आयुर्वेद जगत् पर एक बड़ा ही जबरदस्त बम मारा है।" यदि उस समय त्रिदोष मीमांसा वैद्य संसारके लिये बमवत थी तो निश्चय ही इसबार उसका उपोद्घात परमाणु बमका रूप ही समझिये।

उस समय वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसामें दिये स्वामीजी के प्रत्यक्ष अकाट्य वैज्ञानिक तर्कों को एलोपैथीके बताकर अपने मनको सान्त्वना देताथा, पर इस बारके दिये उपोद्घातको पढ़कर अब काल्पनिक मृग मरीचिकासे उनकी प्यास नहीं बुझ सकती।

त्रिदोष-मीमांसाका यह उपोद्घात ऐसे वैसे तर्कों व प्रमाणोंसे युक्त नहीं प्रत्युत, यह निबन्ध शुद्ध वेद भगवान् की सर्वोपरि अकाट्य प्रामाणिकताके आधार पर संकलनकर सिद्ध किया गया है कि हमारी प्राचीन चतुर्विध चिकित्सामें आयुर्वैदिक चिकित्साका उद्गम स्थान कहांसे है और वैद्यक वृत्ति का वास्तविक आदि स्रोत कहांसे चलता है।

यदि वैद्य संसार त्रिदोष-मीमांसाके इस दूसरे संस्करणको पढ़ कर भी उस अन्ध प्रगाढ़ निद्रासे न उठा और समयको न पहिचाना तो मानना पड़ेगा कि वैद्य जगत्का अस्तित्व नाम मात्र को है वास्तवमें वह समाप्त हो चुका है। वैद्य संसारको प्रबल उद्बोधन कराने वाली ३०० पृष्ठ की सर्वोत्तम पुस्तक का मूल्य २रु०-५० न. पै., पोस्ट खर्च भिन्न।

सम्मतियां

श्रीयुत डाक्टर सत्यप्रकाश जी एम. डी-लिट्.

वेलीएवन्यू, इलाहाबाद ता० १८-२-४८

"त्रिदोष मीमांसा" के द्वितीय परिवर्धित संस्करण की प्रति के लिये अनेक धन्यवाद।

आपका उपोद्घात मैंने आद्योपान्त देखा। मैं नहीं समझता था कि "त्रिदोष-मीमांसा" जैसे ग्रन्थ के उपोद्घात में प्राच्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयों का इतना सुन्दर समीचीन विवेचन होगा। वैदिक युग पर आपने बहुत अच्छा प्रकाश डाला है इसकेलिये बधाई है। वैद्यवर्ग में त्रिदोषवादके प्रति जो विप्लव आपने आरम्भ किया है, उसका समस्त श्रेय आपको ही रहेगा। न जाने कब हमारा आधुनिक वैद्य समाज रूढ़ियों को त्याग कर सत्यके अन्वेषण के लिये उसी प्रकार अग्रसर होगा, जैसा कि अपने पुरातन ऐतिहासिक काल में था। सत्यप्रकाश

आयुर्वेदाचार्य श्री हरदयालु जी

भूतपूर्व प्रिंसिपल श्रीमद्दयानन्दायुर्वैदिक कालिज, अमृतसर प्रधान—आयुर्वैदिक एगड यूनानी रजिस्ट्रेशन बोर्ड, पूर्वी पंजाब

त्रिदोष मीमांसा—जनवरी १९४८ में प्रकाशित द्वितीय संस्करण मेरे सामने है।

इस संस्करण में लेखक ने विद्वत्तापूर्ण उपोद्घात के ९६ पृ. और बढ़ा दिये हैं। इस उपोद्घात से अनेक भ्रम दूर होजाते हैं, वास्तव में यह उपोद्घात सर्वप्रथम पठनीय है। इसमें संशयात्मक स्थलों पर प्रकाश डाला गया है तथा नये और प्राचीन प्रमाणों से सन्देह स्थलों को बोध गम्य बनाने का सफल प्रयास हुआ है।

त्रिदोष मीमांसा के प्रथम संस्करण को पढ़कर वैद्य समुदाय में एक विशेष प्रकार का वायुमण्डल उत्पन्न हुआ था, उन सब प्रश्नों तथा आक्षेपों का उत्तर पूर्ण प्रयत्न से दिया गया है। यदि इससे वैद्य समुदाय का सन्तोष हो जाय तो निःसन्देह लेखक का प्रयत्न सफल समझना चाहिये।

इस विचार से लेखक महोदय अवश्य धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने आयुर्वेदोन्नति के सम्बन्ध में निर्भीकता से अपने विचारों को लेखबद्ध करके आयुर्वेद के महारथियों को सचेत कर दिया है। मत भिन्नता के आधार पर किसी का विरोध करना आर्यत्व का चिन्ह नहीं है। विचारास्पद गहन विषय सर्वदा गूढ़ मनन और तद्विषयक सम्भाषा परिषदों द्वारा निर्णय-स्थान तक पहुँच पाते हैं, लेखक के हृदय में आयुर्वेद के प्रति अश्रद्धा व घृणा नहीं है, प्रत्युत वह उसे विज्ञानानुमोदित शिलातल पर देखना चाहते हैं।

हरदयालुवैद्य १३-४-४८

ज्वर-मीमांसा

आयुर्वेद-ग्रन्थों में जिन ज्वरों व सन्निपातों का उल्लेख आता है, इस समय उनमें से कौन-कौन से ज्वर तथा सन्निपात मिलते हैं उनके इस समय नाम रूप और लक्षण क्या हैं? तथा कौन-कौन से ज्वर व सन्निपात इस समय नहीं मिलते, लुप्त हो चुके हैं। इसका ठीक-ठीक ज्ञान बहुत कम वैद्योंको है।

चिकित्सा के लिये रोगका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना बहुत जरूरी बात है। लक्ष्य को जिसने लक्षित नहीं किया वह ठीक निशाना नहीं लगा सकता। जो वैद्य रोग को (ज्वर) नहीं पहचान पाते निश्चियही वह चिकित्सामें कभी सफल नहीं होते।

इस प्रकार के कठिन कामों को करनेका काम तो निखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन के संचालकों का था, वह वैद्य समुदायको प्राचीन और अर्वाचीन ज्वरों (रोगों) का विवेचन करके आधुनिक समय के अनुकूल उन्हें मार्ग प्रदर्शित कर चिकित्सामें उनकी सहायता करते। किन्तु उन्हें अपने ही कामों से अवसर कहां; अकर्मण्यताको देखकर स्वामीजी ने समयानुसार इस कमी को पूर्ण करने का दृढ़ संकल्प किया। उसी के परिणाम-स्वरूप यह ज्वर-मीमांसा है।

स्वामीजी ने ज्वर-सम्बन्धी विषय को लेकर निदानार्थ जो सुझाव पेश किए है तथा रोग-परिज्ञान-सम्बन्धी उनका अपना २५ वर्ष का जो अनुभव था, विस्तृत रूप से दिया है। पुस्तक कितनी उपादेय है वैद्य स्वयं पढ़कर इसकी गम्भीरता का अनुभव ले सकते हैं। मूल्य १रु–५० न० पै०

मन्थर-ज्वर-विज्ञान

(दूसरा संस्करण)

लेखक—स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य

पाठकों को ज्ञात होगा इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 'मन्थर-ज्वरकी अनुभूत चिकित्सा' के नाम से प्रकाशित हुआ था। आज से २५ वर्ष के मध्य मन्थर-ज्वर पर बहुत ही खोजें व छान-बीन हुई, न जाने कितनी नई नई सैद्धान्तिक बातें सामने आई, हजारों रोगियों की चिकित्सा करने पर इतने समय के बाद जो अधिक अनुभव व ज्ञान लेखक को प्राप्त हुआ, उन सबका इस बार के संस्करण में संकलन कर दिया है। चिकित्सा क्षेत्र में पुस्तक की क्रियात्मक उपयोगिता बढ़ाने के लिए आधुनिक प्रत्यक्ष विज्ञान के अनुसार मन्थर ज्वर जीवाणु की उत्पत्ति, वृद्धि एवं संचार का विस्तृत वर्णन उसमें दिया है जिसे पूर्ण तरह से समझ लेने पर इस रोग के प्रसार को रोकने सम्बन्धी समस्त ज्ञान पाठकों को प्रत्यक्ष हो जाता है। मन्थर ज्वर जीवाणु का शरीर के अन्य अंगों पर क्या २ प्रभाव पड़ता है और क्या २

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपद्रव होते हैं। तथा उनकी चिकित्सा का भी पूरा वर्णन है।

लेखक के चिरकालिक अनुभव के आधार पर कुछ ऐसे सांकेतिक लक्षणों का वर्णन दिया है जिन्हें देख कर सन्दिग्धावस्था में न रह कर निश्चयात्मक निदान करने में सहायता मिलती है।

चिकित्सा में भी स्वामी जी के चिरकाल से अनुभूत सिद्ध प्रयोगों के साथ २ नवीन आविष्कृत प्रभाव शाली औषधियों का वर्णन भी है जिससे बिगड़े से बिगड़े रोगी के उपचार में चिकित्सक को सहायता मिल सकती है।

शरीर की रोग रोधक शक्ति (क्षमता) क्या है वह कैसे बढ़ाई जा सकती है? रक्त के श्वेताणु किस प्रकार रोगों के आक्रमण का मुकाबला करते हैं इत्यादि सब बातों का विस्तृत वैज्ञानिक वर्णन भी पुस्तक में किया गया है जो ज्ञान के पिपासु पाठकों के लिये अवश्य ही सन्तोषप्रद सिद्ध होगा। अकेले मन्थर ज्वर पर इतना विस्तार पूर्वक तथा ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थ आपको अन्यत्र न मिलेगा। नव्य ज्ञान विज्ञान से पूर्ण होने के कारण ही पुस्तक का नये सिरे से नाम करण करना उचित समझा गया।

पुस्तक को जो भी वैद्य एक बार पढ़ कर इसमें लिखी विधि अनुसार मन्थर-ज्वर या टायफाइड का निदान करेगा तथा उसकी चिकित्सा में प्रवृत्त होगा वह कभी भी असफल नहीं होगा। मूल्य २) डाक खर्च भिन्न।

वैद्य समाज तथा जनसाधारण का परमसहायक

औषध-गुण-धर्म-विज्ञान

(अर्थात् औषधि गुण परिचय तथा सेवन-विधि)

संशोधित एवं परिवर्धित—तृतीय संस्करण

छप कर तैयार हो गया है जिसकी सहायता से वैद्य समाज के अतिरिक्त साधारण मनुष्य भी आयुर्वेदोक्त प्रत्येक औषधि प्रयोग कर लाभ उठा सकता है क्योंकि इस पुस्तक में रोग-व्यवस्था तथा समस्त विख्यात आयुर्वेदिक औषधियों का परिचय, गुण, सेवन-विधि तथा मात्रादि का निरूपण बहुत ही उत्तम शैली और सरल भाषा में किया गया है। इस बार स्वामी जी ने औषधियों के सम्बन्ध में अपने आज तक के अनुभवों को इस पुस्तक में संकलित कर दिया है।

तृतीय संस्करण की विशेषता यह है कि इसमें आयुर्वेदिक औषधियों के अतिरिक्त स्वामी जी की अपनी जितनी भी अनुभूत पेटेंट औषधियां हैं उन सबका विशद विवेचन तथा लाभ सेवन-विधि मात्रादिक का वर्णन भी अच्छी तरह किया गया है। मूल्य १) डाक खर्च भिन्न।

क्षार-निर्माण-विज्ञान

यह किसी से छिपा नहीं कि आयुर्वेदिक चिकित्सा-पद्धति में भिन्न-भिन्न वानस्पत्योद्भूतक्षारों का काफी प्रयोग होता है। किन्तु हम देखते हैं कि वैद्यों द्वारा बनाये हुए क्षार प्रायः मैले धूसर वर्ण और देखने में चित्तकार्षक नहीं होते।

स्वामी जी ने बड़े परिश्रम से क्षार-निर्माण विज्ञान का अनुभव किया और उसको वैद्यों के लाभार्थ क्रमबद्ध कर दिया है। उसमें निम्नलिखित विषयों का समावेश है :—
१. आयुर्वेदिक-चिकित्सा-पद्धति में क्षारों की उपयोगिता। २. वनस्पतियों के मौलिक तत्व व क्षारोद्भव धातुएं। ३. भिन्न-भिन्न क्षारों का रासायनिक रूप। ४. भिन्न-भिन्न वनस्पतियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षारजन्य धातुओं की मात्रा। ५. भिन्न भिन्न वनस्पति भस्म से क्षार निकालने की विधि। ६. क्षारों का विशुद्ध स्वच्छ बना कर उसको कण रूप में लाना। ७. भिन्न भिन्न क्षारों के गुण और वज्र-क्षार आदि के बनाने का क्रम तथा क्षारों का उपयोग इत्यादि विषय का खूब खुलासा वर्णन है।

मूल्य प्रति पुस्तक ५० नये पैसे

रुद्रयामल तन्त्र

भैरवानन्द योगी कृत

भैरवानन्द योगी ने तान्त्रिक काल के अन्तिम दिनों में एक तन्त्रविषयक रुद्रयामल तन्त्र लिखा था। उस ग्रन्थ के भीतर धातु निरूपणम् नाम से एक अध्याय भिन्न दिया गया था। उस अध्याय के रसायन विषयक-प्रमाणिक अंश के कुछ उद्धरण डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय ने हिन्दू रसायन शास्त्र का इतिहास लिखकर उसके परिशिष्ट में उद्धृत किये थे। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अप्राप्य था। श्रीयुत यादव जी त्रिकम जी आचार्य की कृपा से इस की हस्तलिखित प्रति प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई, दूसरी प्रति कृष्ण गोपाल जी काशी निवासी से प्राप्त हुई दोनों ही प्रतियां लेखन प्रमाद से काफी अशुद्ध थी। उन्हें पं श्रीधर मायाधारी जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य से यथाशक्य शुद्ध कराकर प्रकाशित किया है।

मूल्य ३) रु, पोस्ट खर्च भिन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

सम्पादक, स्वास्थ्य सन्देश, पटना

आयुर्वेद विज्ञान—प्रकाशक : -आयुर्वेद विज्ञान आफिस, २२ फैज बाजार, देहली। वार्षिक मूल्य—३)।

यह मासिकपत्र स्वामी हरिशरणानन्द जी के सम्पादकत्व में सम्पादित होता है। प्रकाशक भी आप ही हैं। कुछ दिन पूर्व भी आप इस नाम का मासिक पत्र निकालते थे। अब पुनः इसी वर्ष इस पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया है। मेरे सामने तीसरा अंक है आपकी लेखनी द्वारा लिखा गया लेख बड़ा ही जोश पूर्ण होता है। आप प्राचीन आयुर्वेद अर्थात् त्रिदोष और पंचभूत वाद के विरोधी रहे हैं। आपका यह मासिक पत्र आपके विचार का प्रचारक है। आपका तर्क भी अपने ढंग का होता है। पत्र तर्क की दृष्टि से सुन्दर है। इसे वैद्यों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

आयुर्वेदाचार्य श्री सरयूप्रसादशास्त्री साहित्यालंकार

विश्वबन्धु आयुर्वेद भवन, गोपालगंज, सारन ८-४-५८

आपका अप्रैल सन् १९५८ का भेजा हुआ 'आयुर्वेद-विज्ञान' मिला। पत्र देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पत्र की छपाई और सुन्दरता सराहनीय है। जिस लगन और परिश्रम के साथ आयुर्वेदीय तत्त्वों का अनुसंधान किया जा रहा है वह समाज के लिये अमृत देन है। आयुर्वेद को देश के राष्ट्र चिकित्सा पद पर आसीन करने के पहले इस प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आवश्यक था जिस को आप पूरा कर रहे हैं। मैं आयुर्वेद-विज्ञान की कला की भूरि-भूरि प्रशंसा कर वैद्य बन्धुओं से अनुरोध करता हूँ कि इसके ग्राहक बनकर आयुर्वेदिक जागरण पैदा करें।

प्रिंसिपल क० जगदीशचन्द्र भारद्वाज B. A. M. S.

अध्यक्ष श्री राम आयुर्वेदिक फार्मेसी

पनाकितान भवानी (हिसार)

आप का प्रेषित "आयुर्वेद विज्ञान" नामक मासिक पत्र अप्रैल १९५७ का प्राप्त हुआ। जो कि देखने में छोटा परन्तु उसकी सामग्री तथा प्रस्तुत लेख अति सुन्दर तथा सुपाठ्य थे जिसके द्वारा जनता भी लाभ उठा सकती है। विशेषतः चिकित्सक बन्धुओं को तो इस पत्र का ग्राहक बनना आवश्यक है। क्योंकि यह आयुर्वेद संस्कृति का अग्रदूत है। अतः इस पत्र की मैं हृदय से उन्नति चाहता हूँ। भगवान इसे सफलता प्रदान करता रहे।

कविराज माधव प्रसाद जी शास्त्री

सम्पादक जय आयुर्वेद जोधपुर (राजस्थान)

"आपके द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" के ५ अंक प्राप्त हुए, धन्यवाद !

पत्र में प्रकाशित लेखों की निर्भीकता वास्तव में आयुर्वेद जगत् को रसातल जाने से अवश्य ऊपर उठाने में समर्थ सिद्ध होगी। आजके पत्र किसी की गुण-गाथा या विज्ञापन करनेके अतिरिक्त और कुछनहीं करते प्रसन्नता की बात है कि आप इन बातों से बहुत ऊपर उठे हुए हैं आपके सुलझे हुए विचार आयुर्वेद महारथियों के उलझे हुए दिमागों की इसी प्रकार सफाई करते हुए उन्हें स्वस्थ बनाते रहेंगे। आपका पत्र आयुर्वेद-विरोधियां से डट कर मुकाबला लेने वाला है। हम इसकी उत्तरोत्तर उन्नति चाहते हैं।"

वैद्यरत्न पं० श्री प्रभुदत्त शास्त्री भिषगाचार्य

प्रिंसिपल-श्री परशुराम पुरीया राजस्थान आयुर्वेद कालेज सीकर (राजस्थान)

"आपके द्वारा प्रेषित 'आयुर्वेद विज्ञान' मासिक पत्र का अक्टूबर मासीय अंक देखने को मिला।

आयुर्वेद को आधुनिक विज्ञान के सम्पुटसे समृद्ध बना कर इसके वैभवका विस्तार और व्यावहारिक उपयोगिता की पराकाष्ठा से वैज्ञानिक जगत् को नवीन आलोक प्रदान करने वाला यह पत्र अविलम्ब ही वैद्य महानुभावों द्वारा कराम्बुज स्पर्श से उद्दीप्तिमान् हो उठेगा। इसमें संदेह जरा भी नहीं, चूंकि यह आपकी ओजस्विनी लेखनी से आपूरित सम्पादन कला—वैचित्र्य का उत्कृष्ट प्रतीक है। आधुनिक युग में ऐसे ही नूतन दृष्टिकोण से उन्मेष पाने वाले पत्रों की पाश्चात्य जगत पर धाक जमाने के लिये आवश्यकता है। धन्यवाद !"

आयुर्वेद वाचस्पति डा० रघुवंशलाल शर्मा (M. Sc. A.)

श्री रविनन्दन आयुर्वेद भवन, मुरादाबाद

आपके द्वारा सम्पादित "आयुर्वेद विज्ञान" का चतुर्थ अंक प्राप्त हुआ अतः धन्यवाद। प्रस्तुत पत्र को ध्यान पूर्वक समावलोकन किया। मैं आपकी इस उत्तम कृति तथा आयुर्वेदोद्धार की प्रशंसा करता हूँ। मैं वैद्य समाज से सानुरोध प्रार्थना करूंगा कि प्रत्येक वैद्य बन्धु "आयुर्वेद विज्ञान" के ग्राहक बन कर अंधकार में पड़े हुये आयुर्वेद को प्रकाश में लायें। मैं इस पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूँ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूचीपत्र से पूर्व के सूचीपत्र रद्द किए गये। १-४-५९

जगत् प्रसिद्ध व अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन द्वारा सम्मानित तथा
म्युनिस्पिल कमेटियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों, धर्मार्थ औषधालयों के लिये मान्य
व

पञ्जाब सरकार द्वारा स्वीकृत
पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी
का
षाण्मासिक-सूचीपत्र

[केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों, अस्पतालों, अथवा प्रयोग शालाओं के लिये]

आवश्यक सूचना

१. कुछ समय से सरकार ने केन्द्रीय बिकरी कर (अर्थात् एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाने वाले माल पर लगने वाला बिकरी कर) की दर बढ़ा कर ७ प्रतिशत अर्थात् ७ नये पैसे प्रति रुपया कर दी है। कृपया ग्राहक महानुभाव नोट करें।

जो वैद्य तथा व्यापारी केन्द्रीय बिकरी कर कानून के आधीन रजिस्टर्ड हैं, उन्हें अपने आर्डर के साथ 'सी' फार्म हस्ताक्षर करके अवश्य भेजना चाहिये। इस प्रकार उनके आर्डर पर केवल एक प्रतिशत केन्द्रीय बिकरी कर लगेगा। आर्डर के साथ 'सी' फार्म न आने पर अनिवार्य रूप से केन्द्रीय बिकरी कर ७ प्रतिशत के हिसाब से लिया जायगा। कृपया ध्यान रखें।

२. एजेण्टों को अधिक सुविधा देने के उद्देश्य से गत वर्ष से फार्मेसी की प्रस्तुत औषधियों पर कमीशन दर १२॥ प्रतिशत से बढ़ा कर १५ प्रतिशत कर दी गई है। आशा है एजेण्ट महानुभाव इस सुविधा से पूर्ण लाभ उठाते हुये अधिकाधिक बिकरी करने में प्रयत्न शील होंगे। एजेन्सी नियम दूसरे पृष्ठ पर देखें।

मैनेजर

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य
अध्यक्ष—पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी,
६०—६१, अकाली मार्केट, अमृतसर
दूसरा पता-
पंजाब आयुर्वैदिकफार्मेसी, खारी बावली, देहली।

१०३वीं आवृत्ति, } संस्थापित १९१९ [१ अप्रैल १९५९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एजेन्सी के नियम

(१) आयुर्वैदिक रस, भस्म, आसव, अरिष्ट, घृत, तैल, पाक, अवलेह, चूर्ण, गुटिका आदि औषधियां ही एजेन्सी में दी जायेंगी। (वनस्पतियां, खनिज तथा प्राणिज द्रव्य, क्षार और शुद्ध वस्तुयें इसमें शामिल नहीं)

(२) कोई भी विक्रेता या वैद्य जो एक बार १००) रु० की उक्त बनी औषधियों का आर्डर देगा वह एजेण्ट स्वीकृत होगा।

(३) कम्पनी की आविष्कृत औषधियां जो व्यक्ति १००) रु० की एक बार खरीदेगा वह भी एजेण्ट स्वीकृत होगा।

(४) जो व्यक्ति प्रस्तुत और आविष्कृत दोनोंका मिश्रित आर्डर १००) रु० का देगा वह भी एजेण्ट स्वीकृत होगा।

(५) मंगाई हुई औषध ६ मास तक एजेण्ट से न बिक सके तो ऐसी औषध--यदि ठीक पैकिंग में बन्द हो—एजेण्ट अपने खर्च पर उसे वापस कर उसके स्थान पर अन्य औषध मंगा सकता है।

(६) सूची पत्र में अङ्कित जिस वजन के मूल्यका पैकट नियत होगा उतनेही वजन के पैकट उस मूल्य पर भेजे जाएंगे। छोटे वजनके पैकट–जिनकामूल्य अधिक है यथा ढाई ढाई तोला, पांच पांच तोला के पैकट, २० तो० के पैकट के भाव पर नहीं भेजे जाएंगे। १ तो० का मूल्य ५ तो० का ⅕ होगा। १ तोला से कम का पैकट मंगाने पर १ तोला के हिसाब से मूल्य लगाकर प्रति पैकट उसमे एक आना अधिक लिया जावेगा।

(७) औषधियां वी० पी० पार्सल से या बैंक द्वारा भेजी जायंगी। उधार या जामन पर नहीं भेजी जाएंगी।

(८) १०००) रु० नकद जमानत जमा कराने पर माल उधार पर भेजा जा सकता है।

एजेंसी कमीशन दर और सुविधा

(१०) धारा नं० २ के अनुसार बनने वाले एजेण्टों को कम्पनी की प्रस्तुत आयुर्वैदिक औषध पर १५ प्रतिशत।

(११) धारा नं० ३ के अनुसार बनने वाले एजेण्टों को कम्पनी की आविष्कृत औषध पर २५ प्रतिशत।

(१२) धारा नं० ४ के अनुसार बनने वाले एजेण्टों को कम्पनी की मिश्रित औषध पर १५ प्रतिशत।

(१३) जो व्यक्ति सौ रुपये का बना माल जब २ मंगावेगा पैकिङ्ग खर्च और गुडस ट्रेन का किराया फ्री होगा अर्थात F. O. R. जहां ग्राहक मगावेगा। यदि ग्राहक पार्सल ट्रेन से माल मंगावेगा तो आधा किराया उसे देना होगा।

नोट—नं० १३ का यह नियम मद्रास तथा आन्ध्र राज्यों के ग्राहकों, ऐजण्टों पर लागू न होगा।

(१४) ५०रु० अथवा अधिक के माल पर पैकिङ्ग खर्च माफ होगा। इससे कम माल मंगाने वालेको यह सुविधा नहीं दी जाएगी।

(१४) एजेण्ट बन जाने पर बने माल के थोड़े से थोड़े आर्डर पर भी उक्त हिसाब से बराबर कमीशन मिलता रहेगा।

(१६) विज्ञापन के लिए हमारी फार्मेसी इस समय सिवाय सूचीपत्र के और साधन नहीं जुटाती। प्रचार का प्रबन्ध स्वयम् एजेण्ट अपने खच से कर सकता है।

विशेष बातें नोट करें

१. प्रत्येक आर्डर के साथ पेशगी आना आवश्यक है। अथवा एकबार १०) रुपये स्थायी ग्राहक के रूप में जमा करा छोड़ें। उन्हें ग्राहक नम्बर मिल जायगा. ऐसे ग्राहक को फिर पेशगी भेजने की जरूरत न होगी

२. यहां से पैकिंग अच्छी तरह देखकर किया जाता है। पोस्ट या रेल कर्मचारियों की असावधानी से माल की जो हानि हो जाएगी उसकी जिम्मेवारी फार्मेसी की नहीं होगी। हां प्रामाणिक व्यक्ति के सामने बन्द माल का पैकिंग खोलने पर कोई माल कम होगा तो उसकी पूर्ति की जा सकती है।

३. जिन ग्राहकों के पास केन्द्रीय विक्री कर का लाईसेंस हो वह कृपया आर्डर के साथ "सी" फार्म अवश्य भेज दिया करें।

मैनेजर

ग्रन्थ संकेत

र० प्र० सु०	रस प्रकाशसुधाकर	फा० वि०	फार्मेसी विधि	रसे० सं०	रसेन्द्रसार संग्रह	र० यो० सा०	रसयोग-सागर
यू० वि०	यूनानी विधि	बृ० यो०	बृहदयोग-तरंगिणी	भै० र०	भैषज्य रत्नाकली	रसा० सं०	रसायन संग्रह
आ० प्र०	आयुर्वेद प्रकाश	र० र० स०	रसरत्न-समुच्चय	वै० सा० सं०	वैद्यकसार संग्रह	च०	चरक
भा० प्र०	भावप्रकाश	शा० ध०	शार्ङ्गधर	र० चं०	रसचण्डांशु	वै० जी०	वैद्यजीवन
र० रा० सु०	रसराज सुन्दर	यो० र०	योगरत्नाकर	च० द०	चक्रदत्त	र० हृ०	रसहृदय
वै० मृ०	वैद्यामृत	यो० त०	योगतरंगिणी	यो० चि०	योगचिन्तामणि	भा० र०	भारतीय रसायनशास्त्र
र० का०	रसकामधेनु	सि० भ० म०	सिद्धभैषज्यमणिमाला	नि० र०	निघण्टु-रत्नाकर		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्जाब आयुर्वेदिक फार्मेसी अमृतसर

का

सूचीपत्र

साधारण मूल्य की भस्में

नाम	२० तो.,	१० तो.	५ तो.
अकीक (यू० वि०)	१४—००	७—५०	४—००
अभ्रक वज्र (भा.प्र) २१पु.	२०—००	१०—५०	६—००
अभ्रक श्वेत (र.रा.सु.)	५—००	३—००	१—६०
कान्तलोह भस्म (र.रा.सु.)	१२—००	६—७५	३—८०
कांस्य भस्म (आ.प्र.)	१२—००	६—७५	३—८०
कपर्दिका भस्म (आ.प्र.)	५—००	३—००	१—६०
कसीस भस्म (रसे. सं)	३—००	१—७५	१—००
कुक्कुटाण्डत्वक् भस्म (वै.मृ.)	१४—००	७—५०	४—००
ककड़ा भस्म (यू.वि) रक्तष्ठीवने	१६—००	९—००	५—००
अहर-मोहरा भस्म (यू.वि.)	५—००	३—००	१—६०
ताम्र सोमनाथी भस्म (र.रा.सु.)	२०—००	१०—५०	६—००
ताम्रकूपीपक्व भस्म (र.रा.सु.)	२०—००	१०—५०	६—००
तुत्थ भस्म (र०रा०सु०)	१०—००	५—५०	३—००
त्रिवंग भस्म(आ०प्र०)२१ पुटी	२८—००	१५—००	८—००
नागभस्म पीत (वृ० यो०)	८—००	४—५०	२—६०
नागभस्म श्याम (र०का०)	१०—००	५—५०	३—००
नीलांजन भस्म(सुरमा)(भा०र०)	८—००	४—५०	२—६०
प्रवालभस्म अग्निपुटी (आ० प्र०)	२०—००	१०—५०	६—००
प्रवालभस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०)	२०—००	१०—५०	६—००
पीतलभस्म (आ. प्र.)	७—००	३—७५	२—००
वंगभस्म हरितालेन (आ. प्र.)	२०—००	१०—५०	६—००
वंग भस्म श्वेत (र. रा. सु.)	१५—००	९—००	५—००
बेरपत्थर भस्म (यू० वि०)	१५—००	९—००	५—००
मण्डूरभस्म (र० रा० सु०)	७—००	३—७५	२—००
मृगशृङ्ग भस्म (शा. ध.)	७—००	३—७५	२—००
यशद भस्म (यो० र०)	१०—००	५—५०	३—००
रौप्यमाक्षिकभस्म (र० का०)	८—००	४—५०	२—६०
लोहभस्म हिंगुलयोगेन(आ०प्र०)	२०—००	१०—५०	६—००
लोहभस्म स्वयमग्नि(र. रा. सु.)	१४—००	७—५०	४—००
लोहभस्म वनस्पति (फा. वि.)	१०—००	५—५०	३—००
शंख नाभि भस्म (र. का.)	४—००	२—५०	१—६०
संगजराहत भस्म (आ. प्र.)	४—००	२—५०	१—६०

भस्में	२०तो.	१०तो.	५तो.
स्वर्णमाक्षिकभस्म (र. रा. सु)	१०—००	५—५०	३—००
सीपभस्म(मोती) (र. रा. सु.)	१०—००	५—५०	३—००
सीपभस्म (र. रा. सु.)	४—००	२—५०	१—६०
सुरमा श्वेत भस्म (फा. वि.)	४—००	२—५०	१—६०
हरताल गोदन्ती भस्म (आ. प्र.)	३—००	१—७५	१—००

मूल्यवान् भस्में

	२॥तो.	१तो०
अभ्रक वज्र भ. (आ.प्र.) ६०,,	५—५०	२—५०
कहरवा भस्म (यू० वि०)	७—००	३—००
गोमेद भस्म (र.का.) मस्तिष्करोगे	२४—००	१०—००
तीक्ष्णलोह भस्म (फा० वि०) शक्तिवर्द्धक	७—००	३—००
तुरमली भस्म (फा० वि०) ,,		४८—००
दानायेफिरंगभस्म (यू०वि०)		८—००
नागभस्म (आ०प्र०)५० पुटी	५—५०	२—५०
नीलमभस्म (र०का०) उन्मादे		१५—००
पन्नाभस्म (यू०वि०) मस्तिष्करोगे		१५—००
पुखराज भस्म (र०का०) हृद्रोगे		२०—००
फिरोजाभस्म (यू०वि०) हृद्रोग		१५—००
फौलादभस्म अपूर्व (फा०वि०) शक्तिवर्धने		१२—००
मयूर पुच्छभस्म (र० रा० सु०) छर्दिरोगे	५—५०	२—५०
माणिक्यभस्म (यू० वि०) हृद्रोगे		९—००
मुक्ता भस्म (र०का०)शक्तिवर्द्धने	९०—०० तोला	८—०० मासा
मुक्ता भस्म चन्द्रपुटी (यू०वि०) ,,	,, ,, ,,	,, ,,
रजतभस्म (चांदीभस्म)हरितालेन	१४—००	६—००
रजतभस्म (चांदी भ०) पारदयोगेन	१४—००	६—००
राजावर्तभस्म (यू०वि०) उन्मादरोगे		६—००
लहसुनिया भस्म (फा. वि.)		१०—००
वैक्रांतभस्म (रसा. सं.) मस्तिष्करोगे	४—५०	२—००
सर्पास्थि भस्म (फा. वि,) कण्ठमालाव्रणे	७—००	३—००
संगयशव भस्म (यू. वि.)	४—५०	२—००
संखियाभस्म (फा. वि.) शक्तिवर्द्धने	१२—००	५—००
स्वर्णभस्म (शा. ध.) रसायने	१६—०० प्रति मासा	
हरताल पत्राख्य भस्म		५—००
हिंगुलभस्म (फा. वि.) क्लीवत्वरोगे	१२—००	५—००

हीरा(वज्र) भस्म (आ. प्र.)सर्वरोगे ३०—०० प्रति रत्ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस, रसायन, गुटिका, गुग्गुल आदि

रस	२०तो.	१०तो.	५तो.
अग्निकुमार वृ. (रसे. सं.) अजीर्णे	१८—००	९-५०	५—००
अग्निसन (रसा. सं.) ग्रहणयाम्	१४—००	७—५०	४—००
अग्निमुख (नि. र.) अग्निमांद्ये	१०—००	५—५०	३—००
अग्निरस (र. र. स.) कासे, उरःक्षते	१०—००	५—५०	३—००
अग्नितुण्डीरस (भै. र.) उदर रोगे	१४—००	७—५०	४—००
अजीर्णकण्टक (भै. र.) अजीर्णे	१८—००	९—५०	५—००
अजीर्णारि (र. रा. सु) अजीर्णे	१४—००	७—५०	४—००
अतिविषादिगुटिका (र. चं) बालरोगे	७—००	३—७५	२—००
अपचिविनाशी (फा. वि.) अपचिरोगे	१४—००	७—५०	४—००
अश्वकंचुकी (वै. सा. सं.) सर्वरोगे	२०—००	१०—५०	६—००
अर्शघ्नी वटी (फा वि.) रक्तार्शे	१०—००	५—५०	३—००
अश्विनीकुमार (अनु. तं.) सर्वरोगे	२०—००	१०—५०	६—००
अहिफेन मुक्तिदाता फा. वि.)	२८—००	१५—००	८—००
आनन्दभैरव (रसेन्द्र) ज्वरातिसारे	१४—००	७—५०	४—००
आमवातारिरस (भै. र.) आमवाते	१८—००	९—५०	५—००
आमवातेश्वर (भै. र.) "	१८—००	९—५०	५—००
आरोग्यवर्द्धनी (र. र. स) कुष्ठ धिकारे	१८—००	९—५०	५—००
इच्छाभेदी (रसे. सं.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
उपदंशकुठार (र. चं.) उपदंशरोगे	१८—००	९—५०	५—००
एलादिवटी (च. द.) कासाधिकारे	४—५०	२—७५	१—६०
एकांगवीर (र. रा. सु) वातरोगे	१८—००	९—५०	५—००
कनकसुन्दर (रसे. सं.) अतिसारे	१४—००	७—५०	४—००
कफकेतु (रसे सं) कफाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
कफचिन्तामणि (रसे. सं) कफाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
कफकुठार (र. प्र. सु) श्लेष्मरोगे	१८—००	९—५०	५—००
कर्पूरादिरस (र. रा. सु) प्रमेहाधि.	१४—००	७—५०	४—००
कल्यादरस वृ. (र. रा. सु) उदररोगे	२८—००	१५—००	८—००
कांचनारगुग्गुल (शा. ध) कण्ठमाला	७—००	३—७५	२—००
कांकायनी गुटिका (यो. र.) अर्शरोगे	७—००	३—७५	२—००
कामदुघा (रसा. सं.) अम्लपित्ते	२०—००	१०—५०	६—००
कासहर (फा. वि.) कासरोगे	७—००	३—७५	२—००
कालारिरस (यो. र.) वातव्याधौ	१८—००	९—५०	५—००
किशोर गुग्गुल (भै. र) वातरक्ते	७—००	३—७५	२—००
कृमिघ्नलिजलप्लव (रसे. सं.) कृमिरोगे	१८—००	९—५०	५—००

रस	२० तो.	१० तो.	५ तो.
खदिरादिवटी (भै. र.) मुखरोगे	१०—००	५—५०	३—००
गगनादिलोह (रसे. सं) सोमरोगे	१८—००	९—५०	५—००
गर्भपालरस (र. चं) गर्भिणीरोगे	१४—००	७—५०	४—००
गर्भविनोदरस (रसे. सं) गर्भिणीरोगे	१४—००	७—५०	४—००
गर्भचिन्तामणि (भै. र.) सूतिकारोगे	२४—००	१४—००	७—४०
गन्धकवटी (र. रा. सु.) जठररोगे	१०—००	५—५०	३—००
गन्धकरसायन (रसे. सं) रक्तविकारे	२०—००	१०—५०	६—००
गन्धर्व रस (र. र. स) कम्पवाते	१८—००	९—५०	५—००
गुल्मकालानल (भै. र.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मनाशनरस (र. र. स.) गुल्मे	१४—००	७—५०	४—००
गुल्मारिरस (र. का.) गुल्माधिकारे	२०—००	१०—५०	६—००
ग्रहणीकपाट (र. रा. सु) ग्रहणयाम	२०—००	१०—५०	६—००
गोक्षुरादिगुग्गुल (यो. र.) प्रमेह	७—००	३—७५	२—००
चर्तुमुख रस (फा. वि.) सन्निपाते	२५—००	१४—००	७—४०
चन्दनादिलोह (भै. र.) जीर्णज्वरे	२०—००	१०—५०	६—००
चन्द्रप्रभावटी (शा. ध) प्रमेहाधिकारे	१२—००	६—५०	३—६०
चन्द्रकला (भै. र.) प्रमेहाधिकारे	१८—००	९—५०	५—००
चन्द्रामृत लोह (भै. र.) जीर्णकासे	१५—००	८—००	४—४०
चित्रकादि वटी (चक्र) अजीर्णे	८—००	४—५०	२—६०
ज्वरघ्नी वटी (र. र. स.) ज्वरे	१३—००	७—००	३—६०
ज्वरमुरारि (भै. र.) सन्निपाते	१५—००	८—००	४—४०
ज्वरार्यभ्रम (भै. र.) जीर्णज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ज्वरांकुशचोकयुक्त (शा. ध.) विषमज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
ताम्र पर्पटी (रसे. सं.) ग्रहणयाम्	२०—००	१०—५०	६—००
त्वकरोगान्तकवटी (फा. वि.) चर्मरोगे	१०—००	५—५०	३—००
त्रयोदशांगगुग्गुल (भै. र.) वातव्याधौ	१०—००	५—५०	३—००
त्रिभुवनकीर्ति (यो. र.) ज्वरे	१५—००	८—००	४—४०
त्रिपुर भैरव (र. रा. सु.) नवज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
दुर्जरजलजेता (र. च.) अजीर्णाधिकारे	१४—००	७—५०	४—००
दुग्धवटी नं. २ (भै. र.) ग्रहणयाम्	१४—००	७—५०	४—००
धात्रीलोह (से. सं.) कामलायाम्	१८—००	९—५०	५—००
नवायसलोह (र. रा. सु.) पाण्डुरोगे	१८—००	९—५०	५—००
नारायणज्वरांकुश (यो. र.) ज्वरे	१४—००	७—५०	४—००
नाराचरस (रसे. स.) उदररोगे	१४—००	७—५०	४—००
नित्यानन्द (भै. र.) श्लीपदे	१८—००	९—५०	५—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस	२०तो.	१०तो.	५तो.
नित्योदित रस (रसे. सं.) अर्शरोगे	१४-००	७-५०	४-००
नूतनवल्लभरस(र.रा.सु.)ग्रहण्याम्	१८-००	९-५०	५-००
पंचामृत पर्पटी(रसे.सं.)ग्रहण्याम्	२५-००	१४-००	७-४०
पंचवक्त्र रस (रसे.सं.) सन्निपाते	१४-००	७-५०	४-००
प्रतापलंकेश्वर(वृ.यो.)सूतिकारोगे	१९-००	१०-००	५-४०
प्रदरान्तकलोह(फा.वि.)प्रदरानुभूत	२५-००	१४-००	७-४०
प्रदरारिवटी (फा. वि.) स्वेतप्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्रदररिपु (रसे.सं.) प्रदरे	१५-००	८-००	४-४०
प्राणदागुटिका (भै. र.) अर्शरोगे	७-००	३-७५	२-००
प्रमदानन्दरस (रसे.सं.) रसायने	२०-००	१०-५०	६-००
पुनर्नवागुग्गुल (भै.र.)शोथाधिकारे	७-००	३-७५	२-००
पुनर्नवादिमण्डूर (भै.र.)पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
बालरस(र.रा.सु.) बालरोगे	१४-००	७-५०	४-००
बालशोषान्तकवटी(फा.वि.)बालशोषे	१४-००	७-५०	४-००
बोल पर्पटी (रसा सं.) रक्तपित्ते	२०-००	१०-५०	६-००
बोलवद्धरस(वृ.यो.त.)अर्शाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
मण्डूरवटी(भै.र.)पाण्डुरोगे	१०-००	५-५०	३-००
मरिचादि वटी(शा.ध.) कासरोगे	७-००	३-७५	२-००
मृत्युञ्जय रस(भै.र.) सन्निपाते	१२-००	६-५०	३-६०
मृत्युञ्जयलोह(रसे.सं.)उदराधिकारे	१८-००	९-५०	५-००
मृतप्राणदायी रस(नि.र.) ज्वरे	२०-००	१०-५०	६-००
ज्वरांकुश वृ. (भै.र.) ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
योगराज गुग्गुल महान् १। लक्ष चोट—समस्त धातुयुक्त (शा. ध.) वातव्याधौ	२०-००	१०-५०	६-००
योगराज गुग्गुल साधारण(शा.ध.)	४-५०	२-७५	१-६०
यकृदरिलोह वृ.(भै.र.)यकृताधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
रजःप्रवर्तिनी (भै.र.) ऋतुकष्टे	१४-००	७-५०	४-००
रसचन्द्रिकावटी(रसे.सं.)शिरोरोगे	१८-००	९-५०	५-००
रक्तपित्तकुलकण्डन(र.रा.सु.)रक्तपित्ते	२५-००	१४-००	७-४०
रसमाणिक्य(तालवाला)रक्तविकारे	१८-००	९-५०	५-००
रामबाणरस(भै.र.) अजीर्णाधिकारे	१०-००	५-५०	३-००
राजचण्डेश्वर(र.चं.) सर्वरोगे	१८-००	९-५०	५-००
लवंगादि वटी(वै.जी.) कासरोगे	१०-००	५-५०	३-००
लक्ष्मीनारायणरस(र.चं.)वातरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
लक्ष्मीविलासवृ.(र.रा.सु.)शिरोरोगे	२०-००	१०-५०	६-००

रस	२०तो.	१०तो.	५तो.
लशुनादि वटी(शा.ध.)वातरोगे	७-००	३-७५	२-००
लीलावतीवटी(र.रा.सु.)उदररोगे	१५-००	८-००	४-४०
लोकनाथरस वृहत्(शा. ध.) क्षये	१४-००	७-५०	४-००
लोकनाथ रस लघु(शा. ध.)क्षये	१०-००	५-५०	३-००
लोहरसायन (वं.से.) रसायने	२८-००	१५-००	८-००
लोह पर्पटी (रसे.सं.) सर्वरोगे	२०-००	१०-५०	६-००
वातगजांकुश(रसे.सं.) वातरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
वातविध्वंस(वृ.यो.त.) वातव्याधौ	२५-००	१४-००	७-४०
विश्वतापहरणरस(र.रा.सु.)सन्नि.	२०-००	१०-५०	६-००
विषमुष्टिवटी(फा.वि.) आमवाते	१४-००	७-५०	४-००
व्योषादि वटी(यो. चि.) कासे	७-००	३-७५	२-००
श्वासकुठार वृ.(र.रा.सु.)श्वासे	१५-००	८-००	४-४०
शम्बूकादिवटी(भै.र.)शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासारिलोह(भै.र.)श्वासे	१४-००	७-५०	४-००
श्वासान्तकरस (फा.वि.) श्वासे	१९-००	१०-००	५-४०
शिरःशूल वज्रारि(भै.र.)शिरःशूले	१४-००	७-५०	४-००
शीतगजकेसरी(भा.प्र.)शीतज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
शीतारिरस(भै.र.)ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलवज्रणी(रसे सं.)शूलाधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
शूलगजकेशरीताम्र(शा.ध.) शूलरोगे	२५-००	१४-००	७-४०
शूलगजकेशरीवटी(फा.वि.)पार्श्वशूले	१२-००	६-५०	३-६०
शृङ्गाराभ्ररस(रसे.सं.)कासे जीर्णज्वरे	१८-००	९-५०	५-००
शोथ कालानल(भै.र.) शोथे	१०-००	५-५०	३-००
शंखवटी वृहत्(भै.र.)अग्निमान्द्ये	८-००	४-५०	२-६०
सर्वज्वरहरलोह(र.सं.)ज्वराधिकारे	१९-००	१०-००	५-४०
सिद्धप्राणेश्वर(रसे.सं.)ज्वरासितारे	१८-००	९-५०	५-००
सिंहनाद गुग्गुल(यो.चि.)वातरक्ते	७-००	३-७५	२-००
सुखविरेचनी(फा.वि.)सुखविरेचने	१४-००	७-५०	४-००
सूतिकाविनोद(भै.र.)सूतिकारोगे	१४-००	७-५०	४-००
सौभाग्य वटी (भै.र.) कासज्वरे	१४-००	७-५०	४-००
संजीवनी वटी(शा. ध.) अजीर्णे	८-००	४-६०	२-६०
स्मृतिसागर(यो.र.)अपस्मारे	२८-००	१५-००	८-००
स्वच्छन्द भैरव(भै.र.)ज्वराधिकारे	१४-००	७-५०	४-००
हुताशनरस(यो.र.)श्लेष्मरोगे	१४-००	७-५०	४-००
हृदयार्णव रस(यो.र.) हृद्रोगे	१४-००	७-५०	४-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल्यवान रस, रसायन, गुटिका आदि

	२॥ तो.	१ तो.
अमीर रस(सि.भै.म.)उपदंशरोगे	१२-००	५-००
कस्तूरी भैरव वृ.(भै.र.) ज्वराधिकारे		२४-००
कस्तूरीभूषण (भै. र.) सर्वरोगे		१५-००
कामदुधामोतीयुक्त(रसा.सं.)अम्लपित्ते	१८-००	८-००
कालकूट रस (वै.चि.) सन्निपाते	७-००	३-००
कुमारकल्याण (भै. र.) बालरोगे		४८-००
केशरादिवटी(फा.वि.)जीर्णप्रतिश्याये	९-००	४-००
कृष्णमाणिक्यरस (र.रा.सुं) कुष्ठाधिकारे	९-००	४-००
चिन्तामणि चतुर्मुख(भै.र.)सर्वरोगे	२४-००	१०-००
जयमंगलरस (भै.र.) ज्वराधिकारे		२४-००
जीर्णज्वरारिरस (फा.वि.)जीर्णज्वरे	४-५०	२-००
जौहररसकपूर(फा.वि.)उपदंशरोगे	१२-००	५-००
जौहर त्रिविष(फा.वि.)उपदंशरोगे	१२-००	५-००
जौहर दारचिकना (फा.वि.)उपदंशरोगे	१२-००	५-००
जौहरसंखिया (फा.वि.) शक्तिवर्द्धने	९-००	४-००
जौहर संखिया पीलिका, वातरोगे	९-००	४-००
जौहर हरतालपत्राख्य, कुष्ठरोगे	१२-००	५-००
जौहर नौसादर (स्वर्णवर्ग का) उदरविकारे	१-१०	०-५०
ताप्यादिलोह(रसे.सं.)रसायने	९-००	४-००
बालसिन्दूर(रसा. सं.) रक्तविकारे	१२-००	५-००
त्रिवंगवटी (फा.वि.) स्वप्नदोषे	९-००	४-००
नागरस कस्तूरीयुक्त(र.च.)श्वासे	१८-००	८-००
पारे की गोली (वाजीकर) एक गोली का मूल्य		४-००
प्रवालपंचामृत(यो.र.)गुल्माधिकारे		१५-००
पुष्पधन्वारस(भै.र.)रसायने	७-००	३-००
पुटपक्वविषमज्वरान्तकलोह(भै.र.)ज्वराधिकारे	२४-००	१०-००
पूर्णचन्द्ररस वृ. (रसे.सं.)रसायनाधिकारे	२७-५०	१२-००
बालार्क रस(रसा.सं.)बालरोगे	१२-००	५-००
बल्लसिन्दूर (रसा.सा.) सर्वरोगे	१२-००	५-००
मन्मथाभ्ररस (रसे.सं.) वाजीकरणे	९-००	४-००
मृगाङ्क स्वर्णसंयुक्त (शा.ध.) क्षये		६०-००
रसमाणिक्य(र.रा.सु.) कुष्ठाधिकारे	९-००	४-००

	२॥ तो.	१ तो.
रससिन्दूर द्विगुण (र.का.)	७-००	३-००
रससिन्दूर चतुर्गुणगन्धकजीर्ण	९-५०	४-००
रससिन्दूर षड्गुणगन्धकजीर्ण	१४-००	६-००
रसपर्पटीहिंगुलोत्थ(र.रा.सु.)ग्रहणयाम	४-५०	२-००
रसपर्पटी विशुद्ध रसेन ,, ,,	९-००	४-००
राजमृगाङ्क (शा.ध.) क्षयरोगे		४८-००
लक्ष्मीनारायण वृ.(रस.योग.द्वितीय)रत्नोपरत्नयुक्त		८४-००
वसन्तकुसुमाकर (शा.ध.) सर्वरोगे		३६-००
विजयपर्पटी (भै.र.) ग्रहणयधिकारे		२०-००
विषमज्वरान्तकलोह(भै.र.) ज्वराधि.	४-५०	२-००
वृ०वातचिन्तामणि (भै. र.) वातव्याधौ		३६-००
वंगेश्वर वृहत (भै.र.) प्रमेहाधिकारे		२४-००
शिलासिन्दूर (र.रा.सुं.) कुष्ठरोगे	१२-००	५-००
शीतवातेश्वर(फा.वि.)हृदयावसादे	४-५०	२-००
शीतांकुश रस (र.प्र.)चातुर्थिकज्वरे	४-५०	२-००
समीरपन्नग रस(र.चं.) वातरोगे	१४-००	६-००
सर्वांगसुन्दर (र.सं.) शूलरोगे	९-००	४-००
सिद्धमकरध्वज (पिष्ट) स्वर्णभस्मयुक्त		७२-००
सूतशेखर(नि.र.) अम्लपित्ताधिकारे		१२-००
स्वर्णचन्द्रोदय षडगुणगन्धकजीर्ण		३०-००
स्वर्ण पर्पटी (र.रा.सु.) क्षयाधिकारे		२४-००
स्वर्णवसन्त मालती (भै.र.) क्षयरोगे		३०-००
स्वर्णवंग नं० १ (र.रा.सु.) प्रमेहे	७-००	३-००

अंजन तथा नेत्रवर्ती

नाम वस्तु	५ तो.	१ तो.
चंद्रोदयावर्ती (शा.ध.) नेत्ररोगे	२-५०	०-६५
चन्द्रप्रभावर्ती(यो.र.) नेत्ररोगे	२-५०	०-६५
नागार्जुनीवर्ती (भै.र.) ,, धुन्धजालायां	५-००	१-२५
मुक्तादि महाञ्जन (यो.र.) नेत्ररोगे	१०-००	२-२५
नयनामृत सुरमा (शा.ध.) ,, ज्योतिवर्द्धने	११-००	२-५०
सुरमाज्योतिवर्द्धक(फा.वि.) ज्योतिवर्धने	१०-००	२-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव अरिष्ट

नाम वस्तु	१०पौं.	५पौं.	२पौं.
अमृतारिष्ट (आयु. वे. सं) ज्वरे	२२-५०	११-५०	५-००
अर्जुनारिष्ट (भै.र.) हृद रोगे	२२-५०	११-५०	५-००
अशोकारिष्ट ,, ,, प्रदरे	२२-५०	११-५०	५-००
अश्वगन्धारिष्ट (वं. से.) प्रमेहे	२२-५०	११-५०	५-००
अभयारिष्ट (भै. र.) अर्शरोगे	२२-५०	११-५०	५-००
कुटजारिष्ट ,, अतिसारे	२२-५०	११-५०	५-००
खदिरारिष्ट (भै. र.) कुष्ठरोगे	२२-५०	११-५०	५-००
जीरकाद्यरिष्ट (भै. र.) प्रसूतरोगे	२२-५०	११-५०	५-००
दशमूलारिष्ट (शा.ध) प्रसूतरोगे	२४-००	१३-५०	६-००
दशमूलारिष्ट (कस्तूरीयुक्त),,	३६-००	१९-००	८-००
द्राक्षारिष्ट (शा. ध.) क्षये	२२-५०	११-५०	५-००
रोहितकारिष्ट (भै.र.) प्लीहारोगे	२२-५०	११-५०	५-००
लक्ष्मणारिष्ट (फा.वि)	३२-५०	१७-००	७-००
सारस्वतारिष्ट (भै.र.) मानसिकरोगे	२४-००	१३-५०	६-००
सारिवाद्यरिष्ट (भै.र.) कुष्ठे, रक्तविकारे	२२-५०	११-५०	५-००
उशीरासव (शा. ध.) रक्तपित्ते	२२-५०	११-५०	५-००
कनकासव (भै. र.) श्वासरोगे	२२-५०	११-५०	५-००
कुमार्यासव (शा. ध.) उदररोगे	२४-००	१३-५०	६-००
चन्दनासव (भै. र.) प्रमेहे	२२-५०	११-५०	५-००
द्राक्षासव (शा. ध.) अर्शोदरे	२२-५०	११-५०	५-००
पुनर्णवासव (भै. र.) शोथे	२२-५०	११-५०	५-००
पिप्पल्यासव (शा.ध.) अर्शे, गुल्मे	२४-००	१३-५०	६-००
लोहासव (शा. ध.) पाण्डुरोगे	२२-५०	११-५०	५-००
लोध्रासव (गदनिग्रह) पाण्डु, अर्शे	२२-५०	११-५०	५-००

शंखद्राव (र. का.) गुल्मे १०तो. के ४-५०, ५तो. के २-५०

आसवनिर्माणार्थ किण्व (सुरावीज) ५ तोला का २-००

प्रसिद्ध अवलेह पाक

नाम वस्तु	२॥सेर	१सेर	१पाव
कुटजावलेह (शा. ध.) अतिसारे	१६-५०	७-००	२-००
कूष्माण्डावलेह (शा.ध.) रक्तपित्ते	१६-५०	७-००	२-००
कंटकार्यवलेह (वं. से.) कासे	१६-५०	७-००	२-००
च्यवनप्राशावलेह (च.) रसायने	१६-५०	७-००	२-००
भार्गी गुड़ (भै.र.) हिक्का, श्वासे	१६-५०	७-००	२-००
मदनानन्दमोदक (र. रा. सु.) वाजीकरणे	१९-००	६-००	
मूसलीपाक (यो.चि.) क्लीवत्वे	३३-००	१४-००	४-००
वांसावलेह (भै. र.) क्षय, कासे	१६-५०	७-००	२-००
श्लेष्मान्तक अवलेह (फा. वि.) शुष्कश्वासे कासे	१४-००	४-००	
सौभाग्यशुंठी (यो.चि.) प्रसूतारोगे	१६-५०	७-००	२-००
सुपारीपाक (यो. चि.) प्रदररोगे	२१-५०	९-००	२-५०
हरिद्रा खण्ड (भै.र.) शीतपित्ते	१६-५०	७-००	२-००
हरीतकी खण्ड ,, शूले	१६-५०	७-००	२-००

सिद्ध घृत

नाम वस्तु	१ सेर	४ औंस
फलघृत (चक्रदत्त) योनिरोगे	२४-००	३-५०
ब्राह्मीघृत (चक्रदत्त) रसायने	२०-००	३-००
महात्रिफलादि घृत (चक्रदत्त) नेत्र रोगे	२४-००	३-५०

सिद्ध तैल

नाम वस्तु	२पौंड	४औंस
अर्क तेल (शा. ध.) कुष्ठे	१०-००	१-५०
आमला तेल (फा. वि.) शिरोरोगे	१२-००	१-७५
अपामार्गक्षार तेल (भै. र.) कर्णवधिरतायां	१०-००	१-५०
इरिमेदादि तेल (शा. ध.) मुखरोगे	१०-००	१-५०
कासीसादि तेल (शा. ध.) अर्शरोगे	१५-००	२-००
केशराज तेल (फा. वि.) केशवर्द्धने	१२-००	१-७५
चन्दनादि तेल (भै. र.) जीर्णज्वरे	१५-००	२-००
दशमूल तेल (भै. र.) वातरोगे	१०-००	१-५०
ब्राह्मी तेल (फा. वि.) बुद्धिवर्धनार्थे	१५-००	२-००
भृंगराज तेल (भै. र.) क्षुद्ररोगे	१२-००	१-७५
महानारायण तेल (शा. ध.) वातरोगे	३०-००	४-००
मरिचादि तेल (चक्रदत्त) कुष्ठे	१२-००	१-७५
महालाक्षादि तेल (शा. ध.) जीर्णज्वरे	१५-००	२-००
विषगर्भ तेल (यो. र.) वातरोगे	१२-००	१-७५
शुष्कमूलाद्य तेल (धन्वन्तरि) कर्णस्रावे	१२-००	१-७५
षटबिन्दु तेल (चक्रदत्त) शिरोरोगे	१५-००	२-००
सारिवा तेल (शा. ध.) कर्णरोगे	१२-००	१-७५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रीय प्रचलित चूर्ण

नाम वस्तु	१ सेर	२०तो.	५तो.
अजमोदादि चूर्ण (शा.ध.) वातरोगे	७-००	२-००	०-६५
अग्निमुख (वं. से.) अजीर्णाधिकारे	१०-००	३-००	०-९०
अपचिविनाशी (फा.वि.) कण्ठमालारोगे	१०-००	३-००	०-९०
अविपत्तिकर (वं.से.) अम्लपित्ते	७-००	२-००	०-६५
अष्टांगलवण (च.) अग्निमांद्ये	१०-००	३-००	०-९०
अश्वगन्धादि (शा.ध.) वाजीकरणे	७-००	२-००	०-६५
अर्कलवण (वं.से.) उदररोगे	११-००	३-५०	१-०५
उलट कम्बल चूर्ण, ऋतुकष्टे	१०-००	३-००	०-९०
कामदेव चूर्ण (यो.र.) क्लीवत्वे	१०-००	३-००	०-९०
गंगाधर वृहत् (शा.ध.) अतिसारे	७-००	२-००	०-६५
गोक्षुरादि चूर्ण (वा.भ.) वाजिकरणे	८-००	२-५०	०-८०
चन्दनादि चूर्ण (यो.त.) प्रदरे, रक्तपित्ते	८-००	२-५०	०-८०
ज्वरनाग मयूर चूर्ण (भै.र.) सर्वज्वरे	२८-००	८-००	२-१५
तालीसादि चूर्ण (शा.ध.) ज्वरे, कासे	१०-००	३-००	०-९०
दाड़िमाष्टक चूर्ण (शा.ध.) अरुचिरोगे	७-००	२-००	०-६५
न्यग्रोधादि चूर्ण (यो. र.)	७-००	२-००	० ६५
नारसिंह चूर्ण (च.द.) क्लीवत्वे	८-००	२-५०	०-८०
नारिकेल लवण (वं.से.) शूले	१०-००	३-००	०-९०
पंचसम चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	७-००	२-००	०-६५
नारायण चूर्ण (शा.ध.) उदरविकारे	७-००	२-००	०-६५
प्रदरान्तक चूर्ण (फा.वि.) प्रदररोगे	७-००	२-००	०-६५
पुष्यानुग चूर्ण केसरयुक्त (भै.र.) प्रदरे	२६-००	७-००	१-९०
महाखण्डव (शा.ध.) अजीर्ण रोगे	१०-००	३-००	०-९०
लवणभास्कर (शा.ध.) अग्निमांद्ये	८-००	२-५०	०-७५
लाईचूर्ण 'नायिका' (भै.र.) ग्रहणयाधिकरे	८-००	२-५०	०-८०
लवंगादि वृ. (शा.ध.) ज्वरे, कासे	१२-००	३-५०	१-०५
शिवाक्षार पाचन (फा.वि.) पाचने	१०-००	३-००	०-९०
सारस्वतचूर्ण भै.र.) मस्तिष्क रोगे	८-००	२-५०	०-८०
सर्पगन्धा चूर्ण (ब्लडप्रेशर पर)	१२-००	३-५०	१-०५
स्वादिष्ट विरेचन (फा.वि.) मृदुरेचने	७-००	२-००	०-६५
सितोपलादि चूर्ण (शा.ध.) कासे, क्षये	२०-००	६-००	१-६५
सुदर्शनचूर्ण वृ (शा.ध.) ज्वराधिकारे	१०-००	३-००	०-९०
सुदर्शन चूर्ण (चक्रिका)	१२-००	४-००	१-१५
हिंग्वाष्टक चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	१०-००	३-००	०-९०
हिंग्वादि चूर्ण (शा.ध.) उदररोगे	१०-००	३-००	०-९०
त्रिफला चूर्ण	७-००	२-००	०-६५

लेप और मरहम

नाम वस्तु	४०तो.	५तो.
अर्शघ्न मरहम, अर्शे	७-००	१-००
कालीमरहम, व्रणशोधनार्थे	३-००	०-५०
दशांग लेप, विसर्प रोगे	५-००	०-७५
नीली मरहम, व्रण रोपक	२-००	०-३०
पीली मरहम, व्रण रोपक	२-००	०-३०
पारदादिमरहम, जन्तुघ्न या कीटाणुनाशन	१४-००	२-००
श्वेत कुष्ठहरलेप, श्वित्र कुष्ठे	३-००	०-५०
सिध्महरलेप, सिध्मरोगे, खर्जु रोगे	७-००	१-००

क्वाथ

नाम वस्तु	१ सेर	२०तो.
दशमूल क्वाथ (शा.ध.) प्रसूतारोगे	१-५०	०-५०
देवदार्व्यादि क्वाथ (शा.ध.) ज्वरे	२-००	०-७५
लघुमंजिष्ठादि क्वाथ ,, , रक्तविकारे	२-००	०-७५
महामंजिष्ठादि ,, ,, कुष्ठे	३-००	१-००
महारास्नादि क्वाथ ,, वातरोगे	३-००	१-००
सुदर्शन क्वाथ (शा.ध.) सर्वज्वरे	३-००	१-००
हवन सामग्री	१-५०	०-४४

फार्मेसी द्वारा प्रस्तुत शुद्ध वस्तुयें

शुद्ध वस्तु	१सेर	५तो.	शुद्ध वस्तु	१सेर	५तो.
कज्जली शुद्ध पारदसे	८.००		रस कपूर	१०.००	
कान्तलोह	५.००	०.४०	रसौंत	७.००	०.५०
कुचला	३.२५	०.२५	राजावर्त 'मशगूल'	२०.००	
कुचलाचूर्ण	६.००	० ५०	लोहचूर्ण रेतीका	४.००	०.३०
गन्धकआमलासार	१०.००	०.७५	वंग	२०.००	१.५०
गुग्गुल	६.००	०.५०	वज्राभ्रक (धान्याभ्रक)	५.००	०.५०
जमालगोटा	२०.००	१.५०			
तुत्थ	४.००	०.३०	शंख टुकड़े	१.५०	०.२०
दालचिकना	१०.००		शंखनाभी	१.५०	०.२०
धतूर बीज श्याम	८.००	०.६०	शिंगरफ	१०.००	
पारदअष्टसंस्कारपूर्ण	१६.००		शृङ्गिक (काला)	८.००	०.६०
पारद हिंगुलोत्थ	१०.००		शृङ्गिकचूर्ण	१०.००	
भल्लातक	३.००	०.२५	सीप मोती	१०.००	०.७५
मण्डूर	१.५०	०.१५	संखिया	२.००	
मैनसिल	१८.००	१.२५	हरताल वर्की	५.००	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वानस्पतिक क्षार

नाम वस्तु	२०तो.	५तो.
अपामार्ग क्षार	३–००	१–००
अर्क ,,	३–००	१–००
इन्द्रायण ,,	४–००	१–२५
इमली ,,	४–००	१–२५
कपटकारी ,,	३–००	१–००
कदली ,,	३–००	१–००
गोक्षुरू ,,	३–००	१–००
चना ,,	३–००	१–००
तिल ,,	३–००	१–००

	२०तो.	५ तो.
पलाश क्षार	४–००	१–२५
पुनर्नवा ,,	४–००	१–२५
मूली ,,	३–००	१–००
यव ,,	३–००	१–००
वज्र ,,	५–००	१–५०
वांसा ,,	३–००	१–००
स्नुही ,,	४–००	१–२५
सत्यानाशी,,	४–००	१–२५
सज्जी ,,	१–००	०–२५

वानस्पतिक तेल व प्राणिज स्नेह

नाम वस्तु	१पौंण्ड	२औं.	१तो.
अजवायन तेल	९.००	१.२५	०.३०
इलायची(जापानी)	६.००	१.००	०.२५
लायचीविलायती	२५.००	३.५०	१.००
कास्ट्रायल(आगरा)	२.००	०.३६	
कुष्ठ तेल	४.००	१.००	
खसखास रोगन	८.००	१.२५	०.३०
गुल रोगन	४.००	०.६५	०.१६
चावल मोंगरा	५.००	०.७५	०.२०
जमालगोटा तेल	६०.००	८.००	२.००
जायफल तेल	६०.००	८.००	२.००
जैतून तेल	९.००	१.५०	०.४०
तुबरक तेल	१२.००	१.७५	०.४०
तारपीन तेल	१.००	०.२०	
दालचीनीतेल	३०.००	४.५०	१.२५

नाम वस्तु	१पौंण्ड	२औं.	१तो.
धतूरा तेल		२.२५	
नीम तेल	३.००	०.५०	०.२०
बादामरोगन	१५.००	२.००	०.४५
बावचीतेल	६.००	१.२५	०.३०
बिरोजा तेल	८.००	१.२५	०.३०
भिलावा तेल	२.००	०.५०	
मालकंगनीतेल	६.५०	०.८८	०.२५
यूक्लिप्टसआइल	१०.००	१.५०	०.४०
रीछ की चर्बी	५.००	०.७५	
लौंगतेल	२५.००	३.५०	१.००
वराहकी चर्बी	५.००	०.७५	
सूस मछलीकातेल		४.५०	१.००
सौंफतेल	२०.००	३.५०	०.७५
सांडेकातेल		३.००	
चन्दनतेल		९.००	२.००

विषोपविष

निम्नलिखित विष मंगाते समय लाइसेन्सदार अपने लाइसेन्स का नम्बर व पूरा २ पता, डिवीजन के साथ दें तथा डाक्टर व वैद्य महोदय पत्र में यह शब्द अवश्य लिखें कि "हम व्यवहार के लिये मंगाते हैं", तभी माल भेजा जायगा।

विष	१सेर	५तोला
कुचला	१–२५	०–१२
संखिया सफेद	७–००	०–७५
संखिया खनिज	१२–००	१–००
संखिया पीला	१२–००	१–००
संखिया लाल	१२–००	१–००
रसकपूर	१२०–००	८–००
रसकपूर पपड़ी का	१२५–००	८–२५
दारचिकना	११५–००	७–५०

	१सेर	५तो
धत्तूर बीज श्याम	६–००	०–५०
धतूर बीज सफेद	३–००	०–२५
मीठातेलिया सफेद	६–००	०–५०
मीठातेलिया काला	८–००	०–६५
हरतालवर्की बढ़िया	८०–००	६–००
हरतालवर्की नं० १,	५४–००	३–७५
हरतालवर्की नं० २,	४०–००	३–००
हरताल वर्की चूरा	२०–००	१–५०

प्राणिज व खनिज द्रव्य

नाम वस्तु	१सेर	१तो०
अम्बर अशहब नं० १	३६–००	
अम्बर अशहब नं० २	१८–००	
अभ्रकश्याम बढ़िया	२–५०	
अभ्रक वज्र नं० २,	१–५०	
अकीक दाना नं० १		१–५०
अकीक दाना नं० २		१–००
अकीक दाना नं० ३		०–५०
अकीक खरड़	४–००	
कस्तूरी(खुतन)दानेदार	१२०–००	
कस्तूरी नैपाली	११४–००	
कस्तूरी काश्मीरी	९०–००	
कछुआ खोपड़ी	२–००	
कसीस हरा	०–५०	
कासीस लाल	४–००	
कान्तलोह ग्वालियर	३–००	
केंचुवे धुले	५–००	
कौड़ी पीली मोटी	३–५०	
कौड़ी पीली छोटी	२–२५	
गोरोचन असली नं० १	३०–००	
गोमेद	८–००	
जहरमोहरा बढ़िया	१०–००	
जहरमोहरा	३–००	
जस्ता पटड़ी का	२–५०	
जस्ता फूला	२–७५	
जंगार असली	२५–००	
जुन्द बेदस्तर		२–५०
जोंक	४०–००	०–७५
तुरमली बढ़िया	२०–००	
ताम्र तार बिजली	६–००	
नखू (नख)	७०–००	१–००
नाग (सीसा)	२–००	
नीला थोथा	२–००	
नीलम नं० १		१२–००
नीलम खरड		१–००
नौसादर देशी		२–५०

नाम वस्तु	१ सेर	१तो.
नौसादर डगडा	२–००	
पन्ना नं० १		८–००
पन्ना नं० २		५–००
पन्ना खरड		१–५०
प्रवालशाखानं.	१,४२–००	
प्रवाल मूल	२–००	
पारद	१२०–००	
पीतल चूर्ण	४–००	
पत्थर का दिल	२–००	
पुखराज		८–००
फिटकरी लाल	०–५०	
फिटकरी श्वेत	०–६५	
मधुरश्वेत	४–००	
राजावर्त		२–००
फिरोजा		१०–००
वंग ईंट की	१२–५०	
वीर बहूटी	१००–००	२–००
बारासिंगा	१–५०	
बेरपत्थर	१७–५०	
मुर्दासंग	३–००	
मण्डूर पुराना	०–७५	
मैनसिल	४–५०	
मैनसिल चूरा	३–००	
माणिक्य 'चूनी' नं० १		८–००
माणिक्य ,, नं० २		४–००
माणिक्य ,, नं० ३		१–५०
माणिक्य खरड		०–७५
मोतीवसरई नं० १		८४–००
मोतीवसरई नं० २		७०–००
मोती आस्ट्रेलिया नं० १		५४–००
मोती आस्ट्रेलियानं० २		४२–००
मोती चावला बड़ादाना		४०–००
मोती चावला छोटा दाना		४८–००
मोती बेडोल		४२–००
मोती बिंधा हुआ		४२–००
मोती छिलका		८–००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१सेर १तो.
मोम देशी असली	६–००
रूपामक्खी चतुष्कोण	४–००
रूपामक्खी(गोलदाना)	३–००
लोहचूर्ण रेतीका	२–००
वैक्रान्त नं० १,	८–००
वैक्रान्त नं० २,	३–००
शिलाजीत पत्थर पा.	२–५०
शिलाजीत पत्थर अ.	३–००
शिलाजीत सूर्यतापी	३०–०० ०–७५
शिलाजीतअग्नितापी	२४–०० ०–६०
शिलारस	५–५०
शोरा कलमी	१–५०
शंख कीट	२–००
शंख टुकड़े	१–००
शंखनाभी	१–००
संग सरमाही	२४–००
संग्रासक	८–००

नाम वस्तु	१सेर १तो.
सफेदा काशगरी	१–२५
समुद्रफेन	३–५०
सरतान	८–००
सिंगरफ रूमी	१२८–००
सिंदूर	२–५०
सीप मोती बाजारी	१८–००
सीप मोती असली	६–००
सुरमा काला	४–२५
सुहागा	२–००
सुहागा चौकिया	३–५०
सोना गेरू	०–५०
सोनामक्खी अ.नं.२,	१२–००
हरताल गोदन्ती बढ़िया	१–५०
हरतालगोदन्तीनं०२;	१–००
हरताल पीली	८–००
हाथी दांत बुरादा	२–००

नाम वस्तु	१ सेर १तो.
उशवा मगरबी असली	८–५०
उलट कम्बल	७–००
उशक	३–००
उस्तेखदूस	८–००
ऊंटकटारा	०–६५
ऊद सलीब	६–५०
एरण्डमूल	०–६५
एरण्ड बीज	१–००
एलवालुक फल	३–००
एलुवा(मुसब्बर)असली	८–००
ऋषभक(बहमनश्वेत)	३–००
कचूर	१–००
कतृण (रोसाघास)	०–७५
कदम्बछाल	०–७५
कपित्थ फल	०–७५
कपूर कचरी	०–९०
कमरकस	४–००
कमल केसर	८–००
कनेर मूल	१–५०
कत्था	१०–००
कंचन फल	८–००
कंवीला छना हुआ	४–००
कश्मीरी पत्ता	१–५०
कपूर देशी डली का	३०–००
कपूरभीमसेनी असली	२–२५
,, ,, बाजारी	१–००
कमल गट्टे	१–२५
कमल फूल	२–००
करंज पत्र	१–२५
करंज बीज	१–००
कलिहारी(लांगुली)मूल	५–००
कहरवाशमईनं. १;२, १)तो.	०–६५
कहरवा चूरा	०–३०
कायफल	०–६५
कालीजीरी	२–५०
काहू	१–५०
काकनासा(काकनज)	२–५०
काकनासा(वाघनखी)	०–७५
काकोली श्याममूसली	१–२५
काकोली (बंगाल)	१०–००
काकोली (देहरादून)	४–००
कालमेघ	१–००
काकजंघा पंचांग	०–७५
काकड़सिंगी	४०–००
कुकरौंधा	०–६५

नाम वस्तु	१ सेर १तो.
कुलंजन	१–५०
कुन्दरगोंद	२–२५
कुटकी	३–५०
कुठ मीठी	१–००
कुष्ठ उत्तम नं०१;	६–००
कुष्ठ ,, ,, २;	४–५०
कुटज (कूड़ा) छाल	०–६५
केसरमोंगरा काश्मीरी	१६.००
केसर तुरला	१४.००
कौंचबीज(कालेछोटे)	१–५०
कंटकारी लघु पचांग	०–६५
कंटकारी फल	१–५०
कंटकारी वृहती पंचांग	०–६५
कंकुष्ठ(उशारारेवन्द)	५५–००
खतमी	२–५०
खब्बाजी	१–००
खस (बम्बई)	१–५०
खदिर छाल	०–६५
खसखास	२–००
खुरफा	३–००
खूबकलां	५–००
गजपीपल	०–६५
गम्भारी छाल	०–७५
गन्ध प्रसारणी	०–७५
गारीकून	३४–००
गावजबां	२–००
गिलोय	०–५०
गुञ्जा श्वेत	५–००
गुञ्जा लाल	१–००
गुग्गुल महिषाक्ष साफ	२–५०
गुड़ ५०साल पुराना	८–००
गुड़मार बूटी	१–००
गुल गावजबां	२५–००
गुलवनफशानं०१;	११–००
गुलवनफशा नं०२,	९–००
गुल सुर्ख पेशौरी	६–००
गुल सुर्खदेशी(पङ्खड़ी)	८–००
गोखरू पञ्चाङ्ग	०–५०
गोखरू फल लघु	१–००
गोखरू फल वृहत	१–५०

आयुर्वैदिक तथा यूनानी वनस्पतियां

नाम वस्तु	१सेर
अकरकरा असली	१४०–००
अगर बुरादा	४–००
अतीस श्वेत कटु नं०१	३२–००
अतीस मीठी	८–००
अतिबला पंचांग (कड़ी)	१–००
अनन्तमूल (बंगाल)	१–५०
अनन्तमूल (देशी)	१–००
अपराजिता (विष्णुक्रांता)	२–००
अपामार्ग बीज	१–२५
अमलतास गूदा	०–५०
अम्लवेद गुच्छी (चूका)	२–००
अर्जुन त्वक्	०–५०
अंजीर मूल	२–००
अंजीर फलसूखे	३–००
अरणी छाल	०–७५
अशोक छाल	१–५०
असगन्ध नागौरी	२–००
अफतीमून	१५–००
अखेरश म	१७–००
अजवायन खुरासानी	३–२५
अफसनतीन	१–००

नाम वस्तु	१ सेर
अजवायन देशी साफ	१–५०
अजवायन दाना	१–००
अनारदाना	२–७५
अजमोद	०–७५
आंवला	०–४५
अंकोल बीज	१–००
अंकोल छाल	०–७५
अर्कदुग्ध	८–००
अष्टवर्ग	६–००
इक्षुमूल	०–७५
इन्द्रयव मीठे	१–२५
इन्द्रयव कड़वे	१–००
इन्द्रायण मूल	१–००
इन्द्रायण फल	१–००
इमली छाल	०–७५
इलायची छोटी नं०१	३०–००
,, ,, नं०२	२५–००
इलायची बड़ी(डोडा)	४–५०
इलायची दाना	८–००
इरिमेद छाल	०–७५
ईसबगोल भूसी असली	४–५०
ईसबगोल दाना	१–५०
ईश्वर मूल	२–००
उरंमन बीज	३–००
उन्नाब	४–००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१सेर
गोंदबबूल	५-००
गोंदकतीरा	३-५०
गोंद छुहारा	८-००
गोरखमुण्डी	०-६२
गोरखपान	१-००
गौरीसर (सिरवाला)	१-५०
गैरेन छाल	१-२५
चन्दन काष्ठ श्वेत	६-५०
चन्दन बूरा श्वेत	७-००
चन्दन बूरा लाल	१-२५
चव्य (कृष्ण मिर्च मूल)	१-५०
चक्रमर्दबीज	०-६५
चन्द्रसूर (हालौं)	१-००
चावल मोंगरा बीज	४-००
चाकसू	१-७५
चित्रक मूल छाल	३-५०
चिड़िया कन्द	३-००
चिरायता	२-००
चिरौंजी	५-००
चोकमूल पञ्जाब	२-००
चोपचीनी असली	५-००
चोरक (ग्रन्थिपर्ण)	१-५०
जलपीपल	०-७५
जलनिम्ब	१-५०
जलापा	२४-००
जरिश्क मीठा	१०-००
जवासा	१-००
जायफल	८०-००
जावित्री	८०-००
जामुन गुठली	०-५०
जीवक (हरा)	४-००
जीवपुत्रक (जियापोता)	१-५०
जीरा श्वेत	४-५०
जीराकाला असली नं. १	१२-००
जीवन्ती (बंगाल)	३-५०
जूफा	४-००
जैपाल बीज(जमालगोटा)	४-५०
जंगली प्याज सूखा	१-००
तगर (सुगन्ध वाला मूल)	२-२५
तालमखाना	२-००
तालीस पत्र असली	२-५०
तिंतडीक(समाक दानां)	२-५०
तुरञ्जबीन असली	५-५०
तुख्म रेहां	१-००

नाम वस्तु	१सेर
तुख्म कसूस असली	२-२५
तुख्म खिरनी	५-००
तुख्म बालंगा	२-५०
तुलसीपत्रअसली	५-००
तेजपत्र	०-७५
तेजबल बीज (कवाबा)	१-५०
तेजबल त्वक्	१-५०
तोदरी लाल	४-५०
तोदरी श्वेत	७-००
दन्तीमूल	१-२५
दरूनज अकरबी	१०-००
दरियाई नारियल	१७-००
दशमूल चूर्ण (क्वाथ)	१-५०
दशमूल बिना कुटा	१-००
दालचीनी	१२-५०
दारूहल्दी (लकड़ी)	०-४०
दारुहल्दी बुरादा	१-५०
देवदारु	०-७५
देवदारु बुरादा	१-७५
देवदालीफल(बन्दालडोडा)	२-००
द्रोणपुष्पी	०-७५
धवलवरुआ (चांदमरुआ)	१०-००
धतूरा पंचांग	०-७५
धातकी (धावेके) फूल	०-७५
धनियां	१-५०
धमासा	१-००
धूपलकड़ी	३-५०
नकछिकनी	१-००
नगन्ध वावरी	१-००
नागरमोथा	०-६०
नासपाल	०-७५
नागकेसर असली	३५-००
नागकेसर बाजारी दाना	२-५०
नागवला	०-७५
निगुण्डी पंचांग	०-६५
निर्मली	१-००
निम्बत्वक	०-५०
निंबोली नीम की	०-५०
निम्बफूल	१-५०
निर्विसी (जदवार)	१०-००
निसोत[त्रिवृता]	७-००
नीलकण्ठी	२-००
नीलोफर फूल	२-००
पतङ्ग काष्ठ	१-७५
पतङ्ग बुरादा	३-००

नाम वस्तु	१सेर
पटोल पत्र	२-००
पद्मकाष्ठ (पद्माख)	०-५०
परस्योशां (हंसराज	१-२५
प्रसारणी	०-७५
पाटला त्वक्	०-५०
पाठा मूल(पाढ़ मूल)	१-००
पाषाण भेद	०-६५
पिप्पली लघु	१२-००
पिप्पली बृहत्	६-००
पिप्पली मूल नं० १	८-००
पिप्पली मूल नं. २;	५-००
पीपल जटा	३-००
प्रियंगू फल (बङ्गाल)	८-००
प्रियंगू (पञ्जाब) असली	१-५०
पित्तपापड़ा (शाहतरा)	०-५०
पियावांसा	०-७५
पिपरमेन्ट६५)पौंड	२-०० तो०
पृश्निपर्णी लम्बा पत्र	३-००
पृश्निपर्णी	१-००
पुनर्णवा मूल	१-००
पुष्कर मूल	४-५०
पुदीना पंचांग	०-७५
पुदीना जंगली	०-७५
फरफीजन विलायती१पौंड	२-००
फालसा छाल	०-७५
फिन्दक	३-००
फिरंजमुश्क	२-००
वच मधुर	३-५०
वच मधुर बारीक	३-००
बला पञ्चांग (खेरटी)	०-७५
बहमन सफेद	३-००
बहमन लाल	३-५०
बहुफली	०-७५
वच तीक्ष्ण	०-७५
बकायन छाल	०-५०
बकायन फल	०-७५
बबूल छाल	०-५०
बृद्धि (सालव कसेरू)	४-००
ब्रह्म दण्डी	०-७५
ब्रह्मीबूटी धुली हुई	२-००
ब्रह्मीबूटी	१-५०
बराहीकन्द	१-००
बावची	०-६५
बालछड़ (बिछीलोटन)	३-५०
बादरंजबूया	०-६५

नाम वस्तु	१सेर
बादावरद	३-००
बायविड़ंग	१-५०
बासा मूल त्वक्	३-००
बांसा पत्र (पञ्चाङ्ग)	०-५०
बांसा मूल	०-७५
बट जटा	०-७५
विजया बीज मोटे	१-२५
बिहीदाना	१०-००
बिदारी कन्द	१-००
बिधारा बीज	१६-००
बिधारा मूल	१-०
बिरोजा सूखा	१-५०
बिरोजा गीला	१-५०
बिस्फायज	२-००
विजयसार छाल	१-००
विजयसार लकड़ी	०-७०
विजयसार गोंद(दमुलखैवन)	१००-०
बिल्वछाल	०-७५
बीजाबोल (मुरमकी)	१८-००
बीजबन्द (काले)	१-५०
बीजबन्द लाल	०-९०
बंशलोचन नं. १;	९०-००
बंसलोचन नं. २	७०-००
बंशलोचन नं. ३	६०-००
भिलावां	०-५०
भूआंवला	१-५०
भोजपत्र	१-२५
मकोय दाना	३-००
मगज कद्दू	३-५०
मगज खरबूजा	५-००
मगज खीरा	६-००
मगज तरबूज	१-४०
मगज बादाम	१०-००
मस्तगी रूमी असली	२५-००
मयूर शिखा	१-५०
ममीरी मूल	८-००
महाबला (सहदेवी)	०-७५
महामेदा	८-००
मूषाकर्णी असली	८-००
मरोड़फली	०-६५
मैनफल	१-००
महुआ फूल	१-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वस्तु	१ सेर
माजूफल	७—००
माषपर्णी	१—००
माईं	१—५०
मिर्च श्वेत	८—००
मिर्च काली नं० १	३—५०
,, ,, ,, २	३—००
मुनक्का काला (असली)	२—५०
मुश्कतरामसी	३—००
मुद्गपर्णी	०—७५
मुलहठी	२—००
मूसली श्वेत	१०—००
मूसली श्याम	१—००
मेदा (शकाकल)	६—००
मेढ़ासिंगी	१—५०
मैदा लकड़ी	०—५०
मोचरस असली	३—५०
मौलश्री छाल	१—५०
मजीठ	४—००
रतन जोत	१—७५
रसौंत	३—००
रास्ना मूल बंगाल	१—७५
राल	४—००
रुद्रवन्ती	२—००
रेणुका बीज	२—५०
रेशा खत्मी	३—००
रेवंद चीनी	२—००
रोहितक छाल	१—००
लता कस्तूरी	८—००
लवंग (लौंग)	२४—००
लाख पीपल	२—५०
लाजवन्ती बीज (छोटे)	४—००
लोवान कौड़िया	१०—००
शरपुंखा	०—६५
श्योनाक छाल	०—७५
शालपर्णी	०—७५
शिवलिंगी बीज	६—००
शङ्खपुष्पी	१—००
समुद्रशोष	१—२५

नाम वस्तु	१सेर
सत्यानासी बीज	१—००
सप्तपर्णछाल	१—५०
सपिस्तान(लसूड़ियां)	०—७५
सकमूनिया ऊंटनी	१पौ.५०—००
सतावर सेर	१—५०
सनाय	२—००
समुद्र फल	०—६५
स्थौणेयक (जम्बू)	४—००
सातला (शिकाकाई)	१—५०
सालव प्याजी	७—५०
सालव लहसुनिया	४—५०
सालव मिश्री	४५—००
सालव पंजा नं०१;	४५—००
सालव पंजा ,, २;	२६—००
सिरसबीज सफेद	२—००
सिरस बीज काले	३—५०
सिम्बलमूसली	१—००
सीतलचीनी(सर्दचीनी)	१३—००
सुपारी काठा	५—५०
सुपारी दक्षिणी	७—००
सुगन्धवाला पंचांग	१—००
सत्व गिलोय	१०—००
सत्व अजवायनप्रतिपौंड	३०—००
सत्व पुदीना ,, ,,	६५—००
सत्व लोवान ,, ,,	६—००
सत्व निम्बू सेर	९—००
सत्व मुलेठी	१५—००
सुरञ्जां शीरीं (मीठी)	५—५०
सुरञ्जांतलख (कड़वी)	६—००
सुहांजना छाल	०—६५
सोंठ पूर्वी (बम्बई)	२—००
सोमवल्ली (ईफेड्रावलेगरस)	१—५०
सोया	०—७५
सौंफ	२—००

नाम वस्तु	१ सेर
सौभाञ्जन बीज	३—००
हरमल बीज	१—००
हाथी सुण्डी	०—७५
हाऊबेर	१—७५
हिरन तूतिया	२०—००
हिरनखुरी	०—६५
हिंगु पत्री	२—००
हींग तालाब	४०—००
हींग अंगूरी	३६—००
हींग हीरा	३२—००
हींग बाजारी	६—००
क्षीर काकोली(बंगाल)	६—००
क्षीर विदारी	१—५०
त्रायमाण	४—००

वर्क (पत्र) सोना चांदी

स्वर्ण दफ्तरी	१२०पत्र५रत्ती	७.५०
स्वर्ण ,,	,, १ मा.	१४.००
स्वर्ण ,,	,, २ ,,	२६.००
स्वर्ण ,,	,, ३ ,,	४१.००
स्वर्ण का चूरा	१ ,,	११.००
चांदी १ दफ्तरी	३ ,,	१.५०
चांदी दफ्तरी	४॥ ,,	२.५०
चांदी ,,	६ ,,	३.००
चांदी ,,	८ ,,	३.५०
चांदी ,,	१० ,,	४.००
चांदी चूरा	१ तो.	३५०

हरीतकी भेद

नाम वस्तु	१सेर
हरड़ जीवन्ती नं० १	२४—००
हरड़ जीवन्ती नं० २	१६—००
हरड़ जीवन्ती— नं० ३,४,५	१२—००,८—००,४—००
हरड़जीवन्ती साधारण	२—००
हरड़अभया(लघुबीजा)न० १,१२.०	
हरड़ अभया—नं० २, ३, ४	८—००, ६—००, ४—००
हरड़ विजया गोल	२०—००
हरड़ अमृता (काबली)—नं० १, २, ३;	१०—००,४—००,२—००

हरीतकी प्रति नग

हरीतकी नग एक ३।)तो.	४०—००
हरीतकी ,, ,. ३) ,,	३०—००
हरीतकी ,, ,,२॥) ,,	१५—००
हरितकी ,, ,, २॥) ,,	१०—००
हरीतकी ,,,, २।=) ,,	८—००
हरीतकी ,, ,, २।-) ,,	६—००
हरीतकी ,, ,, २।) ,,	४—००
हरीतकी ,, ,, २≡) ,,	३—५०
हरीतकी ,, ,, २=) ,,	३—००
हरीतकी ,, ,, २-) ,,	२—५०
हरीतकी ,, ,, २) ,,	२—००
हरीतकी १तो. ११माशा की	१—५०

आयुर्वेदीय सिद्धांतों की विज्ञान सम्मत विवेचना के लिये एवं नव्य ज्ञान विज्ञान की नित्यप्रति हो रही प्रगति से अपने आपको परिचित रखने के लिये प्रसिद्ध मासिक पत्र 'आयुर्वेद विज्ञान' का स्वाध्याय करें।
वार्षिक मूल्य केवल ३)
आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय
खारी बावली, दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी द्वारा आविष्कृत

गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया से रजिस्टर्ड

हजारों बार की परीक्षित औषधियां

अनेमीन

(पाण्डु, कामला, हलीमक की औषध)

लाभ—विषम ज्वर के पश्चात् यकृत, प्लीहा बढ़ जाने पर यह दवा लाभ करती है। शरीर में रक्त की कमी को दूर करती है। एक सप्ताह के सेवन से ही इसका प्रभाव दिखाई देता है। रक्त की कमी, शोथ, जलोदर आदि रोगों में अद्वितीय है। मात्रा १ गोली सुबह, १ गोली शाम को।

सेवन विधि—दही, तक्र व दूधसे दोनों समय सेवन करावें

१४ गोली के पैकट का मूल्य १–५०

अमीरी जुलाब

योग—**गुलाब की गुलकन्द में कुछ सरल रेचक द्रव्य मिलाये गये हैं।**

गुण—नाजुक और अमीर मिजाज के आदमी या निर्बल स्त्रियों के लिये जुलाबी गुलकन्द बड़ी स्वादिष्ट है और बच्चे से लेकर बड़ों तक जिनका मृदुकोष्ठ हो बड़ी मुफीद है। इसके खाने से न तो जी मचलाता है, न पेट में दर्द, जलन व मरोड़ ही होता है; इतना बेनजीर जुलाब है कि रात्रि को सोते समय ३-४ माशा पानी से या दूध से खा लो सुबह को १-२ दस्त खुलकर आ जाते हैं। जुलाब लेना हो तो सुबह को गर्म दूध या गर्म जल से ३-४ माशे के लगभग दवा खा लें २-३ दस्त खुलकर आ जाएंगे।

२॥ तोले दवा के पैकट का मूल्य १–५०

अनिद्रांतक वटी

(उन्माद और रक्तचाप की उत्तम दवा)

गुण—जिन रोगियों को खून का दबाव बढ़ जाने के कारण नींद नहीं आती या किसी मानसिक रोग जैसे उन्माद, मालीखोलिया, चिन्ता या अन्य ऐसे विकार जिनका प्रभाव दिमाग पर बना रहता है और नींद नहीं आती-ऐसी हालत में इस दवा को दो चार दिन खिलाने से ही रोगी को आराम की नींद आने लगती है। उक्त कारण के उन्माद रोगियों में से ८० प्रतिशत को यह पूरा लाभ पहुँचाती है। २॥ तोला के पैकट का मूल्य १–५०, ५ तोला का २–५० है।

मात्रा—१ से २ टिकिया पानी या दूध से दें।

अलसोरीन

(मुँह के छालों की दवा)

लाभ—किसी भी रोग के कारण मुँह में छाले पड़े रहते हों और जख्म बने रहते हों, यह दवा उक्त छालों को ठीक करने के लिये उत्तम है। मुँह में छिड़कते ही ठण्डक मिलती है, और दर्द शीघ्र ही जाता रहता है।

½ औंस का पैकट मूल्य १–५०

ऑपथलमीन

लाभ—आंख आना या आंख दुखना, आंख की पुरानी लाली, आंख के गोलकों का दर्द, रोहे या कुकरे, धुन्ध, जाला, आंख से पानी जाना और खारश पर फौरन लाभ दिखाती है। बहुत थोड़ी दवा सलाई द्वारा आंख में लगावें। दो ड्राम की शीशी का मूल्य १–५०, ३ माशे शीशी का मूल्य ०–५०

आस्थमीन

(बलगमी दमा की उत्तम दवा)

लाभ—यह दवा बलगमी दमा पर अच्छा काम देती है, जिसका दौरा प्रभातको अधिक होता हो और बलगम गाढ़ी, पीली अधिक मात्रामें निकलती हो, कुछ दिन सेवन करने पर दमा जड़ से जाता रहता है।

सेवन—१ गोली पानी या दूध से दें।

१४ गोली के पैकट का मूल्य १–५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एट्रोफील

(सूखिया मसान रोग की उत्तम दवा)

गुण—यह दवा बच्चों के सूखा रोग (मसान) में अत्यन्त गुण करती है। जिसे लोग सूखिया मसान या परछाई पड़ना भी कहते हैं, उसमें यह दवा अत्यन्त लाभ करती है। कुछ दिन सेवन करने से बच्चा खूब मोटा ताजा हो जाता है। १ गोली सुबह १ शाम पानी से दें। १४ गोली के पैकट का मूल्य १—५०

एलोप्सीन

(बालचर की उत्तम दवा)

गुण—कभी-कभी एकाएक सिर के या दाढ़ी मूँछ के बाल गिरने लग जाते हैं और दुवन्नी चुवन्नी के बराबर जगह बिल्कुल साफ हो जाती है। इस रोग को बालचर या बालखोर भी कहते हैं। इसके लिये हमारी यह औषध अत्यन्त लाभदायक है। सेवन-थोड़ी सी मरहमको अँगुलीसे उस जगह पर लगाकर मालिश करें। आधे औंस के पैकट का मूल्य १—५०।

एस. टुथ पौडर

(सर्वश्रेष्ठ सुगन्धित मंजन)

लाभ—दांतों का दर्द, दांतों में पानी लगना, दांतों का कमजोर होना, हिलना, मुँहसे दुर्गन्ध आना इत्यादि दांतों व मसूढ़ों की बीमारियों में लाभ करता है।

एक औंस का पैकट मूल्य ०—५० न. पै.

एस. डिस्पेप्सोल

शाही हाजमा

(बड़ा स्वादिष्ट, पाचक चूर्ण)

लाभ—बदहजमी, खट्टे डकार, वमन, मितली, अतिसार, उदरपीड़ा आदि को दूर करता है। १ पाव के पैकट का मूल्य २—५०। ५ तोले के पैकट का मूल्य ०—७५

एस. पायोरीन

(पायोरिया की उत्तम औषध)

लाभ—यह धारणा अब छोड़ दो कि पायोरिया दांत निकलवा कर ही जा सकता है। एस. पायोरीन के प्रयोग से एक तो गला हुआ मांस ठीक होकर पुनःभरने लगता है, दूसरे हिलते हुए दांत फिर मजबूत होजाते हैं।

प्रयोग—ब्रश या दातुन पर दवा को लगाकर मसूढ़ों की जड़ों में मंजन की तरह लगाओ, और कुल्ला कर डालो। एक औंस के पैकट का मूल्य २—५०

एस. बाल घूंटी

प्रायः देखा जाता है कि जहां पेट में नुक्स हुआ कि बच्चों के पेट में दर्द, अतिसार, ज्वर आदिके उपद्रव दिखाई देने लगते हैं। ऐसे समय यह बाल घूँटी बड़ी ही लाभदायी है। इसकी १-२ माशे तक की मात्रा जलमें घोलकर पिला देने से एक दो दस्त खुलकर आ जाते हैं। यदि १ माशेसे कम दिया जाय तो मल का पाचन होजाता है जिससे आते हुए दस्त बन्द होजाते हैं और ज्वर आदि उपद्रव सब जाते रहते हैं। इस घूंटी को सप्ताह में एकबार बच्चों को देते रहें तो किसी किस्म की बीमारी होने का भय नहीं रहता।

१ तोला का पैकट मूल्य०—५०; २॥तो०का १—५०

एस. बाल शर्बत

(बच्चों की ताकत के लिए आयुर्वेदिक शर्बत)

यह शर्बत बच्चों की प्रत्येक निर्बलता में अत्यन्त लाभदायक है। बीमारी से उठे हुए बच्चों के लिए तो यह शर्बत अमृततुल्य है, अत्यन्त रक्त-वर्द्धक तथा शक्ति वर्द्धक है। पाण्डु, रक्त की कमी आदि रोगोंमें बड़ों को भी फायदा करता है। मू० २औंसकी शीशी ०—८०; ४ औंस रु० १—५०

एस. वेजीटेबोल (विष्टब्धहर और रेचक गोली)

लाभ—रात्रि को सोते समय ३ से ४ गोली तक यदि खाई जायें तो सुबह तक एक दो पाखाने साफ आ जाते हैं, ४ से ६ गोली दिनमें खाई जावें तो चार पांच जुलाब आकर उदर साफ हो जाता है।

२० गोली का पैकट ०—५० न. पै.
८० गोली का पैकट मूल्य १—५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओजीना

नये-पुराने जुकाम, पीनस की तत्काल फलप्रद औषध

लाभ—जिन व्यक्तियों का जुकाम के कारण दिमाग कमजोर हो या जुकाम बिगड़कर नजला या पीनस बन गय ाहो, कोई औषध शरीर के अनुकूल न बैठती हो ऐसी दशा में ओजीना की दो चार खुराकें ही जुकाम ठीक कर देती हैं।

१० तोला माजून का पैकट मूल्य १—५०

कटारीन

लाभ—दमा की बीमारी, पुरानी खांसी में सुबह के समय जब काफी बलगम खारिज होती हो और बलगम की अधिकता से रोगी अधिक कमजोर हो चुका हो तो कटारीन के सेवन से अत्यन्त फायदा होता है।

सेवनविधि—सारी दवाको १० तोला खांड में डालकर मिलालें और शीशी में भर कर रख लें खुराक १-१½ माशे दोनों समय पानी से खांय। १ मास की दवा के पैकट का मूल्य १—५०

कर्णदुःख हर तेल

लाभ—यह तेल कान के दर्द को फौरन बन्द करता है। इससे भिन्न इसमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि कान से पानीवत् पाक या राद सदा बहता हो, कान के भीतर जख्म हो रहे हों तो इसके कुछ दिन डालतें रहने से कान का बहना बिल्कुल बन्द हो जाता है। १ तोले की शीशी ०—५०, २॥ तोले की शीशी १—००

कफसोल (खांसी की दवा)

लाभ—राजयक्ष्मा की खांसी को छोड़ कर बाकी प्रत्येक खांसी में इसके सेवन से अवश्य लाभ होता है। श्लेष्मज श्वास व दौरे के श्वास को भी रोकती है। इसके सेवन से पुरानी से पुरानी खांसी भी जाती रहती है

मात्रा—आधी रत्ती से एक रत्ती तक शहदमें दें।

३ माशे का पैकट मू० ०—२०

१ औंस के पैकट का मूल्य २—००

कायाकल्पवटी

लाभ—जिन आदमियों को अस्थि व्रण हो रहे हों गम्भीर व्रण निकलते रहते हों, नासूर हो गया हो, जिनके जख्म जल्दी न भरते हों, शरीर पर रक्त विकार के भयङ्कर चिन्ह बने रहते हों, ऐसे व्यक्तियों को इन गोलियों के सेवन करने से पूरा लाभ होता है

५० गोली पैकट १—५०

१०० गोली पैकट २—५०

कार्बकोलीन

लाभ—कार्बकल फोड़ा, शराविका, कच्छपिका अदीठव्रण आदि जिसके नाम हैं, यह मरहम उस व्रण को राजी करने में प्रभाव दिखाता है। यह मरहम-केन्सर में भी लाभदायक हैं। जो व्रण प्रसरण शील भयङ्कर उपद्रव वाले दाहकारी हों जिनमें मांस, त्वचा गलती चली जाती हो उनमें अत्यन्त शांति देता है।

२॥ तोले के पैकटका मूल्य ४—००

कुन्तल-जीवन

(केशवर्धक लेपन)

लाभ—जिन व्यक्तियों के बाल अधिक झड़ते हों या किसी निर्बलतादि कारणों से टूटते रहते हों या आधुनिक कृत्रिम सुगंधित तेलों के बुरे प्रभाव से गिरने लग रहे हों, किसी चिन्ता, शोक के कारण निर्बल होकर झड़ रहे हों अर्थात सामूहिक रूप में समय से पूर्व ही बाल कमजोर होकर गिर रहे हों तो उस दशा में इस लेप को एक सप्ताह लगा कर स्नान करने से बालों को पुनः नवजीवन प्राप्त होता है। बालों की ग्रंथियां इस लेप से पुनः पुष्ट होकर दृढ़ बालों को जन्म देती हैं और इसके १-२ मास इस्तेमाल से बाल इतने सघन लम्बे और दृढ सचिक्कण हो जाते हैं कि स्त्रियां उन्हें देख कर प्रसन्न हो जाती हैं।

प्रयोग विधि—स्नान से पूर्व १ तोला दवा को पानी में घोलकर पतला करलें और उसे सिर में लगालें। कुछ देर मलें और उसके सूखजाने पर स्नान करलें। चाहे साबुन लगा कर स्नान करें कोई हर्ज नहीं। यही सरल इसकी प्रयोग विधि है। २० तोले के पैकट का मूल्य २—००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोराञ्जन

(पड़वाल का सुरमा)

लाभ--जिन व्यक्तियों की पलकें सुर्ख और मोटी होकर उनमें फुन्सियां निकला करती हैं तथा आंखों में बाल चुभते रहते हैं, जिन्हें पड़वाल या पद्मकोप भी कहते हैं, इस अञ्जन के लगाने से उक्त रोग समूल जाता रहता है।

३ माशा की शीशी का मूल्य ०—७५

६ माशा की शीशी का पैकट १—२५

गनरोल

(पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र की दवा)

लाभ--यह योग तीव्र और जीर्ण से जीर्ण पूयमेह में लाभ करता है कृच्छ्रता दवा खाने के दो तीन घंटे बाद बंद हो जाती है और जख्म दो तीन दिन में भर जाता है।

२४ कैपसूल का पैकट मूल्य ४—००

डाईसैंट्रोल

(पेचिस मरोड़ की दवा)

लाभ--यह औषध पेचिस में लाभ करती है। कैसा ही मरोड हो, आंव और खून जाता हो गुद-भ्रंश या कांच निकलती हो, दिन में तीन-चार मात्रा खाते ही आराम आजाता है। पुराने से पुराने पेचिश वाले भी इसके सेवन से निराश नहीं हुए।

सेवन विधि--प्रथम हल्का जुलाब देकर पश्चात ६-६माशे औषध दिन में दो या तीन बार शक्कर से दें।

२ औंस के पैकट का मूल्य ०—८०

४ औंस का पैकट मूल्य १—५०

छूमंत्र

लाभ--सिर दर्द, दाढ़ दर्द और इनके अतिरिक्त कहीं भी कोई दर्द हो जरासी दवा लगाते ही दर्द छू-मन्त्र हो जाता है, बिच्छू, बरैंया, ततैय्या (भिड़) आदि के काटने पर इसके लगाने से जहर जाता रहता है।

मूल्य प्रति शीशी ०—७५, १ दर्जन ८—५०।

दद्रुसंहार

लाभ--यह दवा सचमुच दाद पर लगाने से दाद को जड़ से मिटा देती है, और सबसे बड़ी खूबी तो यह है कि लगती जरा नहीं। बिना तकलीफ के दाद को समूल नष्टकर देती है।

½औंस मरहम की शीशी ०—५०

१ दर्जन का मूल्य ५—००

न्यूरेलजीन

(आधाशीशी की त्वक्वेधी औषध)

लाभ--आयुर्वेद में सर्वप्रथम त्वक्वेधन द्वारा सिर दर्द को लाभ पहुँचाने वाली यह औषधि है। एकबार के त्वक्वेधन करने पर दर्द इस तरह जाता है जिस तरह मन्त्र द्वारा भूत। एक शीशी ५०-६० बीमार के लिये काम में आ सकती है। मूल्य प्रति पैकट १—५०

नज़लोल

(नजले की औषध)

लाभ--नजला चाहे हलक में गिरता हो या नाक के रास्ते से बहता हो प्रत्येक प्रकृति के व्यक्ति को अवश्य ही लाभ करता है। उष्ण प्रकृति व्यक्ति इसे शर्बत के साथ सेवन करें। **२० गोली के पैकट का मूल्य ०—५०, ८०गोली का पैकट मू० १—५०**

न्यूमोनिश्रोल

(न्यूमोनिया में ८० प्रतिशत लाभकारी दवा)

लाभ--न्यूमोनिया की प्रत्येक अवस्था में इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवन करातेरहने से फेफड़े व श्वास नाली पर पड़ा हुआ न्यूमोनिया का प्रभाव दब जाता है। हृदय की निर्बलता में, व हार्टफेल की स्थिति में यह बहुत लाभ करता है। १४ गोली का मूल्य १–५०

पुंसोलीन (तिला)

(ध्वजभंग पर लगाने का तैल)

लाभ—ध्वजभंग (नामर्दी) चाहे प्रकृति विपरीतमैथुनसे हुआ हो अथवा अति मैथुनसे हुआ हो, एकबार तो यह अपना फल अवश्य दिखाता है और नष्ट हुई शक्ति को पुनः लौटा लाता है।

एक सप्ताह के सेवन योग्य दवा का मूल्य १–५०

पुंसोल

(ध्वजभंग पर खाने की दवा)

लाभ—इच्छानुसार समय पर चैतन्योदय न हो, या समय पर शिथिलता आ जाय है वह विकार चाहे किसी कारण से हो, सब में लाभ करता है।

१४ खुराक का मूल्य १–५०

प्रोराईगोन

(खारिश, खुजली की दवा)

लाभ—यह औषध प्रत्येक प्रकार की गीली सूखी छूतदार खारिश (खुजली)में अत्यन्त लाभप्रद है।

प्रयोग – दवा में १० तोला तेल सरसोंका मिलाकर मालिश करें और बाद में साबुन लगाकर स्नान करें।

१ पैकट का मूल्य १–५०

प्लोरीन

(पार्श्वशूल या दर्द पसली की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर या न्यूमोनिया के आरम्भ में जो श्वास के साथ पसलियों के नीचे दर्द उठ रहा हो और दर्दके कारण श्वास न लिया जाता हो, उस हालत में इसकी एक मात्रा देते ही दर्द जाता रहता है। यह जोड़ों के दर्द, बदन के दर्द, पेट के दर्द में भी अपना चमत्कार दिखाती है। ३ मासे का पैकट मूल्य ०–६० न. पै.। आधे औंस के पैकट का मूल्य १–५०

फीवर पिल्स

लाभ—हमने हजारों रोगियों पर उक्त दवा को आरम्भिक ज्वरावस्था में देकर इसका खूब अनुभव लिया है। हर प्रकार के साधारण ज्वर को यह दवा एक से दो दिन में ही अवश्य उतार देती है। जिनका बुखार दूर नहीं होता उनके ज्वर के रूप को भी यह दवा प्रकट करदेती है और वह चौथे पांचवें दिन ज्वर का रूप स्पष्ट हो जाता है। इसके सेवन से कभी कोई कष्ट नहीं बढ़ता २० गोली का मूल्य ०–५०, ८० गोली का मूल्य १–५०

मकर ध्वजवटी

शक्ति वर्धक प्रसिद्ध योग

योग—स्वर्ण-घटित मकरध्वज, केसरकस्तूरी आदि मूल्यवान द्रव्यों के योग से यह दवा तय्यार की गई है। निर्बलता, प्रमेह, धातु क्षीणता, शीघ्रपात,स्वप्नदोष आदि में लाभदायी पाई गई है। इस योग की मांग अधिक देखकर हमने भी निर्माण करना आरम्भ कर दिया है।

१४ गोली का पैकट मूल्य ३–००

माजून सिर दर्द

लाभ—कुछ व्यक्तियों को दौरे से सिर दर्द की बीमारी होती है। दर्द इतना जोर का होता है कि रोगी अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। कुछ बीमारोंको वमन भी आती है। सिर दर्द दो तीन दिन रह कर जाता रहता है कई व्यक्तियों को दर्द आरम्भ होने के समय पीठ की ओर से दर्द सिरकी ओर बढ़ता प्रतीतहोता है। यह दर्द ऐसा खराब है कि कई २ साल पीछा नहीं छोड़ता। हमने उक्त माजून का अनुभव कई वर्ष से किया है। इस माजून को यदि दो चार महीना सेवन किया जाय तो पुराने से पुराना सिर का दर्द जाता रहता है।

मात्रा–६ माशे से १ तोलातक। दोनों समय पानी से सेवन करना चाहिए। मूल्य एक पाव का पैकट ४–५०

मेहोरीन

[प्रमेह की दवा]

लाभ—पेशाब के साथ मिलकर आने वाली या पेशाब के पीछे आने वाली ल्हेस को रोकती है तथा बहुमूत्र में भी लाभ करती है। बलवर्द्धक, शक्तिवर्द्धक है। १४ गोली की शीशी का मूल्य १–५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेमो

[सूखी खांसी, तालुकण्टक, कौवा गिरने की दवा)

लाभ—जब बच्चोंके दांत निकलनेवाले होते हैं तो प्रायः बच्चों का तालु लटक जाता है और हरे पीले दस्त आने लग जाते हैं। बच्चा रात दिन सिर मार कर रोता रहता है। गर्दन सूख जाती है, कान की लौर पतली पड़ जाती है,मन्द-मन्द ज्वर बना रहता है ऐसी हालत में रोगीके तालु भागको उक्त दवा लगी अंगुली से दो-चार बार उठाने पर और इसी दवाको दिनमें दो तीन बार खिलाने पर अवश्य ही लाभ होता है। इससे भिन्न जिन व्यक्तियों को सोते समय सीधा लेटने पर सूखी खांसी उठती है उनको इसके सेवन से अद्भुत लाभ होता है। मूल्य १ औंस का पैकट १—५०

रसवटी

(संग्रहणी के लिये आविष्कृत)

लाभ—पुराने अतिसार ग्रहणी जिसमें भोजन अपक्व रूप में ही दस्तों के द्वारा निकल जाता है पेट में गुड़-गुड़ाहट होकर प्रायः दस्त आते हैं। यह रसवटी ऐसी तकलीफ को दो चार दिन में ही ठीक करदेती है मल तो दो तीन दिन में बन्ध कर आने लगता है और भूख बढ़ जाती है।

इसमें अफीम, धतूरा बीज आदि कोई नशीली चीज नहीं पडती, यह तो कुछ वनस्पतियों का सार है।

सेवन—तक्र से १—२ गोली (मात्रा ४ माशे तक)

मूल्य ५ तोला २—५०, १० तोला ४—००

रोमेटीन

(गठिया या आमवात की दवा)

लाभ—यह औषधि सन्धिवात, चलितवात,नुकरस, गठिया नया पुराना सब में उत्तम लाभ पहुंचाती है। मूल्य५०गोली का पैकट३—००,१००गोली का५—५०

रिनालकोलीन

(पथरी निकालने वाली दवा)

लाभ—यह दवाई दर्द गुर्दा व पथरीको उत्तम औषध है। १ मात्रा देते ही दस मिनट में वृक्कशूल बन्द हो जाता है और मूत्र साफ आता है। कुछ दिन में धीरे-धीरे सारी पथरी घुलकर बाहर आजाती है, हजारों बार की आजमाई हुई औषध है। १० तोला कच्चे दूधमें पाव भर पानी मिलाकर उसके साथ दोनों समय सेवन करें।

मात्रा ६ माशे। ४ औंस पैकट का मूल्य २—५०

रक्त शोधक अर्क

(५० के लगभग रक्तशोधक औषधियों का अर्क)

लाभ—बरसातके दिनोंमें बच्चों को सफेद पानीवाली फुन्सियां निकलती व फूटती रहती हैं जहां फुन्सी निकलती है वहां छाले जैसी सूरत बन जाती है। बड़े आदमियों को उपदंश, आतशक आदि के कारण रक्त के विकार हो जाते है। उनको यह अर्क बहुत फायदा करता है। हजारों बार आजमाया हुआ उत्तम रक्त-शोधक अर्क है

मूल्य एक पौंड अर्क १—५०

ल्यूकोरीन टेबलेट

(प्रदर की औषध)

लाभ—स्त्रियों को प्रदर हो जाता है जिसके कारण कमर में दर्द,भूख की कमी व निर्बलतादि बढ़ जाती है,इस दवा के सेवन से दूर हो जाती है। १४ टिकियों का पैकट मूल्य १—५०

ल्यूकोरीन वर्तिका

(प्रदर-विनाशनी-वर्ती)

लाभ—यह वर्तिका पानी में डुबो कर रात्रि को अन्दर रखने पर अगले दिन फल दिखाई देता है। अनेक बार केवल वर्ती के प्रयोग से ही प्रदर की शिकायत जाती रहती है।

१४ बत्ती के पैकट का मूल्य १—५०

विषमोल

(कुनैनसम लाभकारी मैलेरिया की दवा)

लाभ—सर्दी लगकर चढ़ने वाले बुखारों में तो यह दवा रामबाण है और कुनैन से निम्न बातों में विशेष है—एक तो कड़वी नहीं, दूसरे चढ़े बुखार में दीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे गर्मीखुश्की नहीं करती, चौथे शर्बत निम्बू खटाई आदि के साथ दें, पांचवें लम्बे चौड़े परहेज की जरूरत नहीं। सेवन--१ टिकिया सुबह एक टिकिया शाम को निम्बू के शर्बत या पानी से सेवन करायें। मलेरिया के दिनों में यदि ५--७ दिन एक २ गोली नित्य सेवन कर ली जाय तो फिर मलेरिया ज्वर के होने का भय नहीं रहता। मूल्य ८० गोली का पैकट १-५० २० गोली का पैकट ०-५०

व्रणोद्धूलन

(फोड़ा फुन्सी का पांउडर)

लाभ—छोटे-छोटे बच्चों को वर्षाकाल में प्राय: फोड़े फुन्सियां व पाका निकलता रहता है और कई कई महीने बच्चे विचारे इन फोड़े फुन्सियों से तकलीफ उठाते रहते हैं हमारा यह धूड़ा ऐसा है जिसे लगाते ही जलन दर्द, पीप, पानी सब बन्द हो जाते हैं और रोते हुये बच्चों को अपूर्व शान्ति मिलती है। यह धूड़ा या उद्धूलन स्फोटी (छाले) फैलने वाली फुन्सियां, खारश के जख्म व एक फुन्सी के लाग से बनने वाली अन्य फुन्सियां सब में अच्छा लाभ करता है।

मूल्य ५ तोला १-५०, १ तोला ०—४०न०पै०

शाही नस्य

लाभ-सिर दर्द, जुकाम, नजला नाक में छिछड़ा और नकसीर जाना आदि कष्टों में सेवन करके चमत्कार-पूर्ण लाभ देखिये। ६ माशे वाली शीशी का मूल्य ०-५० एक दर्जन शीशी का मूल्य ५-००

शाही सुरमा

लाभ—नेत्र ज्योति का कम हो जाना, चश्मा लगाने की आदत पड़ना, नेत्रकी खारिश, पानी जाना व मैल आना आदि कष्ट इसके सेवन से दूर होकर अद्भुत लाभ होता है

१॥ माशा छोटी शीशी ०-२५, १ दर्जन का २-५०
३ माशा बड़ी शीशी ०-५०, १ दर्जन का ५-००

श्लेष्मान्तक अवलेह

(दमा की नव्य आविष्कृत औषधि)

कटारीन और अस्थमीन तो दमा की विशेष विशेष अवस्था में लाभ करते है। किंतु श्लेष्मान्तक अवलेह प्रत्येक प्रकार के दमा पर अद्भुत लाभ दिखाता है यह दौरा तो नहीं रोकता, पर एक एक तोला इसे दोनों समय सेवन करने पर धीरे धीरे इसका दौरा कम होता चला जाता है। यही नहीं दमा का मूल कारण-सुबह सोकर उठतेही खांसी आना और बलगम निकलना-यह जो नित्यप्रति होता रहता है इसे शनैः २ कम करता है। धीरे धीरे रोगी को इतना आराम मिलता है कि वह चित्त चारपाई पर लेटने लग जाता है। और चित्त लेटने पर गले में खराश होकर जो खांसी आती है वह बिलकुल जाती रहती है। थोड़े दिन में ही इसके सेवन से बलगम का उत्पन्न होना, गले में सरसराहट, नाक का बन्द होना, दमकशी वगरह जितने भी दम के चिह्न हैं सब जाते रहते हैं। प्रयोगविधि--१ तो० अवलेह को १० तोला श्वासान्तक अर्क के साथ दोनों समय सेवन करें। मूल्य १ पाव के पैकट का ४-००

श्वासान्तक वटी

कुछ वर्ष पूर्व न जाने कहां से श्वास रोगियों की संख्या एकाएक हमारे औषधालय में बढ़ गई। रोगी ऐसे पुराने आये जिनको "श्लेष्मान्तक अवलेह" से लाभ तो होता था पर प्रभातको श्वासारम्भक खांसी का जो ठसका उठता था वह जल्दी न रुकता था, वही ठसका धीरे २ कुछ मिन्टों में श्वासावरोध की ओर रोगी के श्वासको बदल देता था इसको कैसे रोका जाय? इसके निवारणार्थ कई योग बनाये, अन्त में यह गोलियाँ कारगर सिद्ध हुईं। इन गोलियों को मिश्री की डली के साथ मुंह में डालकर सुबह, शाम व रात तक ८-१०-१२ गोली तक चूसते रहने से इसका इतना प्रबलप्रभाव देखा गया कि श्वासावरोध के साथ श्वास के खिंचकर आनेका कष्ट घटते२ बिल्कुल घटगया और रोगी अनुभव करने लगा कि मेरा दमा दम के साथ न जाकर "श्लेष्मान्तक अवलेह और श्वासान्तक वटी" से अवश्य जाता रहेगा इन दोनों औषधियों के दो दो, तीन तीन माह सेवन से स्वस्थ होने की सम्भावना विश्वास में परिणत होवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा गई है। मूल्य ५० गोली के पैकट का २-००, १०० गोली के पैकट का ४-००

श्वासान्तक अर्क

यह अर्क भी श्वासके रोगियोंके लिये ही तय्यार किया गया है। कई रोगियों पर श्लेष्मान्तक अवलेह के साथ दिया गया, जिनका गला खुश्क रहता था या बलगम बहुत खुश्क थी खांसी भी आती रहती थी उन्हें इस अर्कके पीते ही श्लेष्म शीघ्र निकलने लग पड़ी और रोगी को उससे चैन मिला।

मूल्य प्रति पौंड १-००

शीतपित्तान्तक रस

शीतपित्त या उदर्द ऐसा साधारण किंतु अत्यन्त कष्टदायक रोग है जो कई२ वर्षों तक रोगी का पीछा नहीं छोड़ता। वैद्य और डाक्टर इसे रक्तविकार समझ कर जो चिकित्सा करते हैं उसमें सफल नहीं होते। १० वर्ष से अनुभव लेते २ अनुभव से यह रस ऐसा सिद्ध हुआ है कि ४-६ मात्रा देने पर पुराने से पुराना उक्त रोग जड़ से चला जाता है। पथ्य कोई नहीं, मात्रा १ रत्ती शहद से दोनों समय।

मूल्य १ तोला २-०० रु०। ६ माशे का १-५

शीत वातेश्वर रस

प्रभाव-हृदय पर होता है।

गुण-बहुतसे हृदय रोगसे पीड़ित रोगियों को यह कष्ट देखा जाता है कि एकाएक ठण्डा पसीना आने लगता है और स्पर्श से शरीर ठण्डा लगता है हाथ पैर भी ठण्डे शीत होजाते हैं। हृदय बैठता हुआ या उड़ता हुआ प्रतीत होता है कुछ व्यक्ति तो व्याकुलतावश बतला भी नहीं सकते, कुछ कहते हैं हमें कुछ हो रहा है। हृदय की गति रुक-रुक कर चलती है, उस समय हृदयावसादके लक्षण दिखाई देते हैं, इस दशा में यह 'शीत-वातेश्वर रस' अमोघ सिद्ध हुआ है, नव्य आविष्कृत सद्यफल-प्रद रस है।

मात्रा-१ रत्ती शहदसे मिलाकर चाट लें या खांडमें डालकर पानी से सेवन करें। कुछ दिन सेवन करने पर हृदय रोगसे मुक्ति मिल जाती है।

मूल्य १ तोला २-००।

श्री सुख धारा

(प्रत्येक घर में सदा सर्वदा रहनी चाहिये)

(१) पेटका दर्द, दांत दर्द, सिरदर्द वगैहरा कोई दुःख दर्द हो उसको फौरन हरन कर सुख देने वाली धारा

(२) बिच्छूके डंक का दर्द, वर्रय्या, ततैय्या के डंक का दर्द और कनखजूरा के जहर का दर्द दूर कर सुख लाने वाली धारा।

(३) वमन, रेचन से उत्पन्न कष्ट, विशूचिका की भयंकर व्यथाको मिटाकर सुख पहुंचाने वाली धारा।

प्रयोग-पेटदर्द, वमन, कालरा में ५-१० बूंद खांड में डालकर पानी से दें। बिच्छू, वर्रय्या, ततैय्या के डंक मारे स्थान पर लगावें। दांत दर्द, दांत में कीड़ा लगा हो, रूई की फुरेरी बनाकर लगावें, बहुत अच्छी कीट विनाशक, कीटाणु नाशक, शरीर संरक्षक है।

छोटी शीशी का मूल्य १-०० बड़ी शीशी २-००
छोटी शीशी १ दर्जन १०-०० बड़ी शीशी १ दर्जन २०-००

सारस्वत वटी

(हिस्टीरिया की दवा)

यह औषध अभी तैयार की है और कई रोगियों पर आजमाया है दिमागी कमजोरी से या मानसिक व्यथा से हिस्टीरिया का दौरा होता हो तो उसमें लाभ करती है। यह गोलियां नींद न आना मानसिक उद्वेग आदि मानसिक कष्ट में भी लाभ करती हैं। १०० गोली का मूल्य ३-००रु० वी. पी. खर्च भिन्न।

सेवनविधि-पानी से एक-एक गोली दोनों समय। वैद्य लाभा-लाभ से सूचित करें।

स्वदेशी चाय

जुकाम, खांसी, गले की खर्खरी, साधारण ज्वर, दर्द बदन, सर्दी लगना, हड़ फूटन इत्यादि में इसका सेवन चाय की तरह करें। इसमें चाय जैसे नशे का दुर्गुण नहीं। मूल्य प्रतिपैकट आधा पाव ५० नये पैसे, एक छटांक ३१ नये पैसे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिफलोल

(उपदंश-आतशक की दवा)

लाभ—बिना मुँह आये ही यह दवा उपदंश में लाभ करती है और पुराने रोग के फिसाद को दो सप्ताह में दूर कर देती है ।

सेवन विधि—दवाई जो केपसूल में बन्द है केपसूल सहित पानी से निगल जाना चाहिये, दोनों समय ।

१४ केपसूल का बन्द पैकट मूल्य २—५०

सुरमा ज्योतिवर्द्धक

(नेत्र ज्योति बढ़ाने वाला सुरमा)

लाभ—जिन व्यक्तियोंकी नेत्र ज्योति किसी भी कारण से कम हो रही है वह एकबार अवश्य ही प्रयोग कर के देखें नेत्र की ज्योति बढ़ाने में इस जैसा उत्तम सुरमा नहीं मिलेगा । ३ माशे का पैकट मूल्य ०—५०

६ माशे का ,, १—००

हिमसोल

(गर्मी, बुखार, घबराहट को दूर करने वाली दवा)

लाभ—बुखार की अधिक घबराहट, अधिक गर्मी, धूप से लू लगना, चक्कर, प्यास आदि कष्ट बढ़नेपर इसका सेवन कराइये और अमृततुल्य लाभ देखिये । इसकी समता की शीतलता उत्पन्न करने वाली अन्य ओषधि आपको किसी भी चिकित्सा में नहीं मिलेगी ।

एक औंस का पैकट मूल्य १—५०

हुपीन

(बच्चों की काली खांसी की दवा)

लाभ—काली खांसी या कुत्ता खांसी, ऐसी बुरी बीमारी है कि इसकी चिकित्सा कठिन है, किन्तु इस दवा के सेवन से अच्छा लाभ होता है । मात्रा ½ रत्ती । औंस के पैकट का मूल्य १.५० , ३माशे के पैकट का मूल्य ४५न. पै.

हैडीक्योरीन

(सिर दर्द की दवा)

लाभ—सर्दीसे, गर्मीसे, कब्ज से और बुखार के समय होने वाले दर्द में इसे दीजिये, ५-७ मिनट में इस दवा का लाभ देखिये । इसको कितनाही सेवन करें हृदय और रक्त पर कोई बुरा प्रभाव नहीं होता । पुराने से पुराने सिर दर्द में या दौरे से होने वाले दर्द में भी यह अपना लाभ दिखाती है ।

४० टिकियों का पैकट मूल्य १—५०

लक्ष्मणारिष्ट

(आसव-विज्ञान)

मुझे यह योग एक तपस्वी बाबा ने बताया था । योग बनाने का अवसर १९२१ में लगा था । मैंने जिन वन्ध्या स्त्रियों को सेवन कराया इसके सेवन से ५० प्रतिशत के सन्तानें हुई किन्तु पुरुषों में यदि वन्ध्यत्व हो उसमें इससे लाभ होता है या नहीं ? इसका मुझे ज्ञान नहीं था, मैंने यह योग अपने लिखे आसव-विज्ञान में प्रकाशित कर वैद्यों से प्रार्थना की कि इस योग को बना कर उसके लाभालाभ से हमें सूचना दें । इस ३० वर्ष में एक दर्जन वैद्य इस योग को बनाकर समय-समय पर हमें सूचना देते रहे हैं, उनमें से तीन वैद्यों ने लिखा है कि यह योग स्त्री-वन्ध्यत्व में जितना लाभ करता है उससे अधिक पुरुषों को लाभ करता है ६० वर्ष की आयु को पहुंचे व्यक्ति इसके सेवन से सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हुए ऐसा उनके पत्रों से प्रकट हुआ । इसी-लिए हमने इसे विक्रयार्थ निर्माण करने का निश्चय किया । आशा है जो वैद्य इसे बनाने में असमर्थ हैं इससे लाभ उठायेंगे । मूल्य प्रति पौण्ड ३-५० सेवन विधि साथ है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुटाई, पिसाई, गोली, टिकिया बनवाई भाव

कोई भी दवाई जो एक सेर से कम होगी कुटाई १–०० सेर
१ सेर से ५ सेर तक दवाई की कुटाई ०—७५ ,,

नोट नं० १–अधिक दवाई का चूर्ण कराना हो तो रेट विशेष पत्र-व्यवहार द्वारा तय करें।

नोट नं० २—कुचला, निर्मली, चिरायता, विधारा-मूल आदि कठोर चीजें यदि कोई सेर दो सेर कुटावेगा तो इनकी कुटाई १–५० प्रति सेर होगी। मन दो २ मन कुटाने के लिये पत्र-व्यवहार करें।

गोली, टिकिया बनवाई

½ रत्ती से २ रत्ती तक का भाव २—०० पौण्ड।
२½ रत्ती से ५ रत्ती तक १—५० पौण्ड।
६ रत्ती से १ मासे तक १—०० पौण्ड।

इसमें पालिश कराई भी शामिल है।

चिकित्सा सम्बन्धी उपकरण

शरीर-ताप-मापक (Thermometer)—जील का मूल्य ४–००
,, ,, जापानी १–५०
दवाई मिलाने की छुरी (Spatula)—मूल्य—बढ़िया १–२५
साधारण १–००
गरम पानी की रबड़ की बोतल (Hot Water Bottle)—मूल्य ५–००
फुफ्फुस परीक्षा यन्त्र (Stethoscope)— मूल्य १०–००
सूचिकाभरण पिचकारी (English Record Syringe) २ c.c. का मूल्य ६–००, ५cc ८–५०, १० c.c. ११–००
प्रोब (शलाका)—मरहम-पट्टी के लिए मूल्य ०–५०
कान धोने की पिचकारी (Ear Syringe)—२ औंस ६–००
४ औंस ८–००
दांतों का जम्बूर (Universal Tooth Forceps)—मूल्य ५–००
द्रव औषध मापक ग्लास (MeasureGlass)—
२ ड्राम ०–८५, १ औंस १–२५, ४ औंस १–५०
ड्रापर (Droppers)—बढ़िया १–०० दर्जन
दुग्धआचषक-ब्रैस्टपम्प (Breast pump)— मूल्य १–५०
ग्लिसरीन सिरिंज (Glycerine Syringe)–२ औंस ६–००
बस्ति यंत्र (Irrigator) नाली व टूटी सहित–मूल्य ५–५०
स्पिरिट लैम्प (Spirit lamp) कांच की— मूल्य २–५०
कैंची (Scissors)—बढ़िया मूल्य २–००

पावर और हाथ से चलने वाली टिकिया बनाने की मशीन

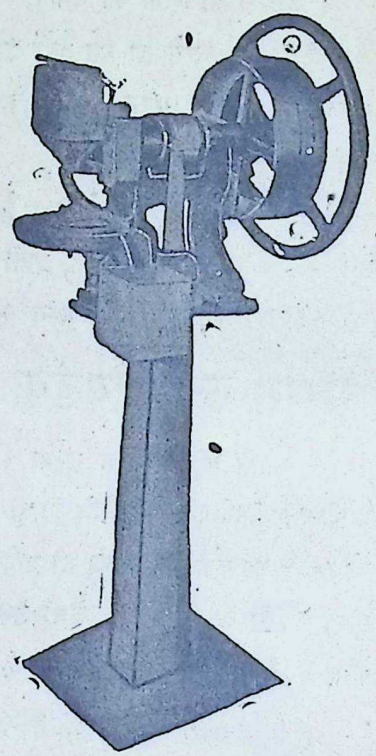

½ रत्ती से लेकर 1½ माशे तक की टिकिया बनाने वाली बड़ी मशीन। मशीन के साथ दो साइज डाई पंच होंगे। मूल्य ४००—००

स्थायी ग्राहकों के लिये विशेष रियायत

कार्यालय के नियमानुसार पेशगी भेजना आवश्यक है यदि आप १०) रुपये एक बार भेज कर स्थाई ग्राहक बन जांएगे तो आप को निम्न सुविधाएं दी जाएंगी।

(१) फार्मेसी की प्रस्तुत तथा पेटेन्ट दवाईयों पर ७ नये पैसे प्रति रुपया (एजण्ट न होने पर) कमीशन दिया जाएगा

[२] बार-बार पेशगी भेजने की आवश्यकता न रहेगी स्थाई ग्राहक नम्बर देना पर्याप्त होगा।

[३] यह रकम स्थाई ग्राहक न रहने पर वापिस कर दी जायगी।

मैनेजर
पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी
अमृतसर, व देहली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवास पेटिका नं० १ जर्मन डिजाईन

स्टील क्लिप सहित ऊपर चमड़ा चढ़ा हुआ साईज ११½ × ६ × ८ इंच इसमें होमियोपैथिक ४ ड्रामकी ४८, १ औंसकी १२ और १ औंस खुले मुंह की ३ शीशियां आती हैं।

मूल्य ३४-००

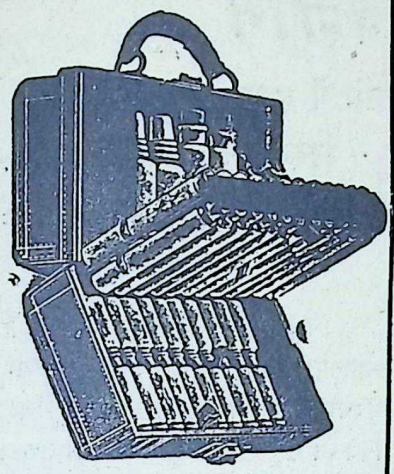

प्रवास पेटिका नं० २, जर्मन डिजाईन

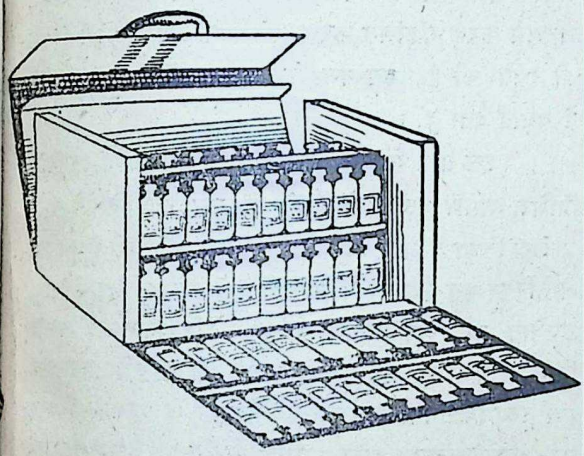

इसमें होमियो-पैथिक २ ड्रामवाली ६ दर्जन शीशियां आती हैं

मूल्य २४-००

प्रवास पेटिका नं० ३

बहुमूल्यक वैद्यों के हमें पत्र प्राप्त हुए हैं जिस में प्रार्थना की गई है कि प्रवास पेटिका में दो साइज आने चाहियें। अर्थात बड़ी शीशियों के साथ छोटी शीशियां भी आसकें अब हमने प्रवास-पेटिका नं० ३ भी तैयार कराई है। इसमें होमियोपैथी की २ ड्राम वाली २४ शीशी, ४ ड्राम वाली १८ शीशी तथा १ औंस की लम्बी गोल ८ शीशी होती हैं। इस का साईज़ 9½×6×4½ इंच है। मूल्य २१-००

औषध पाकेट बक्स नं० १

यह बक्स बटुए के समान है। बक्स सुन्दर और छोटा होने से जेब में आ सकता है। प्रत्येक वैद्य को यह बक्स अवश्य रखना चाहिए। इस में २ ड्राम होमियोपैथिक की १८ शीशी आ सकती हैं। अगर आप वैद्य हैं और दूर रोगी देखने जाना है बड़ा बक्स नहीं ले जा सकते तो इसे आराम से जेब में डालकर ले जाइये। मूल्य शीशी युक्त ६-००

औषध पाकेट बक्स नं० २

इसमें २ ड्राम होम्योपैथिक की १२ शीशियां आसकती हैं। मूल्य ५-००

नोटः-प्रवास पेटिकाएं ग्राहक की इच्छानुसार डिजाईन प्राप्त होने पर भी बना कर भेजी जाती हैं। परन्तु आधी रकम पेशगी आनी आवश्यक है।

हाथ से गोलियां बनाने की मशीन

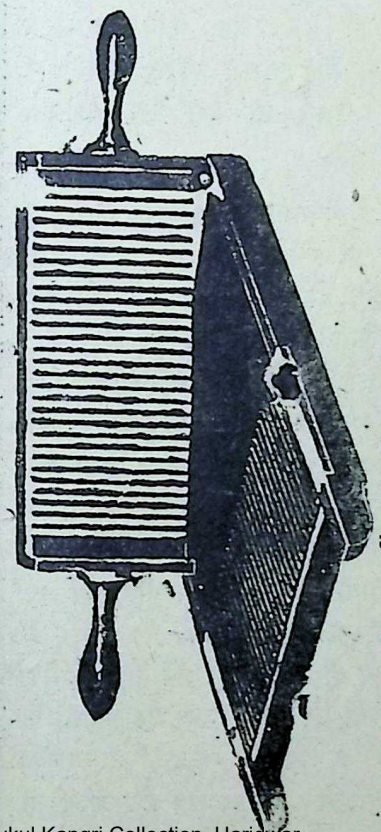

इस मशीन से बड़ी आसानी से एक व्यक्ति दिन में ४-५ सेर दवाई की गोलियां तैयार कर सकता है। २½ से ३ रत्ती साइज की गोली बनाने की मशीन का मूल्य ३०-००

१ रत्ती साईज की गोली बनाने की मशीन का मूल्य ५०-००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य की अनुपम कृति

भस्म-विज्ञान

भाषा-टीका सहित दो भागों में मूल्य १०)

धातु भस्मों व रस-चिकित्सा के आविष्कारक कौन थे वह कब हुए ? और आयुर्वेद में रस-चिकित्सा का प्रवेश कैसे हुआ ? साधु सन्तों, महात्माओं की अभूती, सिद्धों की रस सिद्धियों का ज्ञान वैद्यों तक कैसे पहुँचा ? इसके इतिहास का ज्ञान आयुर्वेदज्ञों को बिलकुल नहीं, वास्तव में रस चिकित्सा सिद्धों महात्माओं की देन है। इसका सही इतिहास जानना चाहते हो तो भस्म-विज्ञान का उपोद्घात पढ़िये।

इसमें ८४ सिद्धों का सचित्र विवरण सहित इतिहास दिया है, जिसको खोजने में स्वामीजी ने भारतवर्ष के बड़े-बड़े पुस्तकालयों में जा-जाकर १४० से ऊपर हस्तलिखित ग्रन्थों में से खोजकर सारा विवरण ढूंढ़ निकाला है। वह ऐसा अकाट्य प्रामाणिक ग्रन्थ है कि वैद्य समाज पढ़कर स्तम्भित व चकित रह गया है। ग्रन्थ की यही एक विशेषता नहीं।

सब से बड़ी विशेषता तो इस ग्रन्थ की यह है कि जितने भी सिद्धों महात्माओं द्वारा भस्में बनाने की विधियां आविष्कृत हो चुकी हैं तथा जो रस ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुए उनमें जो भस्म बनाने की विधियां आई हैं वह सब अप्रकाशित होने के कारण वैद्य समाज उनके निर्माण को नहीं जानता, उनको ढूंढ कर सप्रमाण इस ग्रंथ में संग्रह किया गया है ! यही नहीं, इससे भी अधिक विशेषता यह है कि यूनानी, मिश्रानी चिकित्सा में जिन पत्थरों, रत्नों, धातुओं की भस्में बनती हैं उनका ज्ञान भी वैद्यों को बहुत कम है वह समस्त विधियां भी इस ग्रन्थ में सप्रमाण संकलित कर दी गई हैं। इससे भिन्न अनेक धातु भस्मों की विधियां जो अब तक महात्माओं के गुरु परम्परा में चली आ रही थी, उनमें से अनेकों विधियों को बड़े प्रयत्न से प्राप्त कर सब को स्वामी जी ने प्रकट कर दिया है। पुस्तक कैसी है ? इस पर विद्वान् वैद्यों की सम्मतियों से इसका अन्दाजा लगाइयेगा।

भस्म विज्ञान पर कुछ सम्मतियां

'स्वास्थ्य' कृष्ण गोपाल धर्मार्थ औषधालय कालेड़ा बोगला

रस, भस्म विज्ञान भारतीय चिकित्सा विज्ञान का महत्वपूर्ण विषय है, इस विषय के सभी ग्रन्थों में प्रायः रस-भस्मों का परिचय सूक्ष्म रूप से मिलता है। किन्तु विशद विवेचन सह स्वतन्त्र पुस्तक अभी तक प्रकाशित नहीं हुई थी जो रस एवं भस्मों के विषय में ठोस शिक्षा दे सके। इस कमी को लक्ष्य में रख कर आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् स्वामी हरिशरणानन्द जी ने अनेक रस ग्रन्थों के आधार स्वरूप बहुत परिश्रम करके संकलित कर सुन्दर हिन्दी टीका सह इस पुस्तक की रचना की है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये लेखक को मैं बधाई देता हूं।

इस ग्रन्थ में भस्म बनाने की प्रचीन शास्त्रोक्त विधि विभिन्न प्रमाण भूत ग्रन्थों से ही हैं उसे नव्य विज्ञान संमत उल्लेख किया है और महत्वपूर्ण सूचनायें भी देदी हैं। इसके अतिरिक्त इस सम्बन्ध में उपोद्घात के भीतर लेखक ने धातु, उपधातु, रस, रत्न आदि के सम्बन्ध में विज्ञान सम्मत विस्तृत विवेचन किया है, यह अनुभव लेखक को भारतीय रसशास्त्र एवं नव्य विज्ञान सम्पन्न रसायन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान डा० प्रफुल्लचंद्रराय द्वारा परम्परागत मिला। फिर काफी धन खर्च द्वारा दीर्घ काल पर्यन्त परिश्रम करके तथा विश्लेषण करवा कर अनुभव प्राप्त किया है इस तरह जो अनुभव मिला वह लेखक ने हृदय खोलकर पुस्तक में दे दिया है।

पुस्तक के प्रारम्भ में रस शास्त्र का इतिहास दिया है, एवं रसाचार्यों के नाम, परिचय तथा समय का उल्लेख भी साथ-साथ दिया है, संपूर्ण भस्मों का विस्तृत विवेचन किया है एवं साथ में हिन्दी टीका देकर और अपना अनुभव दर्शाकर पुस्तक को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है यह पुस्तक फार्मेसी वालों के लिये मार्गदर्शक है, एवं आयुर्वेद के विद्वान्, सामान्य चिकित्सक, छात्रगण तथा सर्व साधारण आयुर्वेद प्रेमी सज्जनों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगी मैं हृदय से इसका प्रचार चाहता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जय आयुर्वेद, जोधपुर अगस्ताङ्क १९५४—

भस्म-विज्ञान के दो भाग हमारे पास आये हैं। प्रथम में तो आयुर्वेद में धातुओं का उपयोग कब कैसे हुआ और उसके बाद रस विद्या तथा शिव, नागार्जुन ८४ सिद्ध आदि के सम्बन्ध में विभिन्न मत मतान्तरों का वर्णन है। पारद क्या वस्तु है? इस विषय पर लेखक ने प्रगतिशीलता से काम लिया है और लेखक ने जगत् को एक नवीन देन दी है। पारे द्रुति विधानों के बाद महारसों, वायु और वायव्य तत्त्वों, धातुओं की रचना और उसके कार्यों पर गम्भीरता पूर्वक प्रकाश डाला गया है। तृतीय साधनपाद द्वारा इस विद्या में चिकित्सा के उपयोग में आने वाले विभिन्न उपकरणों पर भी प्रकाश डाला गया है ताकि नवीन रस वैद्य व चिकित्सक कहीं अटकें नहीं।

द्वितीय भाग में भस्मों के प्रकार और भस्मों की निर्माण विधि पर अनुभव पूर्ण विवेचन दिया गया है। लेखक ने विचार में लाकर विभिन्न गुणों अवगुणों एवम् तकलीफों व बाधाओं का स्पष्ट वर्णन किया है जो ग्रन्थकी खास विशेषता है।

अब तक इस विषय पर अधिक ग्रन्थ नहीं लिख गये हैं जो लिखे भी गये हैं वे केवल शाब्दिक परिवर्तन मात्र टीका मात्र ही सिद्ध हुए हैं। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में लेखक का अक्षय ज्ञान भण्डार हमारे सम्मुख आता है? इस का प्रत्यक्ष अनुभव प्रस्तुत पुस्तक द्वारा आसानी से हो जाता है।

लेखक की विद्वत्ता पूर्ण पुस्तक का अध्ययन प्रत्येक को अवश्य करना चाहिए। विशेषतः रस चिकित्सक इस को पढ़कर नवीन पथ प्राप्त करेंगे। वास्तव में परीक्षा को केवल टीका मात्र ग्रन्थको पाठ्यक्रम में न रख कर एवम् ठोस साहित्य पूर्ण ग्रन्थों को निर्धारित करना चाहिए ताकि विद्यार्थी जीवन से ही उनके संस्कार आयुर्वेद और आयुर्वेद को लेकर वे कुछ कहने में समर्थ हो सकें। वैद्योंकी स्थितिको देखते हुए ग्रन्थका मूल्य कम है किन्तु उपयोगिता को देखते यह मूल्य नहीं के बराबर है।

योगमाला—बरालोकपुर, इटावा (यू. पी.)

भस्मों का विधान यत्र तत्र ग्रन्थों में वर्णित है। वैज्ञानिक विधिसे उनका वर्णन कहीं भी उपलब्ध न था, किस धातुमें कौन २ से अवयव कितने २ परिमाण में है? क्यों यह लाभकारी हैं? कैसें तत् प्रतिनिधि रूप में किस भस्म का उपयोग हो सकता है आदि २ विषयों की पूर्ण जानकारी को बड़ी विशिष्ट शैली से प्रतिपादन कर भस्म-विज्ञान में चार चांद लगा कर एक नवीनता ला दी गई है। पुस्तक प्रत्येक वैद्य के देखने योग्य बन गई है।

आपका लिखा उपोद्घात जो २२३ पृष्ठों में समाप्त हुआ है, बड़ा ही महत्व का है और ८४ सिद्धोंके सचित्र पूर्ण पते एवं विवरणात्मक विवेचन बड़ा सुन्दर है। १४६ ग्रन्थों के आधार से उपोद्घात लिखा गया है वस्तुतः इन अमूल्य अप्राप्य ग्रन्थों की खोज एवं उनके अध्ययन के बाद ग्रन्थ प्रणयन कर स्वामी जी ने अपने अदम्य साहस का परिचय दिया है। लेखक अपने विषयके ज्ञान प्रसार में सफल हुए हैं, एतदर्थ बधाई के पात्र हैं।

पूज्य श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य बम्बई

२४—५—५४ के पत्र में लिखते हैं 'भस्म विज्ञान को अक्षरशः सम्पूर्ण तो नहीं परन्तु ऊपर ऊपरसे बहुत कुछ देखा है इसमें वैद्यों के काम की और उपादेय बातें बहुत हैं।

वैद्य घनानन्द जी पन्त,

३१०१ बाजार सीताराम, देहली।

११-४-५४ भस्म विज्ञान दोनों भाग मिले। आप के पूर्व प्रकाशित क्षार विज्ञान, आसव विज्ञान लघु निबन्ध पहिले देख चुका था तदनु कूपी पक्व रस निर्माण विज्ञान बड़ा ग्रन्थ जो कि पारद विषयक उत्कृष्ट ग्रन्थ है—समस्त पढ़ा आज भस्म विज्ञान देखा जिसका २२३ पृष्ठ का उपोद्घात अनेक ज्ञातव्य विषयों से परिपूर्ण है। प्रत्येक भस्म विधि पर प्राचीन विचारों का नवीन विचारों से विवेचन किया गया है। आप अपनी लगन के बड़े पक्के हैं। भस्मों के विषय वर्तमान शताब्दी में यूनानी चिकित्सकोंने आयुर्वेद से लेकर जो इसमें ऊहापोह की है उसका भी उसमें दिग्दर्शन है। अकीकादि द्रव्य जो कि यूनानी चिकित्सा में विशेषोपयोगी समझे जाते हैं उनका भी आपने समावेश कर आयुर्वेदज्ञों को यूनानी द्रव्य ज्ञानमें सहायता दी है। रत्न उपरत्नों का अनेक प्रकार से शोधन मारण गुणादि का विशद वर्णन, सरल भाषामें है। आपने इस ग्रन्थ को लिखकर भस्मोंके विषय में आयुर्वेद को ऊपर उठा दिया है। पाठ्य पुस्तकों में आलोचनोपयोगी पुस्तक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के उत्तम ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयो करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामद होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाह होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जि से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर का तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आ उनके संग्रह का प्रयत्न किया है वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उप सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव नि प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन अ भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १२) मार्ग व्यय भिन्न।

आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी

अकाली मार्केट-अमृतसर।

आवश्यक सूचना

तिथि १.४.५९ से आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय फैज़ बाज़ार, दिल्ली से हटाकर खारी बावली, दिल्ली में परिवर्तित कर दिया गया है। कृपया ग्राहक महानुभाव तथा अन्य सम्बन्धित सज्जन नोट करें और भविष्य में सभी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्न लिखित नये पता पर करें :—

मैनेजर, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय

खारी बावली, दिल्ली—६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६ ज्येष्ठ सम्वत् २०१६ संख्या ६

जून १९५९

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. आयुर्वेद के गले पर दुधारी तलवार (लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार) ... ८९
२. मन और मस्तिष्क ९३
३. ज्वर भेद ९७
४. मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी में भेद तथा मण्डूकपर्णी पर विदेशों में अनुसंधान ... १००
५. हृदय रोग के निदान की नई अचूक विधि १०२
६. भू गर्भ के स्तरों की खोज १०४
७. क्या गर्मियों में अधिक लवण का सेवन हितकर है ? १०४

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिबार की छपाई ४०)
आधा पृष्ठ" १ " " " २४)
चौथाई " १।२ " " " १६)
टाईटिल के पीछे के पृष्ठ की " " ५०)
" तीसरे " की " " ४५)
" चौथे " की " " ६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ६ | ज्येष्ठ २०१६ वि०, जून १९५९ ई० | अंक ६

卐 आयुर्वेद के गले पर दुधारी तलवार 卐

(लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार)

भारतीय चिकित्सा-प्रणाली और आयुर्वेद की उपेक्षा की अंग्रेजी राज की परम्परा को नेहरू राज में भी यथावत् सुरक्षित रखने की सरकारी नीति का कारण समझ में आना कठिन है। कृषि की उपज को बढ़ाने के लिए चीन, जापान तथा दूसरे देशों की अक्षरशः नकल की जाती हैं। नागपुर कांग्रेस में अपनाई गई जिस कृषि-नीति को एक क्रान्तिकारी कदम कहा गया है वह प्रायः चीन और रूस की नकल है। चीन की सहकारी खेती और रूस की सामूहिक खेती दोनों की उसमें एक साथ नकल की गई है। परन्तु अपनी चिकित्सा प्रणाली को प्रोत्साहन देने के लिए और विदेशी चिकित्सा प्रणाली का अन्धानुकरण करने के लिए न तो चीन से कुछ सीखा जाता है और न रूस से। आश्चर्य यह देख कर होता है कि अपने अनुभव से भी कुछ लाभ उठाया नहीं जाता।

अभी उस दिन प्रयाग के यूनानी मेडिकल कालेज में, जिसमें श्रीलंका के विद्यार्थी भी शिक्षा ग्रहण करते हैं, एक स्वागत-समारोह में भाषण देते हुए पश्चिम बंगाल के स्वास्थ्य मन्त्री डा० अनाथबन्धुराय ने जो विचार प्रगट किये उनको पढ़ कर भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के समर्थकों का हृदय गदगद हुए बिना न रहा होगा। उन्होंने कहा कि "भारत में विदेशी चिकित्सा-प्रणाली और विदेशी औषधियों का शरीर पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ता और अक्सर घातक प्रभाव पड़ जाता है। विदेशी औषधियों और विदेशी चिकित्सा प्रणाली से भारत में शरीर की रोग प्रतिरोधशक्ति क्षीण हो जाती है। भारत में आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा और औषधि का अनुकूल प्रभाव पड़ता है और आयुर्वेदिक तथा यूनानी चिकित्सा-प्रणाली से गरीब का कल्याण किया जा सकता है। विदेशी चिकित्सा प्रणाली और विदेशी औषधियाँ भारत जैसे बहुत गरीब देश के लिए बहुत महंगी भी पड़ती है। स्वतन्त्र भारत में आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा-प्रणाली और औषध-प्रणाली को प्रोत्साहन मिलना चाहिए भारत में जड़ी-बूटियों का उत्पादन बढ़ा कर उनसे औषधियां बनाने से भारत का धन विदेशों में जाने से बच जायेगा।"

यह है स्पष्ट सम्मति, एक ऐसे स्वास्थ्य मन्त्री की जो स्वयं भी डाक्टर अथवा चिकित्सक हैं। परन्तु उनकी अपनी सरकार भी उनके अपने राज्य पश्चिमी बंगाल में उनकी इस सम्मति का अनुकरण नहीं करती होगी। राज्यों के अनेक मन्त्रियों को समय-समय पर इसी प्रकार भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा-प्रणाली की प्रशंसा करते हुए प्रायः सुना जाता है। सार्वजनिक रूप में वे सब प्रायः आयुर्वेद की प्रशंसा करते हुए सुने जाते हैं। परन्तु अपने कार्यालयों में बैठ कर उनको अपनी सम्मति के विरुद्ध विदेशी चिकित्सा-प्रणाली के लिए आयुर्वेद-प्रणाली के गले पर दुधारी तलवार चलाने को प्रायः मजबूर होना पड़ता है। यहां वे अंग्रेजी-राज की परम्परा को सुरक्षित रखने में जरा-सी भी चूक नहीं कर सकते। पिछले दिनों में इसका एक उदाहरण सामने आया है। सोवियत रूस औद्योगिक क्षेत्र में भारत की बहुत बड़ी सहायता कर रहा है। मध्य प्रदेश के भिलाई क्षेत्र में उसकी सहायता से १॥। अरब रुपया खर्च करके इस्पात का एक विशाल कारखाना कायम किया गया है। दुर्गापुर (प० बंगाल) में चश्मों के शीशे और बिहार में रांची के समीप बड़ी मशीनें बनाने के कारखाने भी उस की सहायता से शीघ्र ही बनाये जा रहे हैं। नौवायली, मद्रास में एक बड़े जल विद्युत-घर का निर्माण और कोरबा, मध्य प्रदेश में कोयले के उत्पादन से सम्बन्धित उद्योगों का भी श्रीगणेश किया जा रहा है। कोई २॥ वर्ष हुए, औषधि-निर्माण (फार्मेसी) के उद्योग-धन्धे का विस्तार करने के लिए उसकी ओर से ८ करोड़ रूबल की विशेष सहायता देने का प्रस्ताव पास किया गया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रूस की चीन की तरह अपनी कोई पृथक चिकित्सा-प्रणाली नहीं, परन्तु उसने पाश्चात्य चिकित्सा-प्रणाली को अपने ही ढंग से अपना कर उसको मौलिक रूप प्रदान कर दिया है। उसने उसको अपने लिए सर्वथा स्वतन्त्र स्थिति प्रदान कर दी है। चिकित्सा-प्रणाली के क्षेत्र में वहां के सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री का यह कथन कभी भुलाया नहीं जा सकता कि हम आंखें मूंद कर अमरीका की चिकित्सा-प्रणाली का अन्धानुकरण नहीं करते, उसकी बीमारियों का आयात अपने देश में नहीं होने देते हैं और न दवाइयों का। सोवियत रूस ने चिकित्सा-प्रणाली के क्षेत्र में इस सिद्धान्त को अपनाया है कि बीमारी का इलाज करने की अपेक्षा उसको न होने देना ही बेहतर है। इसी दृष्टि से उसने बीमारियों के निदान और औषधों के प्रयोग के अपने ही तरीकों का स्वतन्त्र आविष्कार किया है और पश्चिमी दवाइयों के प्रयोग के सम्बन्ध में उनकी पेटेन्ट दवाइयों का अपने यहां प्रसार नहीं होने दिया है। सम्भव है, इसी दृष्टि से उसने ८ करोड़ रूबल की विशेष सहायता से भारत में औषध-निर्माण के कार्य को स्वतन्त्र रूप में शुरू करने का प्रस्ताव भारत सरकार के सम्मुख उपस्थित किया हो। पश्चिम की पेटेण्ट दवाइयों के रूप में कितनी ही मुद्रा विदेशों को चली जाती है। यह आवश्यक है कि स्वदेश में ही औषध-निर्माण के कार्य को शुरू करके विदेशों को होने वाले मुद्रा के इस प्रवाह को रोका जाए। यह सम्भव है कि औषध-निर्माण के कार्य के स्वदेश में प्रारम्भ होने पर हमारा ध्यान भारतीय चिकित्सा-प्रणाली की ओर भी आकर्षित होगा, परन्तु हमारे देश में ऐसे लोगों की कुछ कमी नहीं है, जो ऐसी सम्भावनाओं को पैदा होने ही नहीं देना चाहते। इसलिए वे सोवियत संघ के इस प्रस्ताव के मूर्त-रूप धारण करने के मार्ग में निरन्तर बाधाएं पैदा करते रहते हैं।

पिछले ही दिनों में समाचारपत्रों में एक सनसनीखेज रहस्य का उद्घाटन किया गया हैं। उसमें प्रगट किये गये तथ्य यदि सच हैं तो इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता कि भारत में ही भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के विरुद्ध एक भीषण षडयन्त्र रचा गया हैं और अंग्रेजों के के मानस-पुत्र अंग्रेजों के यहां से चले जाने के बाद भी उस षड्यन्त्र को सफल बनाने में लगे हैं।

हमारे पाठकों को यह मालूम होना चाहिए कि पूना के समीप पिम्परी में पेन्सिलीन तैयार करने का एक बड़ा कारखाना कायम है। वहां डा० के० गणपति औषधि-निर्माण के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने का विशेष कार्य कर रहे हैं और वे अपने इस कार्य के लिए समस्त भारत में विख्यात हैं। उनको अब वहाँ से हटाने का षड्यन्त्र उन लोगों ने रचा है, जिनके निहित स्वार्थों पर उनके इस कार्य से चोट लगी है। उस कारखाने के प्रायः सभी वैज्ञानिकों ने षड्यन्त्र के विरोध में प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू को एक आवेदन-पत्र दिया है। डा० गणपति बम्बई के सुप्रसिद्ध हाफकीन इन्सटीट्यूट में काम करते रहे हैं और अब वे पिम्परी के हिन्दुस्तान एन्टीबोयटिक्स कारखाने के वर्क्स मैनेजर हैं। पिम्परी का पेन्सिलीन कारखाना इसी नाम से मशहूर है। यह भी सन्देह किया जाता है कि औषध-निर्माण के कार्य को राष्ट्रीय क्षेत्र में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने के प्रबल समर्थक होने के कारण डा० गणपति अमरीका के औषध-निर्माण करने वाली एक विशेष कम्पनी की आँखों का कांटा बन गये हैं। भारत सरकार के वाणिज्य और उद्योग मन्त्रालय ने उस विदेश कम्पनी के साथ "स्ट्रेपटोमाइसीन" के निर्माण के लिए एक समझौता कर लिया है। उस विदेशी कम्पनी को इस समझौते के के अनुसार उसके निर्माण के रहस्य को गुप्त रखने के लिए रायल्टी दी गई है। इस कम्पनी का पिम्परी के क्षेत्र में इस प्रकार प्रवेश होना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण हैं। हिन्दुस्तान एन्टीबोइटिक्स के कारखाने में जो अनुसन्धान-कार्य हो रहा था उसका इससे एकाएक अन्त कर दिया गया। सोवियत संघ ने देश में स्थान-स्थान पर पेन्सिलीन तथा अन्य दवाइयाँ तैयार करने के लिए सहायता देने का जो प्रस्ताव किया था उसमें निर्माण के रहस्य को गुप्त रखने के लिए कोई मांग नहीं की गई थी, जैसे कि अमरीका की इस कम्पनी ने की है। अमरीका की इस विदेशी कम्पनी का नाम 'मर्क' है, जिसके साथ यह समझौता किया गया है।

सोवियत संघ का यह प्रस्ताव था कि पिम्परी में हिन्दुस्तान एन्टीबोइटिक्स औषध-निर्माण कारखाने का स्ट्रेप्टोमाइसीन तैयार करने के लिए विस्तार किया जाए। एन्टीबोइटिक्स निर्माण करने के लिए कारखाने में नई शाखा खोलने, रासायनिक औषधियों के निर्माण के लिए नये कारखाने बनाने, बम्बई के नये बूचड़खानों के समीप एक नया छोटा कारखाना बनाने और अन्य सहायक रासायनिक पदार्थ तैयार करने के लिए किसी उपयुक्त स्थान पर एक बड़ा कारखाना कायम करने का रूस का प्रस्ताव था। इस समय भारत का विदेशी औषधियों के आयात पर ३० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष खर्च होता है। इन कारखानों की स्थापना से वह सारा खर्च बचाया जा सकता है और सभी दवाइयाँ यहां तैयार की जा सकती हैं। उनके निर्माण के खर्च का अनुमान सब ३४ करोड़ ५ लाख रुपया लगाया गया। रूस ने इस खर्च और विदेशी मुद्रा के उपलब्ध करने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। भिलाई के कारखाने के लिए रूस द्वारा खर्च की जाने वाली रकम जिन सुगम किश्तों में चुकाई जानी है उन्हीं में इस रकम को भी सहज में चुकाया जा सकता है। भिलाई में लगभग ९॥ अरब रुपया रूस का लग रहा है, जिसको १० वर्षों में १२ किश्तों में लौटाया जा सकेगा। इसी प्रकार इन ३४ करोड़ रुपयों को भी १० वर्ष में १२किश्तों में लौटाया जा सकता था। परन्तु रूस के प्रस्ताव पर २॥ वर्षों में निरन्तर केवल विचार ही किया जा रहा है। रूसी न तो कोई रायल्टी चाहते हैं और न वे किसी रहस्य को छिपा कर रखने की नीति में विश्वास रखते हैं।

२॥ वर्ष बीत गये और रूस को इन प्रस्तावों के बारे में कोई भी स्पष्ट उत्तर नहीं दिया गया और उसको किसी भी कारखाने के कायम करने की अनुमति नहीं दी गई है। मर्क के साथ पिछले वर्ष अप्रैल में यह समझौता १० वर्ष के लिए किया गया है। यह समझौता रूस के प्रस्ताव पर पहली भारी चोट है। भारत में जो बिक्री होगी उस पर २॥ प्रतिशत और विदेशों पर होने वाली बिक्री पर ५ प्रतिशत रायल्टी कम्पनी को देनी तय की गई है। मतलब यह है कि विदेशी कम्पनी 'मर्क' को प्रति वर्ष १॥ करोड़ रुपया विदेशी मुद्रा डालर के रूप में मिलता रहेगा। उस पर किसी प्रकार का आय कर नहीं लगेगा। ४५ टन दवा शुरू से ही तैयार की जायेगी।

समझौते में यह भी शामिल है कि पिम्परी में काम करने वाले वैज्ञानिकों तथा दूसरे व्यक्तियों का कोई पता किसी को नहीं दिया जायेगा। निस्सन्देह मर्क कम्पनी डा० गणपति सरीखों को अपनी सेवा के लिए नियुक्त नहीं करेगी। यह कैसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि अनाज और विदेशी दवाइयों के आयात का सारा व्यापार विदेशी कम्पनियों के हाथों में है और वे उससे प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया पैदा कर रही हैं।

अमरीका की विदेशी कम्पनी मर्क के साथ किया गया दस वर्षीय समझौता भारतीय चिकित्सा-प्रणाली के लिए कसा घातक है इस पर फिर से विचार करने की आवश्यकता नहीं है। रूस के प्रस्ताव के अनुसार भी यद्यपि यहाँ अधिकतर विदेशी औषधियाँ ही तैयार की जातीं फिर भी उनके निर्माण में भारत को वैसी हानि नहीं थी। रूस किसी भी बात में पश्चिम का अन्धानुकरण नहीं करता है। बिदेशी दवाइयो के सम्बन्ध में भी उसने यही नीति अपनाई है। अपने प्रस्ताव के अनुसार विदेशी दवाइयों के आयात के भार से वह हमको प्रायः मुक्त कर डालता। अपने यहाँ की आवश्यकता की पूर्ति करने के बाद निश्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप से उन दवाइयों का बहुत-से देशों में निर्यात भी किया जाता। आयुर्वेद के लिए रूसी प्रस्ताव और मर्क कम्पनी के साथ किये गये समझौते का परिणाम प्रायः एक-सा ही होता। आयुर्वेद के लिए दोनों ही घातक सिद्ध हुए होते। रूसी प्रस्ताव से इतना ही लाभ होता है कि प्रारम्भिक स्थिति में ही हम औषधियों के सम्बन्ध में आत्म-निर्भर बन गए होते। विदेशी औषधियों के लिये हमारी मुद्रा का जो प्रवाह विदेशों को हो रहा था वह रुक गया होता। मर्क कम्पनी को करोड़ों का लाभ होगा और वह हमारी उतनी ही बड़ी हानि है।

यह कहानी यहाँ ही समाप्त नहीं हो जाती। भारतीय वैज्ञानिक कर्मचारी संघ की वार्षिक बैठक में भी उसकी गूंज सुनने में आई है। प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने उसका उद्घाटन करते हुए वैज्ञानिक कर्मचारियों को सरकारी काम-काज की आलोचना न करने के लिए चेतावनी दी थी। फिर भी उन्होंने वैसा किया और कई प्रस्ताव उस रूप में पास किये जो नेहरू जी को पसन्द नहीं थे। एक प्रस्ताव में तो यह स्पष्ट कहा गया है कि मर्क कम्पनी के साथ किये गये समझौते को रद्द किया जाय। रूस के सहायता प्रस्ताव से लाभ न उठाने की भी आलोचना की गई है।

आयुर्वेद की दृष्टि से चिकित्सा-प्रणाली में आत्म-निर्भर होने के बारे में कभी कोई विचार किया नहीं गया। भूतपूर्व केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रिणी राजकुमारी अमृत कौर का वश चला होता तो उन्होंने आयुर्वेद को समुद्र के रसातल में सदा के लिए पहुँचा दिया होता। वह प्रायः यह कहा करती थीं कि भारतीय चिकित्सा-प्रणाली सर्वथा अवैज्ञानिक है। इसका उन्हें बहुत बड़ा दुःख था कि स्वास्थ्य का विषय प्रान्तीय सरकारों की अधीनता में है। केन्द्र का उन पर कोई विशेष नियन्त्रण नहीं है। वह अपने पद से हट गई, परन्तु उनके मन्त्रालय की वृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। आयुर्वेद के प्रति शासन की पहले के ही समान उपेक्षा-वृत्ति बनी हुई है।

उदयपुर (राजस्थान) के एक पुराने अनुभवी वैद्य श्री भागीरथजी जोशी की यह शिकायत है कि कांग्रेस में जन-स्वास्थ्य के सम्बन्ध में कभी कोई विचार नहीं किया गया। उनको इस बात का दुःख है कि देश के शासन की जिम्मेवारी अपने हाथों में लेकर भी कांग्रेस ने अपने किसी भी अधिवेशन में आयुर्वेद अथवा जन-स्वास्थ्य के बारे में कभी कोई विचार नहीं किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में आयुर्वेद की उन्नति के लिए एक पैसा भी रखा नहीं गया। दूसरी योजना में ४-५ करोड़ की एक अत्यन्त अल्प धनराशि रखी गई है, जो कि सर्वथा अपर्याप्त है। केरल सरकार ने आयुर्वेद को उन्नत करने के लिए जो विधान स्वीकृत किया है उसको कार्यान्वित किये जाने से केन्द्रीय सरकार ने रोक दिया है। चीन में वहाँ का साम्यवादी दल जहाँ शासन सम्बन्धी रीति-नीति का निर्धारण करता है वहां वह जनता के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सरकारी रीति-नीति का भी निर्णय करता है। उसके निर्णय के अनुसार ही चीन में पुरानी चिकित्सा-प्रणाली को पुनर्जीवित करने का महान् प्रयास किया जा रहा है। हमारे देश में कांग्रेस दल कभी भूल कर की इस सम्बन्ध में विचार नहीं करता।

फिर भी आयुर्वेद जनता के सहयोग और संरक्षण पर जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगा। मुसलमानी काल में उसको यूनानी और अंग्रेजी काल में उसको पश्चिमी चिकित्सा-प्रणाली की भयानक प्रतिद्वन्द्विता करने को बाध्य होना पड़ा है। आज स्वदेशी शासन में हर दिशा में स्वदेशी की जोरदार चर्चा है; किन्तु आयुर्वेद के क्षेत्र में स्वदेशी की भावना से काम न लिया जाना कितना खेद का विषय है। जनता के स्वास्थ्य के साथ किया जानेवाला खिलवाड़ और आयुर्वेद की की जाने वाली घोर उपेक्षा दोनों ऐसे अपराध हैं जो स्वदेशी शासन के लिए भयानक कलंक है।

—सचित्र आयुर्वेद से साभार

सरकारी मान्यता प्राप्त आयुर्वेद विशेष योग्यता पाठ्यक्रम : रिफ्रेशर कोर्स : एवं भिषग्वर कोर्स।

नये सत्र की भर्ती १ जुलाई १९५९ से होगी। मान्य संस्थाओं से उत्तीर्ण व पंजीकृत वैद्य प्रवेश पा सकेंगे। छात्रावास, आतुरालय, पुस्तकालय, रसायनशाला, शवच्छेदन आदि की समुचित व्यवस्था है। योग्य एवं अभावग्रस्त छात्रों को छात्रवृत्ति दी जावेगी। नियमावली प्राप्त करने के लिए ६२ नये पैसे मनीआर्डर द्वारा भेजिए। पता वैद्य मणिराम शर्मा प्रिंसिपल, आयुर्वेद विश्वभारती सरदारशहर : राजस्थान : प्रिंसिपल.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन और मस्तिष्क

आयुर्वेद ग्रन्थ, दर्शन शास्त्र के आधार को लेकर मन को भौतिक पदार्थ मानते हैं अर्थात् शरीर के साथ उत्पन्न होने वाला नाशवान् । तभी तो किसी ग्रन्थकार ने मन का स्वरूप निम्न दिया है :—रजस्तमौति निकृष्ट सत्व गुण बहुलात्मकं परम सूक्ष्मवस्तु । अर्थात् जिसमें निकृष्ट सत्वगुण की बहुलता हो और रज तम के मिश्रण से जो प्रादुर्भूत हो ऐसे परम सूक्ष्म रूप को मन कहा है ।

मन के स्वरूप को दर्शनकार किस तरह से जानते थे ? "संकल्पविकल्पात्मक मनः", अथवा—"मनस्तुचिन्त्यमर्थः" संकल्प विकल्प या चिन्तवन जिसका विषय है उसके इस कार्य से हमें मन का पता लगता है । इस तरह मन के स्वरूप को दर्शन ग्रन्थ और आयुर्वेद दोनों ही स्पष्ट करते हैं । यह मन कितना सूक्ष्म है ? उसका आकार देखा भी जा सकता है, कि नहीं ? इस पर किसी ग्रन्थकार ने कोई प्रकाश नहीं डाला । केवल हम उठते हुए संकल्प, विकल्प को देख कर या शरीर में चिन्तवन की क्रिया को होता पाकर यह मानते हैं कि यह कार्य व्यापार मन का है । किसी बात का हमारे भीतर स्फुरण जब होता है तो हम कहते हैं कि यह बात हमारे मन में उठी । मन में ही अहं-भाव की भावना जाग्रत होती है तो उसे दर्शनकार अहंकार की संज्ञा देते हैं । जब संकल्प विकल्प के ऊहापोह के पश्चात् या चिन्तवन के बाद मन किसी निश्चय पर पहुँच जाता है तो उसे शास्त्रकार बुद्धि संज्ञा देता है । इस तरह से शरीर के अन्दर अदृश्य रूप में कार्य करने वाली इस इन्द्रिय को अन्तःकरण भी कहते हैं । इसीलिये तो पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और मन मिला कर एकादश इन्द्रियाँ मानी गई हैं ।

यह मन शरीर के किस स्थान पर निवास करता है ? इसे शास्त्र बतलाता है :—तद् विशेषेण चेतनास्थानम् । सुश्रुत जी के इस सूत्र पर डल्हण कहता है :—चेतना सह चरितं मनोऽपि विशेषेण हृदयाधिष्ठानम् । अर्थात् हृदय में चेतना के रहने का स्थान है उसी चेतना के साथ मन भी अधिष्ठित रहता है । अर्थात्मन के रहने का स्थान भी हृदय है । मनोवह स्रोतो मूलं हृदयम् । च० । बुद्धिर्निवास हृदयम् । इत्यादि अनेक प्रमाण हैं ।

मस्तिष्क क्या है ? "अब आइये जरा इसके सम्बन्ध में अपना प्राचीन ज्ञान कितना है ? इस पर भी कुछ विचार करें । मस्तिष्क शब्द का उल्लेख हमें वेद में मिलता है—

यथा—मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ।
मस्तिष्कादूर्ध्वाः प्रैरयत् पवमानोऽधिशीर्षतः ।
अथर्ववेद १०।२।२६

अथर्वा ने उस कपाल में विराजमान मस्तिष्क और हृदय को परस्पर(जुड़ा)सिया हुआ कहा है । उस मस्तिष्क से ऊपर वायु रहता है जो उसे प्रेरणा देता है । मस्तिष्क को वायु से किस बात की प्रेरणा मिलती है ? इसकी व्याख्या किसी टीकाकार या ग्रन्थकार ने नहीं की । वेद मन्त्र से इस बात का पता नहीं चलता कि अथर्वा ने जिस मस्तिष्क शब्द की ओर संकेत किया था । इसका अर्थ आगे के विद्वान्जनों पर प्रकट नहीं हुआ । आयुर्वेदज्ञ भी उसके इस अर्थ से परिचित नहीं थे, तभी तो उन्होंने शीर्षमज्जा के लिये मस्तुलुंग शब्द गढ़ा । मस्तुलुंग शब्द का प्रयोग शीर्ष में विद्यमान रहने वाले मस्तिष्क के लिये हुआ है । आयु-र्वेद ग्रंथों में कहीं भी इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि मस्तिष्क का पर्याय मस्तुलुंग है । इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेदज्ञों को अथर्वा के कहे मस्तिष्क शब्द के अर्थ का ठीक पता नहीं था । हां नव्य ग्रंथकारों ने अवश्य अथर्वा के बताये अर्थमें इसका प्रयोग किया । किन्तु–मस्तिष्क की प्रेरणा देने वाला उसके ऊपर कोई वायु रहता है और उसकी प्रेरणा से शरीर का व हृदयादि की गतियां होती हैं । इस ओर अथर्वा का संकेत हो तो कोई आश्चर्य नहीं । पर इसको आदुर्वेदज्ञ नहीं समझ पाये । अथर्वा ने जिस हृदय को मस्तिष्क से सिया हुआ बतलाया है अर्थात् हृदय की क्रिया मस्तिष्क से सम्बन्धित है । इसकी व्याख्या न मिलने से इस शब्द का सही रूप में समाधान नहीं होता । किन्तु आधुनिक प्रयोगवाद से अथर्वा के कथन की कुछ-न-कुछ पुष्टि अवश्य होती है । आयुर्वेद का सम्बन्ध यदि अथर्व वेद से होता तो आयुर्वेदज्ञों को मस्तिष्क का अर्थ अवश्य ज्ञात होना चाहिये था । किन्तु हम देखते हैं कि उन्हें इस शब्द का अर्थ ज्ञात न होने से कपाल की इस पुलपुली चीज के लिये नया शब्द गढ़ना पड़ा । और यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized,by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नया शब्द भी इस बात की कोई सूचना नहीं देता कि उस मस्तुलुंग पर वायु का निवास है और उसे इस वायु से प्रेरणा भी प्राप्त होती है, ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। प्रत्युत शीर्ष मज्जा कहने से तो यह स्पष्ट होता है कि यह अंग निष्क्रिय सा है। जिसके कार्य व्यापार का उल्लेख ग्रंथकार ने नहीं किया। अर्थात् मस्तिष्क सम्बन्धी हमारा प्राचीन ज्ञान कुछ नहीं के बराबर था।

गतियाँ और मन के व्यापार

हम शरीर को जड़ मानते हैं, इसीलिए इस भौतिक शरीर से संलग्न एकादश इन्द्रियाँ भी जड़ हैं अर्थात् इनके क्रिया व्यापार स्वतः नहीं होते, इनको किसी अन्य से प्रेरणा प्राप्त होती है, तब इनके क्रिया व्यापार चलते हैं। किसकी प्रेरणा से इनके क्रिया व्यापार चलते हैं? इसका उत्तर आयुर्वेद देता है कि वायु शरीर रूपी यन्त्र को संचालित करता है। यही मन को भी संकल्प विकल्प या चिन्तवन के लिये प्रेरित करता है। और चिन्तवन के समय उसका नियमन करता है। यही ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियों की अपने अपने कर्म के लिये प्रेरित करता है तभी शरीर के कार्य व्यापार चलते हैं। एक ओर तो वायु को इसमें कारण माना है। दूसरी ओर इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान आदि कहकर आत्मा को भी कारण माना है। प्रयत्न का सम्बन्ध कर्मेन्द्रिय से है और ज्ञान का सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रिय से है। उठाना, धरना, मुँह खोलना, मलमूत्र त्याग यह सब प्रयत्न के अन्दर आते हैं। देखना, सुनना, सूंघना, स्पर्श ज्ञान आदि सब ज्ञान के अन्दर आते हैं। प्रयत्न और ज्ञान यदि आत्मा के लक्षण हैं तो इन्हें वायु की प्रेरणा से होने वाला कहना कहाँ तक उचित है? यदि वायु की प्रेरणा से कर्म, ज्ञान होते हैं तो आत्मा के लक्षण मानने से क्या लाभ? शरीर रूपी यन्त्र जब वायु से चलायमान हो सकता है तो आत्मा की वहाँ उपस्थिति न भी हो तो शरीर के सारे कार्य व्यापार रुकेंगे नहीं। पर, हम देखते हैं कि ग्रन्थकार संदिग्ध रहित न होने के कारण शरीररूपी शकट को चलाने के लिए आत्मा को सारथी बनाकर उस पर बिठा दिया है और वायु की बागडोर उसके हाथ में दे दी है। पर क्या यह सिद्धान्त सही था? उन्नीसवीं शती के नव्य प्रयोगवाद ने इसका प्रतिवाद कर दिया।

शरीर में वातवाही स्रोत नहीं

ग्रन्थकार कहता है :—

वातपित कफादेहे सर्व स्रोतोऽनुसारिणः। चरक

वात्त,पित्त, कफ स्रोत मार्ग से ही शरीर में चलते हैं। स्रोत का अर्थ है वह पोला मार्ग जिसमें से होकर कोई वस्तु बह सके। नाड़ी शब्द भी इसी स्रोत के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। किन्तु वायु संज्ञक कोई भी ऐसी वस्तु शरीर के भीतर बहती हुई नहीं पाई जाती, जिसके कारण शरीर के व्यापार चलते हों। जब शरीर में रक्तवाही धमनी, सिराओं को छोड़ कर, इनसे भिन्न कोई नालियाँ न मिलती हों न जिसमें वायु जैसी कोई अमूर्त वस्तु बहती पाई जाती हो तो ऐसी दशा में किसी वायु जैसे रूप की वस्तु को शरीर में बहा हुआ मानना क्या ठीक है?

जब से मस्तिष्क और उससे सम्बन्धित स्नायु मण्डल का ज्ञान हुआ है प्रयोगों से देखा गया कि यह स्नायु पोली नहीं होतीं प्रत्युत ठोस हैं। और इन स्नायुओं की रचना अनेक स्नायु सूत्रों के मेल से हुई है। इनमें दो प्रकार के सूत्र मिश्रित हैं। एक ज्ञानवाही दूसरे कर्मवाही। और इन्हें प्रेरणा मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न विभागों से मिला करती है। इसी मस्तिष्क की प्रेरणा से शरीर के समस्त क्रिया व्यापार होते हैं। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का सम्बन्ध भी इन्हीं स्नायु सूत्रों से जुड़ा हुआ है। इन स्नायु सूत्रों में कोई वात जैसी वस्तु नहीं रहती। प्रत्युत इनमें उसी तरह ज्ञान और क्रिया के सम्पादनार्थ सम्वेदना या प्रेरणा बहा करती है जैसे शब्दवाही (टेलीफोन) तारों में शब्द। तारों में शब्द का वहन किसी पोले मार्ग से नहीं होता। प्रत्युत वह तार स्वयं शब्द वहन का गुण रखता है इसी से उसमें होकर क्षणों में शब्द बम्बई से कलकत्ते पहुँच जाता है। इसी तरह स्नायु-सूत्रों में ही यह गुण विद्यमान है कि वह संज्ञा व क्रिया की प्राप्त सूचना को सही आदान प्रदान करते रहते हैं जब मस्तिष्क और स्नायु मण्डल का वास्तविक ज्ञान हुआ और मस्तिष्क के स्थान का ठीक ठीक पता लग गया तो मन का स्थान हृदय से खिसक कर मस्तिष्क में आ गया।

मन का मस्तिष्क से सम्बन्ध

मन मस्तिष्क से सम्बन्धित है और उसके क्रिया कलाप का ही एक रूप है इसका पता इसी १९वीं शती में चला। मस्तिष्क की रचना अखरोट के गिरी जैसी बनावट की है। यदि इसे काटें तो इसका ऊपरी स्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूरा तथा अन्दर का स्तर श्वेत दिखाई देता है। समस्त स्तरों की रचना यद्यपि सजीव कोषा तन्तुओं के समूह से हुई है तथापि इन सबों के द्वारा होने वाले कार्य व्यापार बिल्कुल ही एक दूसरे से भिन्न हैं। जिस तरह भारत सरकार के कार्यालय में समस्त भारत के विभिन्न विभागों का एक स्थान पर प्रबन्ध बनाये रखने के लिये इलहदा-इलहदा दफतर बने हुए हैं ठीक इसी तरह इस शरीर रूपी राज्य के प्रत्येक कार्य व्यापारों को चलाने के लिये व उन्हें नियन्त्रण में रखने के लिये सारा काम मस्तिष्क रूपी प्रधान कार्यालय के भिन्न-भिन्न विभागों में बँटे हुए हैं इन विभागों में से एक ऐसा विभाग है जिसमें समस्त मानस क्षेत्र के कार्य व्यापार मन के द्वारा सम्पादित होते रहते हैं। यह विभाग सबसे ऊपर के स्तर पर रहता है।

मन का स्वरूप और उसके कार्यः—जब तक मनुष्य जाग्रतावस्था में रहता है तब तक मस्तिष्क के इस ऊपर के कोषातन्तुओं में विचलन होता रहता है। जैसे किसी टेलीफोन परिवर्तन केन्द्र में कहीं से सूचना आती है कोई नई सूचना मांगता है तो उस केन्द्र में काम करने वाला व्यक्ति उनके सम्बन्ध मिलाता रहता है। ठीक इसी तरह जाग्रतावस्था में समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियां अपने-अपने काम में मस्त रहती हैं। कभी पलक झपकने की सूचना आई होती है कभी मच्छर के काटने के स्थान की सूचना चट मानस क्षेत्र में पहुँचती है और वहाँ से चट आज्ञा होती है मच्छर को मारो। कुछ गर्द गुबार उड़ रहा है, आँख को इससे हानि पहुँचने का भय है इसकी सूचना मानस केन्द्र को मिलती है चट वहाँ से पलक बन्द करने वाले विभाग को सूचना भेजी दी जाती है और आँखें बन्द हो जाती हैं। इस तरह से शरीर में अनेकों व्यापार निरन्तर होते रहते हैं जिसकी सूचना ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा मानस क्षेत्र में पहुँचती है। उस पहुँची हुई सूचना के द्वारा प्रेरणा व ज्ञान के व्यापार चलते रहते हैं। इस कार्य व्यापार के समय उक्त मानस क्षेत्र की कोषातन्तुएं सदा प्रकम्पित या गतिशील बनी रहती हैं। उनकी गति शीलता का उस मानस क्षेत्र में जो रूप हमें भासित होता है वही संकल्प विकल्प के रूप में स्फुटित होता रहता है। जिसके इस क्रिया कलाप का नाम हमने मन रख लिया है। मन वास्तव में कोई स्वतन्त्र या मानस क्षेत्र के सूचना आदान प्रदान व्यापार से भिन्न कोई करण (इन्द्रिय) नहीं है। प्रत्युत दस इन्द्रियों द्वारा देह व्यापि होने वाले कार्य व्यापारों के आदान प्रदान की मध्यवर्ती वह क्रिया है जिससे जीवन का व्यापार चलता रहता है। आज से दस वर्ष पूर्व की बात का स्मरण रखने के लिये मानस क्षेत्र के कुछ स्थान पर स्मृत कोषा तन्तु होते हैं, उनका काम ही यह होता है कि स्मृत कराने पर वह दस वर्ष पूर्व की घटना को मानस पटल पर उसी तरह सामने कर देती हैं। जिस तरह किसी कार्यालय का कार्य कर्ता दस वर्ष पूर्व की मिसिल मांगते ही उस घटना की मिसिल पेश कर देता है। और उस मिसिल को देखते ही वह सारी घटना सामने आ जाती है। ठीक यही बात मानस पटल में तब सामने आती है जब उस घटना का स्मरण कराया जाता है। मन वास्तव में कोई एक स्वतन्त्र इन्द्रिय नहीं है। बल्कि मस्तिष्क के उस ऊपरीय स्तर में जो आदान प्रदान की तरंगें आती जाती रहती हैं उस क्षेत्र के इस कार्य व्यापार को ही मन का नाम दिया गया है।

मन और आत्मा का सम्बन्ध

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान आदि जो लक्षण हमने आत्मा में आरोपित किये हैं। यह सब वास्तव में उस मस्तिष्क क्षेत्र के कार्य व्यापार से भिन्न कोई स्वतन्त्र सत्तात्मक वस्तु नहीं है। इच्छाओं का उत्थान कैसे होता है? हमने हलवाइ की दुकान पर बढ़िया मिठाई बनते देखी, मिठाई को देखकर उसे खाने की इच्छा का जागृत होना आत्मा के होने का लक्षण नहीं है, प्रत्युत मिठाई देखते ही नेत्र ने उसकी सूचना मानस केन्द्र को दी। मिठाई बढ़िया है, या घटिया इसका ऊहापोह मानस क्षेत्र में चला और उसे जांचने का वहाँ से आदेश मिल गया। खाने पर उसके अच्छे, बुरे का फिर अनुभव जिह्वा द्वारा उस मानस क्षेत्र को हुआ। इस क्रिया व्यापार में इच्छा के जाग्रत होने का मार्ग हमारी ज्ञानेन्द्रियां होती हैं। न देखेंगे न इच्छा होगी। देखने पर जो उसकी सूचना मानस केन्द्र में पहुँचती है और उससे जो इच्छा खाने की होती है वह आत्मसत्ता के कारण नहीं होती। प्रत्युत ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियों के पारस्परिक आदान प्रदान की उस क्रिया का वह अन्तिम रूप है जिससे शरीर के जीवन व्यापार को स्थिर रूप में बनाये रखते हैं। इसी तरह द्वेष भी आत्मा का लक्षण नहीं है। प्रत्युत जिस चीज को देखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व स्मृति के आधार पर यह जान लेते हैं कि यह वस्तु शरीर को हानि पहुँचाने वाली है। मानस क्षेत्र की आज्ञाएं उससे शरीर को दूर रखने की आज्ञा देती हैं और हम जहाँ तक हो सके उससे परे रहने का प्रयत्न करते हैं। प्रयत्न तो शरीर की वह क्रियाएं हैं जो क्रिया नियन्त्रक केन्द्र से समस्त शरीर में पहुँचा करती है। प्रयत्न के कार्य व्यापार का संचालन उप मस्तिष्क (धर्माल्लिक) के द्वारा होता रहता है। यह प्रयत्न आत्म सत्ता द्वारा नहीं होता, जो उसका लक्षण माना जाय। ज्ञान भी आत्मा का लक्षण नहीं है। प्रत्युत ज्ञान तो हमें ज्ञानेन्द्रिय मार्ग से तब होता है जब देखी सुनी चीज की सूचना मानस केन्द्र तक पहुँचती है। किसी बाह्य सूचना का मस्तिष्क के क्षेत्र तक पहुँचना ज्ञान कहलाता है। यह ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा पहुँची सूचना को आत्मा का लक्षण कहना युक्ति युक्त नहीं।

जब ज्ञानेन्द्रियां विद्यमान हैं और उनका काम है देखना तो देखते ही जो दृश्य का रूप उसके दृष्टि पटल पर बनता है वह बिना बाधा के जब मानस क्षेत्र में पहुँच जाता है तो इसको पहुँचाने में आत्मा मध्यस्थ का काम करता हो ऐसा देखा नहीं जाता। यदि यह मानलें कि दृश्य वस्तु का ज्ञान आत्म सत्ता से होता है तो फिर इसमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। पर इस समय के चिकित्सक संज्ञा हर औषध का सूचीभरण देकर इसमें बाधा डाल देते हैं। और यदि एक आँख में आई उस दृष्टिक स्नायु तन्तु को छेदन कर दें तो जीवन भर उस आंख से मनुष्य कुछ नहीं देख सकता। जब मनुष्य इन ज्ञान प्रद इन्द्रियों के कार्य व्यापारों को अपने कृत्रिम साधनों से घटा सकता है तो इसे आत्मा का लक्षण मानना बुद्धिमानी की बात नहीं है।

वास्तव में जब मस्तिष्क के वास्तविक रूप का ज्ञान हुआ तो आत्मा (चेतना) भी हृदय से खिसक कर इसके कार्य व्यापार में समा गया मस्तिष्क से भिन्न और कोई स्वतन्त्र आत्म सत्ता होगी इसका प्रायोगिक प्रमाण तो अभी तक उपलब्ध नहीं है। हमें यदि चिकित्सक बनना है और शरीर के अंगों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करना है तो हमें शरीर की रचना और शरीर के अंगों के वास्तविक गुण धर्म को उसी रूप में देखना व समझना चाहिये जिस रूप में उनकी स्थिति हो। कल्पना द्वारा तो तब समझा जाता था जब प्रत्यक्षतया देखने के हमारे पास साधन नहीं थे। अब यदि हम मन को हृदय में माने तो किसी मानसिक रोगी का न तो हम सही निदान कर सकते हैं न चिकित्सा। हृदय में मन को मान कर चिकित्सा करना वैसा ही उपाहासास्पद बात होगी। "दर्द हो पैर में दवा सिर पे लगे।"

हृदय की शल्य क्रिया और आत्मा

ब्रिटेन के हृदय रोग विशेषज्ञ डाक्टरों का एक दल अभी अभी १० मई को रशियन सरकार के निमन्त्रण पर मास्को गया है। उन्होंने उन्हें इसलिये आमन्त्रित किया कि वहाँ पांच बालक ऐसे हैं जिनके या तो हृदय के कपाटों में त्रुटियाँ है या उनमें कहीं रन्ध्र हैं। जिनसे शुद्ध रक्त में अशुद्ध रक्त का मिश्रण हो जाता है। इसके कारण उन बालकों का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

इस दल ने मास्को पहुंच कर एक १२ वर्षीया बालिका के हृदय की शल्य क्रिया की इस बालिका के हृदय कपाटों में छिद्र था। डाक्टर टेनिस मेलरोज द्वारा आविष्कृत हृदय फुप्फुस यन्त्र को धमनी सिराओं के साथ जोड़कर रक्त संचार की क्रिया जारी रखी और हृदय को चीरकर उसके कपाट में बने छिद्र को सी दिया गया। और फिर हृदय को सीकर धमनी सिरा के साथ फिर जोड़ दिया गया। इस शल्य क्रिया में २५ मिनट तक हृदय की गति बन्द रहा। और उसके मध्य से रक्त संचार का सम्बन्ध विछिन्न रहा। यह शल्य क्रिया पूर्णतया सफल रही। इस दल के नेता डा० विलियम क्लीलेण्ड हैं। इसी तरह अगले दिन आपने एक ६ वर्ष की दूसरी लड़की का और तीसरे दिन एक सात वर्ष के बालक के हृदय की शल्य क्रिया की। यह सारे ही शल्य-कर्म सफल रहे। जिस हृदय को शरीर से भिन्न करके उसे २०-२५ मिनट तक इलहदा रखकर उसकी त्रुटियों को दूर किया जाता है। यदि आत्मा हृदय में रहती होती तो हृदय के निकाल लेने पर जीवन का अन्त हो जाना चाहिये था। पर जीवन तो आत्मा नाम की किसी सत्ता से सम्वन्धित नहीं है। प्रत्युत रक्त संचार और मस्तिष्क की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं, इसलिए तो हृदय के निकालने से मृत्यु नहीं होती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वर भेद

आयुर्वेद में ज्वर को प्रधान रोगों में गिना गया है, इसीलिये सबसे पहले निदान ग्रन्थों में इसी का वर्णन आता है। किन्तु आधुनिक अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि ज्वर कोई प्रधान रोग नहीं है। यह तो शरीर में आई हुई किसी अन्य विकृति के कारण उत्पन्न हुआ एक लक्षण मात्र है। विकृतियों के मुख्यतया दो कारण देखे जाते हैं (१) साधारण (२) विशेष।

साधारण कारणों से उत्पन्न होने वाला ज्वर न तो अवधिबन्धी होता है, न अधिक दिन तक रहता है। जैसे प्रतिश्याय होने पर कईयों को कुछ ज्वर हो जाता है जो दो तीन दिन में ही जाता रहता है। अधिक परिश्रम व थकावट से भी ज्वर हो जाता है जो एकाध दिन रहकर अपने आप उतर जाता है। इसी तरह जब कुपथ्य किया जाता है और उदर में विकृति उत्पन्न हो जाती है तब भी अतिसार, वमन, अजीर्ण आदि के साथ कुछ ज्वर भी हो जाता है। इस तरह ज्वर दो चार दिन रहकर जब दोषों का शमन होता है ज्वर अपने आप जाता रहता है। इन ज्वरों को दूर करने का प्रयत्न न भी किया जाय तो दोषों के प्रकृतिस्थ होने पर अर्थात शरीर की व्यवस्था के प्रकृतिस्थ हो जाने पर यह अपने आप जाता रहता है। इन साधारण ज्वरों को उत्पन्न करने में कोई विशेष कारण नहीं होता, इसीलिये यह बिना उपचार के भी ठीक होने में अधिक दिन नहीं लेता। इन ज्वरों में ताप की मात्रा प्रायः १-१—२-२ फारन हाइट से अधिक नहीं बढ़ती। किन्तु जिन ज्वरों में कोई विशेष कारण उपस्थित होता है। वह ज्वर एक तो नियत काल में उतरने चढ़ने वाले होते है दूसरे उनमें से कुछ अवधि बन्धी और कुछ निरवधि भी होते हैं। ऐसे ज्वरों की उत्ताप मात्रा प्रायः १०३-१०४ तथा इससे अधिक तक जा सकती है।

इन दोनों का ज्ञान कैसे हो? जिस दिन किसी व्यक्ति को ज्वर हो जाता है उसी दिन कोई भी चिकित्सक निश्चित रूप से यह नहीं बता सकता कि यह कौन सा ज्वर है। किन्तु ३-४ दिन व्यतीत होने पर ज्वर साधारण हुआ तो वह अपने आप ही दूर हो जाता है और दूर न हो तो फिर लक्षण स्फुट होने लगते हैं।

जिन चिकित्सकों के पास रक्त श्लेष्म आदि की सूक्ष्म परीक्षा के साधन विद्यमान होते हैं वह तो आरम्भ में प्रयत्न करते है तो ज्वरों के विशेष कारण को ढूंढ लेते हैं किन्तु साधारण कारणों का उन्हें भी पता नहीं लगता, क्योंकि परोक्ष यन्त्र केवल विशेष कारण को ही ढूंढने में समर्थ होते हैं। कुछ विशेष कारण वीरसाणु (वाइरस) प्रकार के ऐसे भी होते हैं जिन्हें जानने समझने में इतने सूक्ष्म साधन प्रयोग में लाये जाते हैं जिनका उपयोग समस्त चिकित्सक नहीं कर सकते। यह साधन बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं में ही काम आते हैं इसलिये किसी व्यक्ति को ज्वर होने पर इनका उपयोग हो ही नहीं सकता। तब किसी को ज्वर होने पर किस तरह जाना जाय कि यह कौन सा ज्वर है? 'रोग मादौ परीक्षेत' ज्वर होने पर उसको जानने का प्रयत्न परीक्षा विधि से सब करते हैं, किन्तु ज्वरों के सम्बन्ध में हमारा अनुभव है कि बड़े से बड़े चिकित्सक भी इसे ५-६ दिन जब तक व्यतीत न हो लें और लक्षण परिस्फुट न हों, तब तक जानना कठिन होता है। कुछ ज्वर अवश्य ऋतुओं के बदलने के समय प्रायः देखे जाते हैं जैसे ग्रीष्म काल के आरम्भ में मन्थर ज्वर, वर्षा काल के अन्त में विषम ज्वर।

जब चिकित्सक अनेक ज्वरी रोगियों को एक ही ज्वर से ग्रसित पाता है और उनके लक्षण जब परस्पर मिला करते हैं तो अनुमान कर लिया जाता है कि यह ज्वर भी वही है जो अन्यों को है। किन्तु इस अनुमान का आधार कोई प्रायोगिक नहीं होता। चिकित्सक तो यह देखकर मान लेता है कि यदि अनेकों में विषमज्वर फैला हुआ है तो यह भी विषम ज्वर होगा। ऐसा निर्णय कई बार ठीक भी हो सकता है कई बार गलत भी। इसे तो ज्वर के कारण को ठीक तौर पर समझना नहीं माना जा सकता। तब ज्वर के विभेद और उसके कारण को कैसे जाना जाय? समस्त चिकित्सकों के लिए यह समस्या इतनी जटिल रही है जिसका हल पाना आसान नहीं। फ़िर भी पूर्व की अपेक्षा अब साधन अधिक उपलब्ध हैं, इसलिये ज्वर के विभेद को पूर्वापेक्षा आसानी से समझा जा सकता है और वह साधन हैं आधुनिक यन्त्र। जो व्यक्ति सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों का उपयोग करना जानते हैं, वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्वर के कारण को उक्त साधन से शीघ्र जान लेते हैं। क्योंकि साधारण ज्वरों में किसी भी औपसर्गिक कारण का सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये रक्त, मल, श्लेष्म आदि जैव रहित देखे जाते हैं। जैवों की विद्यमानता इस बात की सूचक है कि यह विशेष प्रकार का औपसर्गिक ज्वर है। क्योंकि उपसर्ग या रोग का कारण बाहर से संक्रमित होता है। इसमें न तो कोई ऋतु परिवर्तन का प्रभाव होता है, न खान पान की विकृति का, न दोषों का ही प्रकोप होता है। विषमी जीवाणु वाहक मच्छर जब किसी व्यक्ति को काट लेता है और यह जीवाणु रुधिराणुओं के भीतर प्रवेश करके बढ़ने लगते हैं तो इनके उपसर्ग प्रभाव से विषम ज्वर के आवेग आने लगते हैं।

जिस तरह बाहर से आकर कोई अचानक आक्रमण कर मनुष्य को घायल कर देता है, ठीक इसी तरह यह जीवाणु कीटाणु भी बाहर से शरीर में घुसकर जब शरीर में अपना घर बना लेते हैं और घर वालों को मारने और उन्हें खाने लगते हैं उसी दशा में उन आक्रामक जीवाणुओं, कीटाणुओं के द्वारा उत्पन्न हुए विष जब शरीर व्यापि हो जाता है तो उनसे ज्वर आदि अनेक लक्षणों का प्रादुर्भाव होता है। यही विशेष कारण से प्रादुर्भूत हुए ज्वर मानव प्राणी का जितना भयंकर संहार करते हैं, इतने साधारण ज्वर नहीं करते।

ज्वरों के भेद को समझने के लिए हमें अब आयुर्वेद वर्णित भूल भुलैयां के मार्ग से नहीं चलना चाहिये। जीवाणु कीटाणुवाद अब कोई केवल वाद नहीं रह गया है प्रत्युत यह सिद्ध होने के कारण सिद्धान्त रूप में सर्वत्र माना जाता है। इसीलिये हमें ज्वर को समझने के लिये इसे प्रधानत्व न देकर इस दृष्टि से देखना चाहिये कि यह ज्वर साधारण है या विशेष। यदि ज्वर विशेष है, तो इसमें उपसर्ग किस जाति के जैवों का हुआ है? इसका निश्चय करना चाहिये। जब कारण का निश्चय हो जाता है तो चिकित्सा सुलभ बन जाती है फिर तो इतना जानना आवश्यक रहता है कि अमुक उपसर्ग के लिये प्रभावकारी औषध कौनसी है? और उस औषधि के उपयोग से रोगी को उस कष्ट से जल्दी बचाया जा सकता है।

हमारा अनुभव है कि आज से दस वर्ष पूर्व जितने अधिक केस फुप्फुस प्रदाह के होते थे उसकी अपेक्षा अब आधे भी नहीं देखे जाते। और जितनी अधिक मृत्यु संख्या आज से २० वर्ष पूर्व इस फुप्फुस प्रदाह (न्यूमोनियां) से होती थीं अब उसकी संख्या घट कर २-३ प्रतिशत से अधिक नहीं रह गई है। कारण यही है कि अब इसके निवारण की अमोघ औषधियां आविष्कृत हो चुकी हैं। जहां इस ज्वर के होने का ज्ञान हुआ कि उक्त औषधियों का प्रयोग आरम्भ कर देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि रोगी सन्निपातिक स्थिति की ओर न जाकर स्वस्थता लाभ करने लगता है।

सन्निपात तो अब कहानी की चीज हैं।

इस समय सारे भारत में सरकार की ओर से विषम ज्वर निरोध के लिये मच्छर मारने का जो आज तीन वर्ष से अभियान जारी है उसका परिणाम कुछ क्षेत्रों में बहुत ही अच्छा दिखाई दिया है। विषम ज्वर का इस पिछले वर्ष उन क्षेत्रों में इतना कम प्रकोप रह गया है कि विरल व्यक्ति ही विषम ज्वर से पीड़ित देखे गये हैं। यदि विषम ज्वर जीवाणुओं के वाहक मच्छर न हों और पित्त दोष इसके प्रकोप में कारण हो तो विषम ज्वर घटना नहीं चाहिए। पर हम सरकारी निरीक्षण परीक्षण के आंकड़ों से जब घटा हुआ पाते हैं तो ऐसी दशा में हम अपने ग्रन्थ में दिये उक्त सिद्धान्त पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? १९४३ में पेन्सिलीन का आविष्कार हुआ। उस वर्ष यह २९ पौंड बनाई गई थीं जो अधिकतर परीक्षा के रूप में हजारों डाक्टरों के द्वारा व्यवहार में लाई गई। इससे पूर्व फुप्फुस प्रदाह की कोई भी अनुभूत औषध किसी भी चिकित्सा पद्धति में नहीं थी। यह कितनी प्रभावशाली औषध है इसी से अन्दाजा लगायें कि सारे संसार में १९५८ में ७५० टन, इस औषध का उत्पादन हुआ। इस समय जितनी भी प्रति जैवोद्भवी (एण्टी बायोटिक) औषधियां संसार में तैयार होती हैं उन सब के बराबर यह अकेली निर्मित होती है। इसी के प्रभाव से फुप्फुस प्रदाह संसार के समस्त क्षेत्र से इतना घट गया है कि अन्दाजन इससे होने वाली मृत्यु संख्या २ प्रतिशत से भी न्यून रह गई है।

हम उन स्थानों की बात नहीं करते, जहां अभी यह औषध कठिनता से पहुंचती है जैसे सुदूर जंगल के ग्राम

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या तिब्बत जैसे देश। हम तो संसार में बसी घनी आबादी के शहरों की बात करते हैं जहां आज से ३० वर्ष पूर्व फुफ्फुस प्रदाह के ५० प्रतिशत से अधिक रोगी मर जाया करते थे।

प्राय: सन्निपात अर्थात शीघ्र मरने की दशा तीन चार ही औपसर्गिक ज्वरों में प्राय: देखी जाती थी (१) फुफ्फुस प्रदाह (२) प्लेग (३) मन्थर ज्वर (४) डेंगू (५) प्रसूता ज्वर। इन्हीं ज्वरों में जब फुफ्फुस प्रदाही कीटाणुओं का उपसर्ग हो जाता था तभी १३ या १८ प्रकार के सन्निपातिक लक्षणों में कोई लक्षण प्रादुर्भूत हो जाया करते थे। जिन लक्षणों की उस ज्वर में प्रधानता होती थी उसको उसी प्रधान लक्षण के नाम से सम्बोधित करते थे। किन्तु अब आकर जब इन सबों का लोप हो गया। अर्थात् ज्वरों का कारण उपसर्ग जब सामने आ गये तो इन सन्निपातों का नाम केवल पुस्तकों के पन्नों में अवशेष रह गया। और जब से पेन्सिलीन का आविष्कार हुआ तब से सन्निपात एक कहानी की चीज रह गई है।

हमारे कुछ वैद्य आज भी पेन्सिलीन की हानियों का और उसकी बुराइयों का प्रचार करने में संलग्न है। हमारे द्वारा की गई पेन्सिलीन की बुराइयां उसके प्रभाव को नहीं घटा सकती। यदि वैद्य इसका प्रयोग नहीं करते तो इसका अर्थ यह नहीं है कि संसार उनके पीछे लग जायगा। १५ वर्ष में जिस औषध की उपयोगिता इतनी बढ़ी कि सैंकड़ों टन (१ टन २७½ मन) बनने लगी। यह उसकी उपयोगिता की ही सूचक है। तभी तो भारत सरकार ने भी पिंपरी में इसे बनाने का कारखना खोला। जहां आज टनों की मात्रा में तैयार की जाती है।

पेन्सिलीन भी दुर्गुण से खाली नहीं—पेन्सिलीन के प्रयोग से सैंकड़ों व्यक्ति मर भी गये हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने आंकड़े एकत्र कर बतलाया है कि पांच हजार व्यक्ति पीछे एक आध को यह हानि भी करती है। यदि पांच हजार पीछे एक व्यक्ति पर बुरा प्रभाव होने से और उसके प्रभाव से मर जाने पर ४९९९ व्यक्ति इसको त्याग देंगे, ऐसी आशा करना वृथा है।

नई औषधियों ने भी निदानमें सहायता पहुँचाई

हम एक ऐसे रोगी को देखने के लिये गए जिसे दो दिन से मध्यान्ह के बाद १०२ फा० तक ज्वर हो जाता था, प्रभात को १०० तक रहता था। डाक्टर ने देखकर उसका कोई नाम निश्चित नहीं किया। तीसरे दिन जिह्वा पर श्वेत वर्ण की मैल फैली दिखाई दी। उसे देखकर मेरा यह मत था कि इसे मन्थर ज्वर है। डाक्टर ने उस दिन फुफ्फुस परीक्षा कर बताया कि एक फुफ्फुस के कार्य व्यापार में भी बाधा है। इसीलिये उसने पेन्सिलीन के सूची भरण देने आरम्भ किए। हमने डाक्टर को कहा इसे मन्थर की प्रति जैवोद्भवी औषध साथ दें। उसने मेरी बात मान ली, दोनों दवाइयां एक साथ जब दी जाने लगीं। ६ वें दिन ज्वर उतर आया। यदि व्याधि कोई और होती और औषध कोई और दी जाती तो रोगी को लाभ नहीं हो सकता था। किन्तु इस रोगी में दो प्रकार के एक ही साथ कीटाणुओं का उपसर्ग हो गया था। इसलिए दोनों उपसर्गों को रोकने वाली औषधियां जब आयोजित की गई तो उन्होंने उन कीटाणुओं की वृद्धि को रोक दिया। इसी से रोग का ज्ञान हो गया। इन औषधियों के उपयोग ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि जो निदान किया गया था वह ठीक था। यदि औषध का प्रभाव निश्चित हो तो इससे भी रोग को समझने में सहायता मिला करती है। आयुर्वेदज्ञ तो इसी चिकित्सा-साफल्य के प्रभाव से अपनी निदान सम्बन्धी दुर्बलता को न जाने कब से छिपाते चले आ रहे हैं। किन्तु अब समय बदल गया है ऐसा करते रहने से आयुर्वेद कभी समुन्नत नहीं हो सकता। हमें तो इस समय के हो रहे अनुसन्धानों से पूरी तरह जानकार रहना चाहिये। और निदान के लिए जितने भी नए साधन आविष्कृत हों उनसे पूर्ण परिचित होना चाहिये।

अब हमें ज्वरों को किस रूप में देखना चाहिए

ज्वर—किसी भी बाह्य या आन्तरिक कारण से शरीर का स्थिर उत्ताप एकाएक बढ़ जाता है तब उसे ज्वर संज्ञा देते हैं। शरीर का उत्ताप ९८½ सदा रहता है इसकी अब व्याख्यान करने की जरूरत नहीं। हम आयुर्वेदज्ञ सदा स्थिर रहने वाले इस उत्ताप को सही रूप में नहीं जानते थे। उत्ताप की उत्पत्ति सदा ही भुक्त द्रव्यों के द्वारा समस्त शरीर में निरन्तर होती रहती है।

[शेष पृष्ठ १०३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी में भेद तथा मण्डूकपर्णी पर विदेशों में अनुसन्धान

मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी यह दोनों वनस्पतियां नई नहीं प्रत्युत प्राचीन हैं। और इन दोनों का विभेद आज का किया हुआ नहीं है, प्रत्युत जिन आचार्यों ने इन दोनों का आविष्कार किया था उन्होंने ही इनके विभेद को जान कर उनके गुण धर्मों की परीक्षा ली थी और दोनों का जुदा जुदा बर्णन किया था। किन्तु बाद के अनभिज्ञ लेखकों ने इन वनस्पतियों के सूक्ष्म विभेद को समझे बिना दोनों का घपला कर दिया, कि आज तक के चिकित्सक इन दोनों को भिन्न करने में समर्थ नहीं हो रहे। हम इनके विभेद पर इस लेख में कुछ प्रकाश डालेंगे क्योंकि अब विदेशों में वनस्पति विशेषज्ञ इन पर अनुसन्धान कर रहे हैं। और इनके गुणों का विशेष रूप से लाभ सामने आया है।

आयुर्वेदज्ञों की नामावली

मण्डूकपर्णी के नाम—

इसके शास्त्रों में निम्नलिखित पर्याय नाम मिलते हैं:—ब्रह्ममाण्डूकी, भेकपर्णी, भेकी, मूलपर्णी मण्डूकी, त्वाष्ट्री, दिव्या, महोषधी।

आयुर्वेद में वनस्पतियों के नाम या तो उनके आकृति के आधार पर रखे गये थे या उनके किसी गुण धर्म को देखकर उसके आधार पर रखे गये थे। माण्डूकी, भेकपर्णी आदि नाम पत्तों की आकृति पर रखे गये थे। जब मेंढक सिकुड़ कर बैठता है, तो इस वनस्पति के पत्तों की आकृति उस मेंढक के आकार में दिखाई देती है। और इसका पत्ता गांठों के मूल से ही एक दण्ड में ऊपर उठता और उन गांठों में से जड़ें निकल कर भूमि में चली जाती हैं इसीसे इसका नाम मूलपर्णी भी दिया गया।

ब्राह्मी के नाम

इसके शास्त्रकारों ने निम्न नाम दिये हैं—वयस्था, सोमवल्लरी, सुरसा, ब्रह्मचारिणी, सरस्वती, सौम्या, सुरश्रेष्ठा, कपोतवङ्का, कपोतवेगा, वैधात्री, दिव्य तेजा, स्वायम्भवी, सौम्यलता, सुरेष्टा, वीरा, भारती, वरा, परमेष्ठिनी, शारदा।

इन नामों में से सोमवल्लरी, सौमलता इन दो नामों से इस बात का संकेत मिलता है कि यह लतावत् फैलती हैं। अर्थात यह प्रसरणशील वनस्पति है। स्वायम्भवी नाम से इतना ही पता लगता है कि यह अपने आप प्रति-वर्ष उग आती है। इसकी आकृति कैसी होती है नामों से इसका ज्ञान नहीं होता।

वास्तव में हमारे शास्त्रकारों ने वनस्पतियों को पहचानने और उनके वंश, कुल, जाति आदि को मालूम करने की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया था। किन बनस्पतियों का किस रचना साम्य से कुल, जाति जानी जाती है? इस रहस्य को आयुर्वेदज्ञ नहीं पा सके थे। न इसको जानने की ओर उनका ध्यान ही गया था। इसीलिए हम वनस्पतियों की कुल, जाति आदि के अनुसार इनका विभाजन नहीं कर सके। इसी त्रुटि के कारण हम अपनी प्राचीन वनस्पतियों को पहचानने में समर्थ नहीं हो सकते।

आधुनिक वनस्पति विशेषज्ञ इसमें कैसे सफल हुए?

जिस तरह तीक्ष्ण दन्ती, पार्शव दन्ती, चवर्ण दन्ती आदि दांतों की रचना को देख कर चूहा, गिलहरी, खर्गोश आदि को एक श्रेणी में। कुत्ता, भेड़िया, शृंगाल, आदि पार्श्व दन्तियों को दूसरी श्रेणी में तथा गौ, भैंस आदि को जुगाली करने वाले तीसरी श्रेणी में रखा। इसी तरह वनस्पतियोंके पुष्पों की आकृति उनके डिम्ब परागों के स्थान तथा बीजों की आकृति आदि कुछ ऐसी बातें बनस्पतियों में पाई गईं जिनसे उनके कुल, वंश, व जाति का ठीक २ पता लगता था। बनस्पति विशेषज्ञों ने इनके द्वारा उनके विभेदों को देखा कि कटेली छोटी, बड़ी कटेली, बैंगन, टमाटर, आलू, देसी असगन्ध, पनीर डोडी, काकनज, रसभरी, लालमिर्च आदि क्षुपों के फूलों को देखा जाय तो इन सबों के फूल चहे छोटे बड़े हों किन्तु उनकी पंखड़ियों की रचना फूल की आकृति, पराग केसर, बीज कोष का स्थान तथा डिम्ब का रूप बीज की बनावट सबों में एक सी रचना मिलती है, और उनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यमान अंकुर व दल की आकृति भी एक सी मिलती है। वनस्पतियों में पुष्प, बीज, पत्र-रचना आदि की समता से सिद्ध होता है कि किसी युग में यह बनस्पतियां किसी एक ही कुल से निकल कर आई हैं। देश काल, परिस्थिति प्रभाव से यह बाह्य रूप में अवश्य एक दूसरे से भिन्न दिखाई देती हैं किन्तु इनमें जो सन्तति क्रम का विधान है वह ऐसा है जिसके आधार पर इनके कुल वंश का ज्ञान आसानी से किया जा सकता है। इन्हीं बनस्पति विशेषज्ञों ने इस पिछली शताब्दी से इस ओर प्रयत्न आरम्भ किया। इस प्रयत्न के फलस्वरूप उन्होंने कोई १॥ लाख वनस्पतियों के कुल, वंशों को ढूंढ निकाला। इनकी खोजों से मण्डूकपर्णी तो शतपुष्पा कुल (N.O. umbelliberae) की वनस्पतियों में से निकली। और ब्रह्मी अपने (N. O. Scrophularineae) ब्राह्मी कुल से निकली। जब इन दोनों का कुल भिन्न है तो इन दोनों की पुष्प रचना, बीज आकृति आदि सभी एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं। बाह्य रचना में चाहे साम्य हो, किन्तु इनकी अन्तर रचना अवश्य एक दूसरे से भिन्न है।

मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी में क्या अन्तर है

यद्यपि यह दोनों ही बनस्पतियां हिमालय की तराई और पहाड़ी नालों में ४ हजार फुट की ऊंचाई तक पाई जाती है। और दोनों ही साथ ही साथ होते हैं। तथापि इन दोनों की रचना में निम्न अन्तर है।

दोनों ही जमीन पर पानी के किनारे प्रसरण शील लता सी हैं अर्थात दो फुट तक आस पास फैल जाती हैं। पत्ते दोनों के वृक्काकृति होते हैं किन्तु मण्डूकपर्णी के पत्ते ब्राह्मी के पत्ते से बड़े तथा दण्डी उनकी लम्बी और पत्ते ऊपर उठकर द्रोणवत ऐसा रूप बनाये होते हैं कि यदि पत्ते को उलट कर देखें तो वह मण्डूक वत् उसकी आकृति बन जाती है। ब्राह्मी का पत्ता मण्डूकपर्णी से छोटा होता है। यह डण्डी के साथ ऊपर उठ कर खड़ा नहीं होता। इसका पत्रदण्ड मण्डूकी से छोटा होता है और यह पत्ता भी जमीन पर बिछा हुआ होता है। दूसरे सबसे बड़ा इन दोनों में यह अन्तर होता है कि मण्डूकी की प्रत्येक गांठ पर से एक ही पत्ता निकलता है। जिस पत्ते में सात सिरायें सीधी होती हैं। किन्तु ब्राह्मी की सिरायें टेढ़ी मेढी होती हैं और प्रत्येक शाखा पर एक ही पत्ता नहीं होता प्रत्युत उसकी शाखा पर ५ से ७ तक पत्र आगे पीछे फैले व बिछे होते है।

मण्डूकी का पत्ता खुरदरा होता हैं ब्राह्मी का पत्ता चिकना होता है। मण्डूकी के पत्ते का किनारा दांतेदार आरीवत होता है ब्राह्मी का पत्ता बिना दांते का साफ होता है। मण्डूकी के फूलों के गुच्छे छोटे छोटे नीलाभ श्वेत होते हैं। दूसरे पत्ती को तोड़कर मलें और सूघें तो उसमें से किंचित् सुगन्ध आती है ब्राह्मी के पत्ते में कोई सुगन्धी नहीं होती। मण्डूकी में फूल वसन्त ऋतु में आते हैं और बीज गर्मियों में पकते हैं जो एक ही गुच्छे में २ से ७ तक बीज होते हैं। ब्राह्मी का फूल व तुरी भिन्न भिन्न तथा छोटा फूल गुच्छे में नहीं लगता। बीज भी डोडी के भीतर होते हैं। जो फांकदार होते हैं। इसके फूल का वर्ण नीलाभललाई दार होता है। इन दोनों के प्रान्तिक नामों में भी भेद है मण्डूकपर्णी को हिन्दी में खुलखुड़ी (बंगला में) थुलखुड़ी, महाराष्ट्री में करिवणा, ब्राह्मी को हिन्दी में ब्रह्मी श्वेतचमनी बंगला में ब्राह्मीगाछ, अघवर्णी, महाराष्ट्री में ब्राह्मी जब प्रान्तों के निवासी दोनों बनस्पतियों के विभेद को जानते थे और उनको जानकर उनका विभेद किया गया है इतना होते हुए भी वैद्य समाज ने इन दोनों के भेद को न जान कर दोनों को एक बना दिया यह कितने परिताप की बात है।

मण्डूकपर्णी व ब्राह्मी पर नव अनुसंधान

आजकल तो नव्य अनुसन्धान से इस बात को मालूम कर लेते हैं कि इस बनस्पति में कौन कौन से पदार्थ विद्यमान हैं। क्योंकि आधुनिक समय की विश्लेषण विधि इतनी उत्तम और सही होती है कि प्रत्येक बनस्पति के अंग में विद्यमान पदार्थों को विश्लेषण न कर उसके प्रभाव कारी या गुणदायी भाग को भिन्न करके अच्छी तरह से उसकी परीक्षा भी ले सकते हैं और प्रयत्न करके उसकी रासायनिक गठन को भी मालूम कर लेते हैं। वैद्य समाज को इन विषयों का पूर्ण ज्ञाता बनना चाहिये। जभी आयुर्वेद का मस्तक ऊंचा उठ सकता है। किन्तु हम सब कुछ सीखते नहीं विदेशों में जब भारतीय बतस्पतियों पर अनुसन्धान होते हैं और वे इसके गुण धर्म को समझ कर इससे लाभ उठाने लगते हैं और उसे अलोपैथी में

[शेष पृष्ठ १०३ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृदय-रोग के निदान की नई अचूक विधि

अमरीका के अनुभवी और कुशल डाक्टर तथा वैज्ञानिक भयंकर रोगों से मानव जीवन की रक्षा करने के लिए निरन्तर अनुसन्धान कर रहे हैं। विभिन्न स्थानों, परीक्षणशालाओं और अस्पतालों में वे साहस और दृढ़ निश्चय के साथ अपने महान पुनीत कार्य में संलग्न है। मेरीलैण्ड राज्य (अमरीका) स्थित 'बेथेस्डा' भी एक ऐसा ही स्थान है। इस स्थान पर स्थित सात संस्थाओं, एक चिकित्सा और औषधि अनुसन्धान-केन्द्र तथा एक अस्पताल में अमरीका के राष्ट्रीय संस्थान के अनुभवी और कुशल डाक्टर एवं वैज्ञानिक विभिन्न रोगों और उनको दूर करने के तरीकों और उपायों के सम्बन्ध में व्यापक अनुसन्धान कर रहे हैं। कभी-कभी उनके अनुसन्धान और खोज का समाचार बड़ी-बड़ी सुर्खियों से अखबारों में अवश्य छप जाता है। लेकिन बहुधा उनकी सफलताओं का उल्लेख केवल चिकित्सा-विज्ञान की पत्रिकाओं और रिपोर्टों में ही पढ़ने को मिलता है।

इस संस्थान के विशेषज्ञ अपने-अपने क्षेत्रों में नई-नई खोजें कर रहे हैं और रोगों की चिकित्सा की नवीन और प्रभावशाली विधियों की खोज कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, उक्त संस्थान के हृदय-रोगों के सम्बन्ध में खोज करने वाले विभाग को ले लीजिए इस विभाग में कार्य करने वाले वैज्ञानिक हृदय-रोग से सम्बन्धित ऐसे महत्वपूर्ण खोज कार्य में संलग्न हैं कि यदि उनके प्रयत्न सफल हुए तो विकृत और दोषपूर्ण हृदय से पीड़ित हजारों बालकों के जीवन को अधिक आशापूर्ण बनाया जा सकेगा।

हृदय में सूराखों की जांच

इन विशेषज्ञों ने परीक्षण और अनुसन्धान द्वारा हृदय के रोगों और खराबियों का पता लगाने के लिए अणु-शक्ति की सहायता से एक नई विधि खोज निकाली है। एक बोतल में ऐसी हानिरहित गैस भर ली जाती है जो रेडियोसक्रिय होती है, इस के उपरान्त हृदय के भीतरी भागों के रक्त के नमूनों का संग्रह कर उनमें विद्यमान रेडियो सक्रियता की जांच की जाती है। इस जांच से यह पता लगा लिया जाता है कि हृदय के किस भाग में सूराख या खराबी जन्मजात है, अथवा बाद में पैदा हुई है। इस प्रकार की जांच-पड़ताल बिना आपरेशन किए ही की जाती है।

यद्यपि ऐसी कृत्रिम मशीन का निर्माण डाक्टरों ने कर लिया है जो हृदय के आपरेशन के समय श्वास की क्रिया जारी रखती है, परन्तु नई विधि से यह पता पहले ही चल जाता है कि कहाँ पर किस प्रकार की खराबी है अतएव आपरेशन करते समय सम्भावित खराबी को दूर करने के लिए पूरी तैयारी कर ली जाती है। अब तक यह विधि बहुत ही सफल और प्रभावशाली सिद्ध हुई है। हृदय की विभिन्न कोठरियों से रक्त का नमूना एकत्र करने के लिए बहुत ही पतले ट्यूब का इस्तेमाल किया जाता है।

नवम्बर १९५७ में 'सरकुलेशन' पत्रिका में इस नई विधि की उपयोगिता के बारे में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। इस रिपोर्ट पर डा० सैण्डर्स के साथ डाक्टर रावर्ट पी० ग्राण्ट एण्ड जी मारी और यूजीन ब्रौनवाल्ड के भी हस्ताक्षर थे।

इसके पूर्व भी हृदय के दाहिनी ओर के रक्त की परीक्षा करने की विधि व्यवहार में आ रही थी। हृदय के दाहिने भाग के रक्त की परीक्षा करने का उद्देश्य इस बात का पता लगाना रहता था कि हृदय के बाएं भाग में शुद्ध होने वाला ताजा और आक्सीजनयुक्त खून दाहिने हिस्से में तो नहीं रिस रहा है। चूँकि शुद्ध रक्त की नाड़ियों में अशुद्ध रक्त की शिराओं की अपेक्षा खून का दबाव बहुत अधिक रहता है, अतः खून का बायीं ओर से दाहिनी ओर को बहना स्वाभाविक ही है।

इस प्रकार के परीक्षण में डाक्टर हाथ या पैर की किसी धमनी और हृदय के दाहिनी भाग से रक्त का नमूना लेकर उनकी परस्पर तुलना करते हैं। यदि हृदय बिलकुल ठीक होता है तो हाथ और पैर की धमनियों में बहने वाले रक्त में हृदय के रक्त की अपेक्षा आक्सीजन की अधिक मात्रा विद्यमान रहती है। हृदय के किसी भाग में छिद्र होने पर हाथ या पैर की धमनी और हृदय के दाहिने भाग में मौजूद रक्त में आक्सीजन गैस की मात्रा लगभग बराबर होगी। लेकिन इधर कुछ समय से डाक्टर लोग इस प्रकार के परीक्षण के शत-प्रतिशत सही होने के बारे में सन्देह करने लगे हैं।

डा० सैण्डर्स ने जो नवीन विधि खोज निकाली है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उक्त विधि से कहीं अधिक सही और सफल सिद्ध हुई है। रोगी को जो गैस सुंघाई जाती है, उसमें १५ प्रतिशत नाइट्रस आक्साइड २१ प्रतिशत औक्सीजन और ६४ प्रतिशत नाइट्रोजन रहता है। रोगी १ मिनट तक वह गैस सूंघता है। इसी अवधि में डाक्टर हृदय के दाहिने भाग और शरीर की किसी धमनी से रक्त का नमूना ले लेते हैं। यदि हृदय से लिये गये खून में तुरन्त नाइट्रस आक्साइड के होने का पता लग जाता है तो डाक्टर यह समझ जाता है कि हृदय के अन्दर या तो कोई सूराख है या रक्त-प्रवाह क्रिया में कहीं कोई अस्वाभाविक गड़बड़ी आ गई है, क्योंकि शिराओं में नाइट्रस औक्साइड पहुँचने में कुछ समय लगना चाहिए।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान के डाक्टरों ने इस विधि का परीक्षण २०० से अधिक रोगियों पर किया। इनमें से अधिकांश परीक्षण पहले से अधिक सफल सिद्ध हुए। सहसा डाक्टरों के दिमाग में यह विचार सूझा कि क्यों न नाइट्रस औक्वसाइड के स्थान पर रेडियोसक्रिय गैस का इस्तेमाल किया जाए। उनका यह नवीनतम परीक्षण पूरी तरह सफल रहा। रेडियोसक्रिय गैस क्रिपटोन ८५ और गाइगर यन्त्र की सहायता से वे अपने प्रश्न का उत्तर एक मिनट में पाने लगे। इस गैस से निकलने वाला विकिरण मानव शरीर को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाता। (हिन्दुस्तान से)

[शेष पृष्ठ ९९ का]

जिनको नियन्त्रण में रखने का काम मस्तिष्क में विराजमान आज्ञाकन्द (थैलेमस) के एक भाग द्वारा सदा होता रहता है। यदि शरीर में उत्ताप बढ़ रहा हो तो उक्त आज्ञाकन्द का भाग फुफ्फुस त्वचा की गतियों में परिवर्तन कर वाष्प, प्रस्वेद आदि मार्ग से उस गर्मी को बाहर निकाल देता है। यदि शरीर का उत्ताप घट रहा हो तो मांसपेशियों को उत्तेजित कर, उन्हें प्रकम्पन का आदेश मिलता है इससे उत्ताप संजनन होकर शरीर का ताप स्थिर रूप में आ जाता है। या त्वचा रन्ध्रों को संकुचित करने का आदेश मिलता है इससे शरीर की गर्मी बाहर जाने से रुक जाती है। हम सबों को इस बात का बिल्कुल ज्ञान नहीं था कि शरीर में ताप नियन्त्रण के लिये भी कहीं कोई व्यवस्था होगी।

इस नियन्त्रक अंग की व्यवस्था में तभी अन्तर आता है जब कोई औपसर्गिक जन्य विषों का प्रसार रक्त में हो रहा हो। उस विष प्रभाव से जब आज्ञाकन्द प्रभावित होता है तभी वह अपनी कार्य व्यवस्था को चलाने में असमर्थ हो जाता है। जब आज्ञाकन्द का नियन्त्रण उत्ताप पर नहीं रहता तभी एकाएक शरीर का उत्ताप सीमा से अधिक बढ़ जाता है जिसे हम ज्वर कहते हैं। संतापोत्पत्ति को ही हम ज्वर कहते हैं। यह ज्वर स्वयं तो रोग नहीं प्रत्युत जिन कारणों से होता है। उन्हें ही साधारण और विशेष रूप से समझने की चेष्टा की जाती है।

[शेष पृष्ठ १०१ का]

मिला लेते हैं। तब हमारी सरकार भी टका सा जवाब दे देती है कि वैद्य समाज इन वनस्पतियों के उपयोग के अधिकारी नहीं।

अभी अभी कुछ दिनों की बात हैं कि मण्डूकपर्णी और ब्राह्मी दोनों के सेम्पल जम्बू कश्मीर के वनस्पति अनुसंधान कार्यालय की ओर से ब्रिटेन और फ्रांस को भेजे गये थे। वहां के अनुसंधान कर्ताओं ने बताया है कि मण्डूकपर्णी में मण्डूकपर्णीन ((Vellarin) तथा कुछ अन्य भी क्षार समोद (अल्कलाइड) श्रेणी के वलिकेत् विद्यमान है। फ्रान्सीसी वनस्पति विशेषज्ञों ने इन प्रभाव शाली क्षार समोदों का उपयोग करके देखा है उनका कहना है कि इसके क्षारसमोदों का प्रभाव सीधे मस्तिष्क कोषाओं पर होता है। यह मस्तिष्क के भूरे (ग्रे) भाग के ऊपर बड़ा ही उत्तेजक प्रभाव उत्पन्न करता है। इससे मस्तिष्क के मानसिक कोषाओं को काफी स्फूर्ति मिलती है। इन्होंने मण्डूकपर्णी के सम्बन्ध में सूचना दी है कि यह वनस्पति हमें अल्जीरिया से भी काफी मात्रा में प्राप्त होती है किन्तु भारतीय मण्डूकपर्णी में प्रभावकारी अंश की मात्रा उससे अधिक होती है। ब्रिटेन के बनस्पति शास्त्री भी मण्डूकपर्णी के भीतर से कुछ सितसार पक्षीय पदार्थ, राल, निर्यास, कषायिन के अंश विलगाने में सफल हो गये हैं। इस पर अनुसंधान अभी चल ही रहे हैं।

ब्राह्मी में भी एक क्षारसमोद प्रभावकारी द्रव्य ब्राह्मीन विलगाया है जिसका उन्होंने यही नाम रख दिया है।

मण्डूकपर्णी पर अधिक खोज बीन इसलिए हो रही हैं कि इसका उत्तेजक, व बृंहणीय प्रभाव मस्तिष्क पर अधिक देखा गया है। पीयूष ग्रन्थि पर भी इसका उत्तेजक, शक्तिवर्धक प्रभाव जाना गया है। इसलिये यह बनस्पति भी उन लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भू गर्भ के स्तरों की खोज

भूमि के स्तरों की रचना एकाएक नहीं होगई, प्रत्युत इसके वह स्तर जिस पर जीवन का प्रादुर्भाव हुआ था उस पर धीरे धीरे बने, जब पृथ्वी विप्लवकारी वर्षा तूफान और भूकम्पों से घिरी रहती थी उन दिनों ज्वालामुखी के भूउद्गारो की भयंकर झड़ी लगी रहती थी। उन्हीं दिनों विप्लवकारी परिवर्तनों में ही कहीं पृथ्वी मीलों ऊंची उठ गई कहीं मीलों पृथ्वी में गर्त बनगये। जहां पृथ्वी में गर्त बन गये थे उनमें जल भर गया, वह समुद्र में परिणत हो गये। जो भूमि उठकर ऊंची हो गई थी वह पर्वत माला बन गई। इस समय तक समुद्र की जो गहराई नापी गई है वह ७½ मील है। इसी तरह पर्वतों की ऊंचाई भी इसी के लगभग है।

भूमि पर जब से स्तरों का निर्माण हुआ उसका स्थान कहाँ से आरम्भ होता है इसको खोज लिया गया हैं, यह पृथ्वी के अन्तिम स्तरों का छोर अटलान्टिक सागर में प्वेर्टोरीको के उत्तर में है। इस जगह समुद्र के नीचे छिद्र करके यह जानने का प्रयत्न किया जायगा कि स्तरों का क्रम नीचे से लेकर ऊपर तक किस तरह बना है। और इन स्तरो में से सबसे निम्न स्तर में कौन कौन से प्राणी व बनस्पतियां सबसे पूर्व प्रादुर्भूत हुईं, यह पता सही सही लग जायगा।

इस समुद्र की गहराई में छेद करने के लिये चार जहाज प्रयुक्त होंगे। इनमें एक गोर्ब्स नामक सबसे बड़ा नवीनतम उपकरणों से सुसज्जित पानी में छेद करने वाली मशीनों क समुद्र के गर्भ में पहुँचाकर उसमें छेद करके सुरक्षित स्तरों को बाहर निकाला करेगा। भूगर्भ विशारद वैज्ञानिकों का विचार है कि इन स्तरों में प्राप्त शेषाष्मों (फोसील्स) को देख कर इस बात का सही ज्ञान हो जायगा कि आरम्भिक युग के प्राणी कैसे थे।

संसार में प्रत्येक बात की खोज कितनी गहराई से की जा रही है और किस तरह अनुसंधान द्वारा हर एक बात की सच्चाई को ढूंढा जा रहा है। दूसरी ओर हमारे वैद्य समाज की स्थिति यह है कि अपने प्राचीन ज्ञान में कितने अंग उपयोगी और अनुपयोगी है? इसका ही वह निर्णय नहीं कर सकते। जो वनस्पतियां या द्रव्य आ जतक संदिग्ध बने हुए हैं उनका निश्चय तक करने में समर्थ नहीं। ऐसी दशा में आयुर्वेद को सजीव कहना चाहिये या निर्जीव? विदेशों में किस तरह अनुसंधान के कार्य हो रहे हैं? यह बातें जानने योग्य हैं।

क्या गर्मियों में अधिक लवण का सेवन हितकर है?

गर्मी में लू लगने की घटनायें हमारे देश में प्रायः होती रहती हैं। अब तक इसका कारण यह समझा जाता था कि गर्मियों में पसीना अधिक आता है और पसीने में लवण पर्याप्त मात्रा में शरीर से बाहर निकल जाता है। शरीर में लवण की क्षीणता ही लू लगने का कारण है। ऐसा समझ कर प्रतिबन्ध के रूप में गर्मियों में लवण अधिक मात्रा में सेवन करने का सुझाव लोगों को दिया जाता था। सामान्यतः एक युवा व्यक्ति के लिये प्रतिदिन १।—१॥ तोला नमक का प्रयोग पर्याप्त है परन्तु उपरोक्त मन्तव्य के कारण ग्रीष्म ऋतु में हमारी सेना के सिपाहियों के भोजन में १॥ तोला की बजाय ३॥ तोला लवण सम्मिलित किया जाता था।

कुछ समय पूर्व प्रतिरक्षा अनुसन्धान एवं विकास संस्था (Defence Research and Development Organisation) ने इस विषय में अनुसन्धान आरम्भ किये। पर्याप्त अनुसन्धान के अनन्तर संस्था की ओर से अब यह घोषणा की गई है कि आवश्यकता से अधिक लवण के सेवन से कोई लाभ नहीं। वरन इसके विपरीत उससे हानि की सम्भावना अवश्य है क्योंकि लवण के समुचित से अधिक प्रयोग से रक्त चाप में वृद्धि हो जाती है। सूचना मिली है कि अधिकारियों द्वारा शीघ्र ही यह आदेश जारी किया जाने वाला है कि सेना के जवानों को गर्मियों में लवण की जो फालतू मात्रा प्रयोग कराई जाती है उसे बन्द कर दिया जाय।

यह भी सूचना मिली है कि 'वनस्पति घी का हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है' इस सम्बन्ध में भी उक्त अनुसन्धान संस्था अनुसन्धान कर रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वागत समिति

★ ४३ वां अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ★

कार्यालयः—मजुमदार आयुर्वेदिक फार्मेसी, हौजकाजी, दिल्ली।

महानुभव,

इस तथ्य से आप भली भांति परिचित हैं कि किस उमंग तथा उत्साह से दिल्ली के वैद्य समाज ने महासम्मेलन के ४३ वें वार्षिक अधिवेशन को दिल्ली में आमन्त्रित किया और उस को सफल बनाने के लिए हमने क्या क्या प्रयत्न किए, यह समय समय पर इस कार्यालय से भेजे जाने वाले परिपत्रों से आप को ज्ञात होता रहा होगा।

दिल्ली में अधिवेशन का प्रस्ताव करते समय श्री इन्द्रप्रस्थीय वैद्य सभा ने यह आश्वासन दिया था कि यदि वैद्य समाज ने तनिक भी हमारी सहायता की तो चिरकांक्षित विद्यापीठ के विद्यालय की कल्पना को हम मूर्त रूप देने में सफल हो जावेंगे। इस के लिए वैद्य सभा ने दिल्ली के धनाढ्यों से दान के अभिवचन प्राप्त किए। अनेक महानुभावों ने विद्यालय के लिए कमरे, रुग्णालय, चिकित्सालय, छात्रवास आदि निर्माण का वचन दिया।

अधिवेशन को सफल बनाने के लिए स्वागत समिति ने हर सम्भव उपाय किया। महामान्य राष्ट्रपति महोदय से अधिवेशन के उद्घाटन की स्वीकृति प्राप्त की। अनेकों मन्त्री महोदयों ने अधिवेशन को सुशोभित करने का आश्वासन दिया।

अधिवेशन का समय सन्निकट था, उस अवसर पर विद्यालय के उद्घाटन की भी घोषणा होने वाली थी कि ठीक उसी समय बम्बई तथा नागपुर के वैद्य महानुभावों ने न्यायालय की शरण ले कर हमारे कार्य में बाधा उपस्थित कर दी। वज्रपात सदृश उस स्थागनादेश ने हमारी योजनाओं को नष्ट कर दिया। इस का इतना दुष्प्रभाव हुआ कि दिल्ली का जन साधारण एवं केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय आज भी हमें उलाहने देता है और उसके लिए हमें लज्जित होना पड़ रहा है।

महासम्मेलन के कार्य में बाधा उपस्थित करने की यह प्रक्रिया यहां पर ही समाप्त नहीं हुई, प्रत्युत नागपुर और दिल्ली में होने वाली स्थाई समिति तथा कानपुर में कार्यकारिणी समिति के अधिवेशनों को भी इन्होंने न्यायालय के स्थगनादेश से स्थगित करवा दिया।

आयुर्वेद के लिए यह संकट काल है, इस समय हमें संगठित हो कर—स्वार्थ, पदलोलुपता एवं व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं को तिलांजलि देकर—आयुर्वेद के प्रभाव तथा अस्तित्व को चिरस्थाई बनाने के लिए कटिबद्ध होने की आवश्यकता है। आयुर्वेद महासम्मेलन में उत्पन्न गतिरोध को समाप्त कर हमें विधायक कार्य की ओर अग्रसर होना चाहिए।

आज वैद्यों की एक मात्र संस्था आयुर्वेद महासम्मेलन की यह स्थिति है कि न उस का वार्षिक अधिवेशन हो सकता है, न स्थायी-समिति, कार्य-कारिणी-समिति अथवा किसी अन्य समिति की बैठक हो सकती है। मुकदमे बाजी में धन का अपव्यय हो रहा है।

इस स्थिति में हम भारत के वैद्य समाज से प्रार्थना करते हैं कि वह अपने प्रभाव को उपयोग में ला कर सम्मेलन के वर्तमान गत्यवरोध को दूर कर किसी प्रकार भी इस क्षुब्ध एवं अस्वस्थ वातावरण से संस्था को मुक्त करा कर आयुर्वेदोन्नति के पुण्य कार्य में सहयोग के भागी बनें।

दि० ५-५-५९

हम हैं आपके सहयोगाभिलाषी :

स्वागत समिति के सदस्यगण

आयुर्वेद एवं तिब्बी साहित्य के हस्तलिखित ग्रन्थ

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकैडमी, उत्तर प्रदेश, तुलसीदास मार्ग, लखनऊ ने आयुर्वेद एवं तिब्ब साहित्य के उच्च कोटि के हस्तलिखित ग्रन्थों को एकत्र कर उनके प्रकाशनार्थ प्रयास करने का निश्चय किया है। अतएव जिन व्यक्तियों के पास उच्च स्तर के हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हों तथा वे किसी कारणवश उन्हें प्रकाशित करवाने में असमर्थ हों, तो वे इस सम्बन्ध में अपने हस्तलिखित ग्रन्थ अध्यक्ष, आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकैडमी, उत्तर प्रदेश, तुलसीदास मार्ग, लखनऊ के पास भेजकर उनके विक्रय करने के सम्बन्ध में पत्र-व्यवहार कर सकते हैं।

—द० अ० कुलकर्णी, अध्यक्ष

आ० ति० ए०, उ० प्र०, तुलसीदास मार्ग लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के उत्तम ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं उनके संग्रह का प्रयत्न किया है वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १२) मार्ग व्यय भिन्न।

आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर।

अहिफेन मुक्ति दाता वटी

१ अप्रैल से सरकार ने अफीम के ठेके बन्द कर दिये हैं। अफीम खाने के आदी व्यक्तियों को बड़ी मुसीबत का सामना होगा। इस अफीम से बिना कष्ट मुक्ति दिलाने के लिये ही ८-९ वर्ष के अनुसन्धान से यह गोलियां आविष्कृत की हैं। अफीम खाने के समय १-२ या अधिक मात्रा में अफीम खाने वाले तीन गोलियां खालें उन्हें अफीम का अभाव नहीं लगेगा। महीना डेढ़ महीना सेवन के बाद गोलियों की मात्रा कम करते चले जाएं। बस अफीम का ख्याल ही भूल जायगा। मूल्य प्रति तोला २), ५ तोला का ८) रु०।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी ६०--६१ अकालमार्केट, अमृतसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६ आषाढ़ सम्वत २०१६ संख्या ७

जुलाई १९५९

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. प्राणियों को पुनः जीवित करना सम्भव १०५
२. आयु बढ़ाई जा सकती है ? १०७
३. खाद्य द्रव्यों का रासायनिक विधि से निर्माण १०८
४. शरीर पर तापक्रम का प्रभाव और उसका अध्ययन १११
५. पत्थर का जीव ११२
६. संसद में फार्मेसी एमेंडमेंट बिल (लेखक राजवैद्य सुधन्वा, दिल्ली) ... ११३
७. गलगंड रोग का कारण और सरकार की ओर से उसके निवारण का उपाय ११५
८. साहित्य समालोचना ११६
९. मधुमाक्षिकाओं का जहर भी औषध है ११८
१०. १९५८ के नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक १२०

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक—बहलिया प्रिंटिंग प्रेस, दाईवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नही लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिबार की छपाई ४०)
आधा पृष्ठ" १ " " " २४)
चौथाई " १।२ " " " १६)
टाईटिल के पीछे के पृष्ठ की " " ५०)
" तीसरे " की " " ४५)
" चौथे " की " " ६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय बार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

मैनेजर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ६ | आषाढ़ २०१६ वि०, जुलाई १९५९ ई० | अंक ७

मृत प्राणियों को पुनः जीवित करना सम्भव

रूस में एक पुनरुज्जीवन संस्थान नामक संस्था है जिसमें कुछ वैज्ञानिक इन बात का अनुसन्धान कर रहे हैं कि जब प्राणी मर जाता है तो उसे फिर क्या जिलाया भी जा सकता है ?

यह अनुसन्धान आज १०-१२ वर्ष से हो रहे थे, अब आकर उन वैज्ञानिकों को इसमें काफी सफलता मिली है। जीवन विज्ञान के विशेषज्ञ अमेरिका के ब्रिगेडियर जनरल ड्रीन पिलगर और उनके साथी मार्टिन डेकर को जब इस बात का पता चला कि रूसी भी उक्त संस्थान में मृत प्राणियों को जीवित करने में सफल हो गये हैं इस प्रक्रिया को देखने के लिए वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने आकर जो बयान दिया है वह निम्न है :—

सोवियत चिकित्सा शास्त्री डा० बी० ए० नैगोव्सकी जो पुनरुज्जीवन संस्थान के संचालक हैं उन्होंने एक कुत्ते पर यह प्रयोग करके दिखाया। उन्होंने क्या किया, एक कुत्ते के पेट के पास चीरा देकर वहां की धमनी निकाली उस धमनी में सूची भरण वाली सुई चुभो कर उसका खून निकालना आरम्भ किया, उसका इतना खून निकाल लिया कि वह कुत्ता मर गया। उसकी सांस क्रिया बिल्कुल बन्द हो गई, रक्त चाप शून्य पर रह गया, नेत्र की मरणोत्तर ज्योति लुप्त हो गई। मस्तिष्क में जो सदा ही वद्युतिक स्पन्दन उठते रहते हैं वह भी बन्द हो गये। कुत्ता मर कर अकड़ गया, पांच मिनट तक कुत्ता इसी दशा में पड़ा रहा इसके बाद डाक्टर नैगोव्सकी ने नर्स को संकेत किया कि इसकी धमनी में रक्त का संचार करो, उसने फिर उसके शरीर से निकाले उस सुरक्षित रक्त को पुनः उस धमनी के मार्ग से पहुँचाना आरम्भ किया। दूसरी ओर एक नली रबड़ की उसके श्वास प्रणाली के भीतर घुसेड़ी और एक यंत्र से उस नली में इस तरह से वायु का संचालन आरम्भ किया, जैसे प्राणी श्वास प्रश्वास में वायु को लेते और छोड़ते हैं इस यन्त्र के कारण फुप्फुस फैलने और सिकुड़ने लगे। इन प्रक्रियाओं के साथ ही उस कुत्ते को चेतना देने वाली एक औषध भी उन्होंने सूची भरण से दी। अभी उसके शरीर से निकाला रक्त उसकी रगों में आधा ही पहुँचा था। उधर जिस यन्त्र से फुप्फुस को गति दी जा रही थी फुप्फुस में स्वतः व्यजन आने लगे और उसके शरीर में जीवन के संचार के चिन्ह दृष्टिगत होने लगे। नाड़ी पर उसके जो नाड़ी दर्शक यंत्र बंधा था, उसने भी नड़ी की गति को बताना आरम्भ कर दिया, जब श्वास ठीक तौर पर कुत्ता लेने लगा उस समय श्वास मार्ग में डाली रबड़ की नली को बाहर निकाल लिया गया। कुत्ता पूंछ हिलाने लगा और उसकी आंखें फिर चमक उठीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह फिर देखने लगा। थोड़ी देर में ही वह हाथ पैर सिकोड़ कर बैठ गया। उन वैज्ञानिकों के इस आश्चर्य जनक कृत्य को देख कर वह अमेरिका के वैज्ञानिक स्तब्ध रह गये।

आज भारत को स्वतन्त्र हुए एक युग बीत गया, देश को विज्ञान की ओर किस तरह से आगे बढ़ाना चाहिये, संसार में जो वैज्ञानिक उन्नति हो रही है उस तक यहां के विशेषज्ञों को किस तरह से विशेषज्ञ बनाना चाहिये। जो व्यक्ति अनुसन्धान करना चाहते हैं उन्हें किस तरह से प्रोत्साहित करना चाहिये, और इस दिशा में जहां संसार के और देश पहुँचे हैं भारत को वहां तक किस तरह पहुँचाना चाहिये इस ओर हमारे नेताओं का कोई ध्यान नहीं है। इन नेताओं का तो इस समय इस बात की ओर ध्यान लगा हुआ है कि हम सबों ने जो इस समय गद्दियां संभाली हुई हैं यह हमारी गद्दियां किस तरह कायम रह सकती है इसी बात को बनाये रखने के लिये नये से नये तिगडम भिड़ाते रहते हैं। आयुर्वेद में ऐसे-ऐसे कल्प और चमत्कारिक औषधियाँ हैं जो मनुष्य को नवजीवन प्रदान करने वाली हैं इन चिकित्सकों को कोई प्रोत्साहन तक नहीं दिया जाता कितने परिताप का यह विषय है।

सोवियत संघ की दूसरी संस्था विज्ञान अकादेमी ने जीवन विज्ञान की प्रयोग शाला के अध्यक्ष प्रोफेसर व्लादिमिर नैर्गीव्सकी ने अनेकों कुत्तों पर प्रयोग करके इस बात को सिद्ध कर दिया है कि कोई प्राणी मृत होते ही यदि उसे १५ शताँश के ताप क्रम पर रखा जाय तो उसके मस्तिष्क, यकृत, फुप्फुस रक्त आदि की रचना में कोई विकृति नहीं आती इस शीतली भवन में उन प्राणियों को रखने पर उनके रक्त संचार सम्बन्धी और ज्ञानवाही, क्रियावाही अंगों में सब ठीक बने रहते हैं इस स्थिति में उक्त प्राणी को एक घंटा तक मृतावस्था में पड़ा रहने दिया और बाद में उसके भीतर रक्त पहुँचाया जाय और फुप्फुस को गति दी जाय तो उस प्राणी में पुनर्जीवन आ जाता है। प्रो० व्लादिमिर का कहना है कि शरीर की कोषाएँ इतने शीतली भवन पर रखने से उनके भीतर का जो जैवाद्यम रहता है जिसके आधार पर समस्त शरीर की जीवन व्यवस्था बनी रहती है, इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। उनका रसायनिक संगठन बिगड़ता है। केवल उस प्राणी का रक्त निकाल लेने पर हृदय की गति और उसके साथ ही मस्तिष्क का क्रिया वहन का व्यापार बन्द हो जाता है। अब केवल इतना ही करना शेष रहता है कि एक ओर उसके शरीर का ताप बढ़ाते हैं, दूसरे उसके भीतर रक्त संचार करते हैं। तीसरे उसके फुप्फुस को गति देते हैं इन तीन कामों को एक साथ करने पर जहां रक्त संचार आरम्भ होता है और उसकी कोषाओं तक आवागमन आरम्भ हो जाता है वह कोषाएं अपने आप जीवन का व्यापार आरम्भ कर देती है और मस्तिष्क से ज्ञान व क्रिया का आदान प्रदान तब होने लगता है जब उत्ताप की स्थिति प्रकृति रूप में आ जाती हैं। जहां शरीर की कोषाओं ने और मस्तिष्क ने अपना कार्य आरम्भ किया कि बस शरीर के समस्त जीवन के व्यापार चल पड़ते हैं और प्राणी अपने आप हिलने चलने लगता है। यह प्रयोग एक दो प्राणियों पर नहीं हुए हैं। प्रत्युत सैंकड़ों प्राणियों पर करके जब उन्हें जीवन प्रदान करने में पूर्ण सफलता मिली हैं तब उन्होंने यह प्रयोग संसार के सामने रखे हैं।

यह प्रयोग सिद्ध करते हैं कि हम जिस आत्मा के ऊपर जीवन को निर्भर मानते थे, ऐसा कुछ नहीं है। जीवन का मसला अब आत्मा के आधीन नहीं है प्रत्युत शरीर की एक एक कोषा के एक विशेष स्थिर ताप और रक्त संचार आदि अनेक शारीरिक कारण ऐसे हैं जिनका एक साथ बने रहने पर जीवन का कार्य व्यापार बना रहता है इस में यदि किसी का क्रम युक्त सम्बन्ध विच्छेद हो जाय तो जीवन का कार्य व्यापार रुक जाता है।

हम सब चिकित्सा क्षेत्र में काम करते हैं हमें इस विषय को शरीर के क्रिया और शरीर के कार्य व्यापार के आधार पर जीवन की स्थिति को समझना चाहिये। क्योंकि हमने वास्तव में आयु का अर्थात् जीवन का ज्ञान प्राप्त करना है। जीवन का ज्ञान प्रत्यक्ष साधनों से जो जाना जा सकता है उसे कल्पना से समझने का प्रयत्न करना इस युग में परिहास की चीज है।

इन वैज्ञानिकों का कहना है कि वह समय दूर नहीं है जब हम मनुष्य पर उक्त प्रयोगों को दोहरावेंगे और जिस तरह से इन प्राणियों पर हमें सफलता मिली है मनुष्यों पर भी उसी तरह से मिलने की आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि वह वैज्ञानिक अब तक जिन अनेकों बातों को पशुओं पर प्रयोग करके देखते और समझते हैं जब उन पशुओं पर उन्हें सफलता मिलती है तब फिर वह उन्हीं प्रयोगों को मनुष्यों पर दुहराते हैं अब तक इस तरह के किये प्रयोग सब के सब सही देखे गये हैं। इसलिये वह ही नहीं संसार के समस्त वैज्ञानिक इस बात पर विश्वास करते है कि वह दिन दूर नहीं जब मृत मनुष्यों को भी जिला कर दिखाया जा सकेगा।

वैद्यों को यह बात नहीं समझनी चाहिये कि एक व्यक्ति जिसका यकृत या फुप्फुस खराब हो गया हो और उसने अपना काम करना बन्द दिया हो उसे फिर जीवित कर देंगे, ऐसा नहीं हो सकता। शरीर के भीतरी अंगों में शोथ, कोथ आदि कोई विकृति आकर जब वह शरीर का हिस्सा निकम्मा हो जाता है, जब तक वह हिस्सा ठीक न हो वह प्राणी जीवित नहीं रह सकता। क्योंकि शरीर के समस्त अंगों के कार्य व्यापार अन्योन्य श्रित चला करते हैं। जिस तरह से एक मशीन दो सौ पुर्जो के योग से बनकर स्वयं चालक होने पर उसे चला देने पर वह अपने आप चलती रहती है। किन्तु उसका एक छोटे से छोटा पुर्जा उसमें से निकाल दिया जाय तो वह मशीन फिर चलने से रह जाती है। ठीक इसी प्रकार शरीर के अंगों में परस्पर जीवन के लियें सहयोग है बह समस्त अंग ठीक हों और परस्पर मिलकर काम करने वाले दुरुस्त हों तो उस स्थिति में यदि किसी की मृत्यु हो जाय तो ऐसे मृत मनुष्य को जिलाया जा सकता है। यह मृत मनुष्य को जिलाने का जो प्रयोग है यह ऐसे ही व्यक्तियों पर किया जा सकता है जैसे किसी का अकस्मात हृदयावसादादि से मृत्यु हो जाय तो वहां पास में यदि इन जैव विज्ञानिकों की कोई प्रयोग शाला हो तो उस मृत व्यक्ति को वहां चट पहुँचा कर उसे जीवित करेंगे, न कि किसी जलोदर के या यक्ष्मा के ऐसे रोगी को जिसके यकृत अथवा फुप्फुस खराब हो गए हों।

रोग की दशा में तो रोगी की चिकित्सा होगी और उसके विकृत हुए अंगों का उपचार किया जायगा और जब उसके उक्त विकृत अंग ठीक हो जायेंगे उस स्वस्थ दशा में यदि वह मर जाता है तो फिर से उसे बचाने का इस विधि से प्रयत्न हो सकता है।

आयु बढ़ाई जा सकती है

इस समय तक इस बात का ठीक तौर पर ज्ञान हो गया है कि मनुष्य शरीर का जब कोई भी पुर्जा बिगड़ जाता है तभी उस व्यक्ति की जीवन रूपी मशीन काम करने से जबाब दे देती है, यदि शरीर का कोई पुर्जा खराब हो जाय और उसे दुरुस्त किया जा सके तो मनुष्य की आयु को आसानी से बढ़ाया जा सकता है। प्रयोगों से पता चला है कि मनुष्य शरीर में सबसे अधिक विकृति अन्न प्रणाली में उत्पन्न हुआ करती है। हमारे भीतर किसी मार्ग से कोई ठोस और द्रव वस्तुएं भीतर जा सकती हैं तो बस उस वस्तु के प्रवेश के लिए एक ही मार्ग है, वह है मुख मार्ग। इसी मार्ग से अच्छी और बुरी वस्तुएँ उदर दरी में प्रवेश पाती रहती हैं इसी अन्न प्रणाली में खाद्य पेय के ऐसे अवशेष जहां तहां फंस जाया करते हैं जो वहां रुक कर वह सड़ा करते हैं और उनमें उठने वाले सन्धानों से ऐसे विषाक्त पदार्थ बना करते हैं जो शरीर की कोषाओं में पहुँचकर उनके जीवन व्यापार में व्याघात उत्पन्न कर देते हैं। इसी से वह कोषा अपने जीवन को स्थिर रखने के जो कार्य व्यापार चलाती रहती हैं उन्हें चलाने में वह असमर्थ हो जाती हैं तभी उनका चलता कार्य व्यापार बन्द हो जाता है जिसे हम मृत्यु कहते हैं। यदि किसी प्रकार अन्त्राशय, मलाशय में उत्पन्न संचित हुए द्रव्यों को निकाल दिया जाय और यहां पर होने वाले सन्धानों को न उठने दिया जाय तो शरीर में उसका जब विष नहीं फैलेगा तो मनुष्य की आयु बढ़ जायेगी। आयुर्वेद में इसी बात को समझ कर एक सूत्र आचार्यों ने रचा था "उदरं व्याधि मंदिरम"। उदर ही रोगों का घर है। अर्थात समस्त ऐसे विकार उदर से उत्पन्न होते है जो मनुष्य को जीवन के अन्त की ओर ले जाते हैं। यह सिद्धान्त इस समय के प्रयोग से बिल्कुल ठीक सही सिद्ध हो रहा है। किन्तु हमें भी अब युग के अनुकूल बनना चाहिये और प्रयोगवाद को नये सिरे से अपनाना चाहिये तभी आयुर्वेद का कल्याण हो सकता है इस तरह से नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाद्य द्रव्यों का रासायनिक विधि से निर्माण

हम जो भी आहार लेते हैं उसमें हमारे शरीर के पोषण की जो सामग्री रहती है वह कितने प्रकार की है ? इसको आयुर्वेदज्ञों ने जो कुछ समझा था वह दार्शनिक पहलू से ही समझा था। अर्थात हमने अनुमान से ही उसे जाना था और उसे षट् रसों में विभक्त कर दिया था। किन्तु हमारा यह अनुमान किसी ऐसे प्रयोग के आधार पर नहीं था जिसका प्रत्यक्षी करण किया गया हो। इस समय की खोजें जो हो रही हैं वह केवल अनुमान के आधार पर नहीं हो रही हैं प्रत्युत प्रत्यक्ष के आधार को लेकर हो रही है। प्रत्यक्ष के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, जो प्रयोग करने पर सही देखा जाता है उसी के आधार पर आगे बढ़ा जाता है। जहाँ हर एक बात को प्रत्यक्ष देखा जाता है वह स्थल इस समय प्रयोग शालाओं ने लिया हुआ है। वह प्रयोग शालाएं विदेशों में ही नहीं, भारत में बीसों स्थानों पर स्थापित हो चुकी हैं। जहाँ बड़े-बड़े योग्य विद्वान इसकी खोजें करते रहते हैं। इन्हीं खोजों से इस बात का ज्ञान हुआ है कि हमारे खाद्य द्रव्यों में तीन ही श्रेणी के द्रव्य विद्यमान होते हैं। (१) अस्रजनीय अर्थात् जिन द्रव्यों से शरीर का मांस रक्त का मूल पदार्थ बना करता है। अंग्रेजी भाषा में इसे प्रोटीन कहते हैं, प्राणियों के शरीर का अधिक भाग इसी अस्रजन से निर्मित होता है। इस जीवन युक्त भाग को जैवाद्यम कहते हैं। अर्थात् जीव का वह आदि मूल द्रव्य जिसके बिना किसी प्राणी का जीवन स्थिर नहीं रह सकता। इस अस्रजन को उन प्रयोग शालाओं ने अन्न से, दालों से, अंडों से, दूध से, माँस से, और अनेक घास वनस्पति से इलहदा करने का विधान जान लिया और उन्हें शुद्ध रूप में प्राप्त कर लिया गया है। फिर उन्होंने इस बात की खोजबीन आरम्भ की कि मानव प्राणी जैसे-जैसे सन्तानोत्पादन कर अपना वंश विस्तार करता चला आ रहा है। यदि इसी प्रकार यह सृष्टि की प्रवृद्धि करता रहा और खाद्य द्रव्यों का उत्पादन न बढ़ा तो इसके भूखे मरने की नौबत आ सकती है। इस समय क्या आप देख नहीं रहे, संसार में बेकारों की संख्या बढ़ रही है। अब वह युग तो है नहीं, कि एक व्यक्ति कमाता था तो घर के दस आदमी आराम से उस एक की कमाई पर गुजर बसर कर लेते थे। अब तो घर में दस हैं जब तक दसों प्राणी न कमावें सबों का पेट भरना कठिन होता है।

हमारी चिन्ता तो केवल अपने परिवार तक ही सीमित रहती है, किन्तु जो सरकारें मानव समाज पर शासन करती हैं उन्हें सारे देश के मानव समाज की चिन्ता रहा करती है, कि इन सबों का पेट किस तरह से भरा जाय। सरकारें इस अपने दायित्व को समझ कर ही इस बात के लिये प्रयत्न शील रहती है कि जहां तक हो एक तो मानव समाज की वृद्धि सीमित रखी जाय, दूसरे जितने भी मानव प्राणी उनके राज्य में निवास करते हों कोई भूखा न मरे। यह उनका प्रयत्न रहता है। किन्तु जिस तेजी से भारत की आबादी बढ़ रही है उस तेजी से अन्न का उत्पादन नहीं बढ़ रहा इसीलिये भारत सरकार को चिन्ता सता रही है कि प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में बढ़ने वाले इन नव जीवों का निर्वाह कैसे होगा। क्योंकि इस समय हर एक अनुसन्धान कर्ताओं को यह ज्ञात हो गया है कि शरीर के लिये सबसे अधिक उपयोगी अस्रजन खाद्य हैं और यह उपयोगी अंश अनेकों ऐसे अनुपयोगी द्रव्यों के भीतर भी विद्यमान रहता है, जिनका उपयोग हम सीधे नहीं कर सकते, इसलिये उन द्रव्यों के भीतर से उसका वह उपयोगी अंश निकाल कर के अन्य खाद्य द्रव्यों में मिला कर उस नष्ट होने वाले अंश का उपयोग क्यों न किया जाय ?

बहुगुणी खाद्य

आजकल साबुन का उपयोग बहुत बढ़ गया है, साबुन में अनेकों वनस्पतियों का तेल पड़ता है बिना तेल के साबुन नहीं बन सकता, तेल बिनौला, मूंगफली, कुसुम्मा, निम्ब की निंबोली, कंबीला, बीज, तिल, सरसों, आदि अनेक वनस्पति बीजों को पैर कर उन बीजों से निकाला जाता है। किन्तु तेल निकाल लेने के बाद उसका जो पिण्याक याने खल बच जाती है वह अभी तक पशुओं को खिलाने के ही काम आती रही है। इन बीजों में केवल तेल ही नहीं होता प्रत्युत इसमें वह प्राणियों के पोषण का अत्यन्त उपयोगी अंश अस्रजन भी विद्यमान रहता है जिससे उन वनस्पतियों के नव अंकुरों का पोषण हुआ करता है। प्रयोगों से जाना गया है कि तेल निकाल लेने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद उस खल में कुछ शर्करा श्रेणी के और कुछ अस्रजन श्रेणी के द्रव्य विद्यमान रह जाते हैं। यदि इस खल को शुद्ध करके इसमें से अस्रजन को बिलगा लिया जाय तो लाखों लोगों के लिये इसमें से उपयोगी खाद्य अंश से उनकी उदर पूर्ति व बालकों की शरीर वृद्धि की जा सकती है। इसी आधार पर सरकार की बेंगलोर स्थित खाद्य अनुसन्धान शाला ने मूंगफली की खल से अस्रजन के बहुत कुछ अंश को ऐसे रूप में बदल कर ले आये हैं जिसके उपयोग से अनेकों मनुष्यों की उदर पूर्ति होने लग पड़ी है।

पिछले वर्ष सरकार ने दिल्ली में जब नुमायश की थी, उसमें इस खाद्य को लाकर उसका जन समाज में प्रचार किया था कि इसका उपयोग जन समाज को करना चाहिये। हम भी इसे परीक्षा के लिये लाये थे, और स्वयं इसकी रोटियां हलवा, पूरी, बिस्कुट, केक आदि बनाकर काफी दिन तक खाते रहे और अनेक यार मित्रों को खिलाते रहे। इस मूंगफली की खल और भुने चने के मिश्रित आटे से मिलाकर यह बनाया बहुगुणी खाद्य वास्तव में उपयोगी द्रव्य है। इससे शरीर की क्षति पूर्ति ही नहीं होती, प्रत्युत शरीर की काफी वृद्धि भी होती है, अब तो इस समय इस पोषक द्रव्य के सम्बन्ध में अधिक अनुसन्धान करके मालूम कर लिया गया है कि इस अस्रजन का शरीर में जब जाकर पचन होता है उस समय इससे पवनाम्ल नामक ऐसे यौगिकों का निर्माण हुआ करता है जिसको हमारा शरीर ग्रहण कर उसे सात्म्य रूप देता है। सीधे ही अस्रजन हमारे शरीर में नहीं लगते। वह पवनाम्ल के रूप में ही बदलकर ही लगते हैं। इसीलिये इस समय की अनेकों औषध निर्माण शालाएं इस पवनाम्ल के योग की अनेक दवाइयाँ तयार करके उनसे लाखों रुपया बटोर रहे हैं। यह बातें बतलाने का अभिप्राय यह है कि वैद्यों को इन महत्व की बातों की जानकारी होनी चाहिये। इस जानकारी का ही यह परिणाम है कि विदेशी कम्पनियां औषध निर्माण में भारतीयों से बहुत आगे निकल गई हैं और वह इस जानकारी की बदौलत ही लाखों रुपया कमाती रहती है।

कोई समय था जबकि आयुर्वेद में अनुसन्धान हुआ करते थे और उनके पूर्व के अनुसन्धान कर्ताओं की कृपा से ही आज हमारे पास इस समय जो है सब उसी का परिणाम है। हम जो इस समय अपने पूर्वजों की कमाई पर बैठे रोटी खा रहे हैं, वास्तव में हमने इन पांच सात शताब्दियों के मध्य कोई भी उन्नति नहीं की, न हम कुछ सीखना ही चाहते हैं।

दूसरे पोष्य द्रव्यों पर अनुसन्धान

हमारे आहारीय द्रव्यों में दूसरी चीज शर्करी श्रेणी के उन द्रव्यों की आती है जिनसे हमें काम करने की शक्ति मिला करती है और साथ ही उससे जीवन को स्थिर रखने वाली गर्मी भी।

जीवन गर्माई व स्थिर रहने वाले ताप के बिना एक क्षण भी चल नहीं सकता। यह शक्ति और ताप का मुख्य स्रोत मांड़ या शर्करा श्रेणी के समस्त द्रव्यों से प्राप्त हो सकता है। चहे वह चीनी हो या चावल के आटे का मांड़ हो। शर्कराएं और मांड वाले द्रव्य भी अन्न धान्य के अन्दर होते हैं। गेहूँ को भिगोकर रख दें चार पाँच दिन के बाद उस गेहूँ को कुचल कर कपड़े में बांध कर पानी के भीतर मलें तो उसमें से उसका सितसार पानी में घुलकर जल में नीचे बैठता चला जाता है। वैद्यों से छिपा नहीं है कि गिलोय, अद्रक को भी कुचल कर इसी तरह से उसे पानी में मलें तो उससे भी सितसार निकलकर पानी के नीचे बैठता चला जाता है जिसे हम गिलोय सत या अद्रक सत कहते हैं। यह हमारा गिलोय सत और कुछ नहीं है वही गेहूँ में से निकले सितसार जैसा ही पदार्थ है इसके और उस गेहूँ में के निकले निशास्ते में कोई अन्तर है तो इतना ही है कि वह भिन्न वनस्पतियों से निर्मित हुये हैं अन्यथा उनकी सूक्ष्म रचना में बहुत कम अन्तर होता है। उपयोग की दृष्टि से अगर हम गेहूँ के निशास्ते की जगह पर गिलोय के सत को खाद्य द्रव्यों के स्थान पर लें तो इससे भी उतना ही शरीर को ताप और शक्ति मिलती है जितनी कि हमें गेहूँ के निशास्ते से मिला करती है। इसी खोज का परिणाम यह हुआ कि मैसूर की सरकारी खाद्य अनुसन्धान शाला ने कई ऐसे फल ढूंढ निकाले जिनमें यह सितसार का अंश काफी विद्यमान था कई कन्द जैसे टेपियोका, शकरकन्दी, गेहूँ आदि से उन्होंने इस सितसार को निकालकर उससे उन्होंने मशीनों के द्वारा नकली चावल बना दिये। यह टेपियोका और शकरकन्दी से बने चावल आज मद्रास में चावल की जगह पर खाने में काम आ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सितसार वनस्पतियों के अंगों में कहाँ बना करता है ? अनुसन्धान कर्ताओं को ज्ञात हुआ कि जितनी भी वनस्पतियां हैं जिनमें हरा पत्ता होता है सभी वनस्पतियां अपने इन हरे पत्तों के भीतर सूर्य के प्रकाश में विद्यमान पराकासनी रश्मि का शोषण करती रहती हैं और इस रश्मि के शोषण काल में वह हवा में विद्यमान कज्जल द्विऊष्मिद नामक वायु को सदा ही उस प्रकाश के समय भक्षण करती रहती हैं। यह वायु प्राणी मात्र तब उत्पन्न करते हैं जब उनके भीतर यह सितसार या शर्कराएं जला करती हैं। जिससे प्राणी मात्र को शक्ति और ताप मिला करता है। इस वायु को ही कार्बन डाई आक्साइड कहते हैं। जिस वायु को हम अपने श्वास से निकालते रहते हैं उसे ही वनस्पतियां खाती रहती हैं। और उसे खाकर फिर उसी से वह अपने पत्तों में शर्कराएं और सितसार दोनों ही उत्पन्न करती रहती हैं। अर्थात कज्जल का यह रहट का सा चक्र प्राणियों के भीतर से निकल कर फिर वह वनस्पतियों में पहुँचता है और वहां फिर उस कज्जल से वनस्पतियां शक्कर और सितसार निर्माण करके हमें शक्ति और ताप का स्रोत प्रदान करती रहती है। हम इस सितसार को या शर्करा को भी अधिकतर अन्न धान्य और इक्षु, फलों आदि से सदा प्राप्त करते रहते हैं। किन्तु जिस तरह से अस्त्रजनीय द्रव्यों की कमी रहती है इसी तरह से इन पदार्थों की भी कमी रहती है क्योंकि खाने वाले जो बढ़ते जा रहे हैं, इसीलिये वैज्ञानिक इस खोज में लगे हैं कि जैसे वनस्पतियां सूर्य के प्रकाश द्वारा अपने भीतर पत्तों में कज्जल व पानी के अणु का संयोग करा करके उससे शर्कराएं और सितसार निर्माण कर लेती हैं इसी तरह यदि उनके पत्तों में यह प्रक्रिया किस तरह से चलती है उसे सही रूप में जान लें तो वह अपनी प्रयोगशाला में भी इसे क्यों न बनालें। अभी अभी की सूचना है कि अमेरिका के एक वैज्ञानिक प्रोफेसर एलसोफ एच० कौरबिन ने अपने प्रयोगों में कज्जल और जल की रश्मि संश्लेषण (फोटोसिनथेसिस) क्रिया के द्वारा किस प्रकार वनस्पतियाँ इन दोनों के मेल से अपने पत्तों में शर्कराएं और सितसार का निर्माण कर लेती हैं ? इस बात को जान लिया है।

प्रोफेसर कौरबिन पिछले १० वर्ष से इस खोज बीन में लगे हुए हैं। अब आकर उन्होंने इसके इस रहस्य को मालूम कर पाया है उन्होंने पता लगा लिया है कि पराकासनी रश्मि किरणों के लघु अंशुमान (अंगस्ट्राम) से पत्तों के अन्दर प्रवेश काल में पहले जल का अणु उदजन और ऊष्मजन के अणुओं में विश्लेषित होता है फिर कज्जल द्विऊष्मिद पत्ररन्ध्र से पत्ते के भीतर पहुँचता है उस समय रश्मियों के शोषण काल में साथ ही वह कज्जल भी ऊष्मजन से मुक्त हो जाता है और मुक्त होने के साथ ही वह कज्जल उदजन और ऊष्मजन से मिलकर पुनः संश्लेषित होता है। इस संश्लेषण विश्लेषण में पराकासनी रश्मियों के छोटे छोटे अंशुमानों का इस क्रिया में शोषण होता रहता है। यदि यह रश्मियां पत्तों को न प्राप्त हों तो फिर यह क्रिया बन्द हो जाती है। इसीलिये रात्रि को वनस्पतियाँ इस कज्जल द्विऊष्मिद को भक्षण करने में असमर्थ रहती है। उन्होंने ज्ञात किया कि रासायनिक क्रिया के तीन पहलू हैं (१) कज्जल द्विऊष्मिद से कज्जल की प्राप्ति, (२) जल से उदजन का निर्हरण, (३) पराकासनी रश्मियों के उपयोग से इन दोनों का सम्मेलन। प्रोफेसर साहब इस अंश में तो सफल हो गये हैं कि कज्जल द्विऊष्मिद से कज्जल के अंश को पृथक् कर सके हैं। और यह भी जान सके हैं कि पराकासनी रश्मियों के किस अंशुमान की रश्मियों से इसका विश्लेषण होता है। अब जल के उदजन को किस प्रकार इन रश्मियों के प्रभाव से विच्छेदित किया जाय इसका अध्ययन कर रहे हैं। यदि जल के विच्छेद की विधि का ठीक ठीक ज्ञान हो गया तो फिर वनस्पतियां इनका संश्लेषण कैसे करती है इसको समझने में इतना अधिक समय नहीं लगेगा। इतना तो वह ठीक तौर पर जान गए हैं कि जल का विश्लेषण भी रश्मियों के प्रभाव से ही होता है किन्तु कितनी अंशुमान की किरणें इसके लिए उपयोजित होती हैं यह बात जानने के योग्य है। जब इस बात का पता लग गया तो फिर प्राकृतिक साधनों से रासायनिक विधि द्वारा शर्कराओं का या सितसार का निर्माण प्रकृति पर निर्भर नहीं रहेगा।

इस समय संसार किस तेजी से विश्व के रहस्यों को जानने के प्रयत्न में लगा है, उसका यह रहस्य ज्ञान मन के मोदक नहीं हैं कि बैठकर आराम से रोटी खाकर कल्पना के घोड़े दौड़ाते रहें और उससे कोई लाभ न मिले इस समय तो इस प्रकार के प्रायोगिक ज्ञान से मनुष्य धनपति ही नहीं बन जाता, इससे वह मानव समाज का कल्याण भी करता है। जो विद्या, जो ज्ञान मनुष्य को ऐश्वर्य, सुख, भोग सब कुछ देने वाला हो यदि उसकी प्राप्ति की ओर वैद्य ध्यान न दें तो उनका और आयुर्वेद का कल्याण होने का नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर पर ताप क्रम का प्रभाव और उस का अध्ययन

समस्त प्राणी दो भागों में विभक्त किये जाते हैं, एक शीत रक्ती दूसरे उष्ण रक्ती। सरीसृप और जलचर प्राणी सब ही शीत रक्ती होते हैं और थलचर प्राणी प्रायः उष्ण रक्ती होते हैं। शीत रक्ती जन्तुओं का ताप बाहर की परिस्थिति के अनुसार घटता बढ़ता रहता है उष्ण रक्ती प्राणियों के शरीर के ताप में बाह्य ताप परिवर्तन से कोई परिवर्तन नहीं आता। शीत रक्ती प्राणी को यदि शून्य ताप पर के वातावरण पर रखें तो उनमें यह अद्भुत क्षमता होती है कि अधिक शीत पर रखे रहने पर वह अपने में ऐसा परिवर्तन उत्पन्न कर लेते हैं कि उनका जीवन सुरक्षित बना रहता है और उन को कोई हानि नहीं पहुँचती। बल्कि यहां तक देखा गया है कि पानी के जमने की स्थिति तक ताप के घट जाने पर उनका रक्त और कोषाओं का जैवाद्यम जम कर थक्का बन जाता है तब भी वह नहीं मरते। बरफ में मछलियाँ रहती पाई गई हैं मेंढ़क पाये गये हैं। वह सब शीत रक्ती होने के कारण उनमें शीत सहन की अद्भुत क्षमता होती है।

किन्तु प्रयोगों के देखा गया है कि उष्ण रक्ती प्राणी का जीवन व्यापार एक निश्चित ताप क्रम पर चलता है यह अधिक शीत पर जीवित नहीं रह सकते। उष्ण रक्ती प्राणी ३७.० से लेकर ४१.० के मध्य रहने वाले उत्ताप में जीवित रह सकते हैं और इन सबों का उत्ताप जब एक मात्रा में स्थिर रहता है, तभी उनका जीवन व्यापार ठीक चला करता है। यदि इनके इस ताप में जरा भी अन्तर आ जाय तो इनका जीवन व्यापार बन्द होने लगता है मनुष्यों का यह ताप ३७.० शतांश के आसपास ही सदा रहता है, इसमें कहीं एक दो अंश का भी अन्तर आ जाय तो शरीर की स्थिति डांवा डोल हो जाती है।

इन उष्ण रक्ती प्राणियों को निम्न ताप पर रखने पर शरीर के अवयवों में क्या क्या परिवर्तन आते हैं। शरीर के तन्तु और कोषाओं के जैवाद्यम पर उस शीतली भवन का क्या प्रभाव पड़ता है इसका अच्छी तरह से अध्ययन किया गया है। उष्ण रक्ती कोषाओं के जीवन रस पर शीतली क्रिया के दो प्रकार के प्रभाव देखे जाते हैं एक अतिशीतता दूसरे उनके जीवन रस का या जैवाद्यम का जम कर थक्का बन जाना। १० से १५ शतांश के मध्य के ताप पर उष्ण रक्ती के जैवाद्यम में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। उन पर केवल अति शीतता का ही यह प्रभाव होता है कि उनका क्रिया व्यापार बन्द हो जाता है। इससे नीचे के तापक्रम पर उन प्राणियों के कोषा का जीवनरस जम कर थक्का बन जाता है। जब जैवाद्यम जम कर थक्का बन जाता है उस स्थिति में उस के जैवाद्यम की रासायनिक रचना में परिवर्तन आ जाता है, इसी से वह फिर अपने पूर्व रूप में नहीं आता इसी से वह मृत हो जाता है। पृष्ठ वंशी प्राणियों के तन्तु और कोषाओं का १०° से २५°० शतांश के ताप पर जीवन व्यापार ही बन्द होते हैं इस उत्ताप पर उनके जीवन रस में कोई विकृति नहीं आती। इसी सिद्धान्त पर मृत प्राणियों को इस उत्ताप पर एक घंटा मृत रख करके पुनर्जीवन देने का जो विधान जाना गया है इसी सिद्धान्त पर आधारित है। जभी तो रूस में इस ताप पर उन प्राणियों को रख कर जीवित करके दिखाया गया है। इस निम्न ताप पर शरीर के किसी भाग को कहाँ तक सुरक्षित रखा जा सकता है? इसका अध्ययन करने पर पता चला है कि मधुरोल (ग्लाइसरोल) उन्हें एक ऐसा माध्यम ज्ञात हुआ है जिसके मध्य रक्त तन्तु, शुक्र कीट और अन्त स्रावी ग्रन्थियों की कोषाएं आदि को जमाव बिन्दु के ताप से भी अधिक शीतली भवन पर उन्हें जीवित रखा जा सकता है और उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जा सकता है। शायद आप सबों को यह बात मालूम न हो कि आजकल आस्ट्रेलिया के सांडों का वीर्य सुरक्षित रूप में भारत में आता है और कृत्रिम विधि से यहां की गायों को गर्भित किया जाता है वह वीर्य इसी विधि से सुरक्षित हो कर यहाँ लाया जाता है। और महीनों रखा रहने पर जीवित बना रहता है और उसके प्रयोग से यहाँ की गउएं गर्भित हो रही हैं। यह ज्ञान हमें ताप की स्थिति का अध्ययन करने पर ही प्राप्त हो सका है। इस शरीर की ताप की स्थिति का ज्ञान होने पर ही हम मानव प्राणी के जीवन की वास्तविक स्थिति को समझने में सफल हो सके हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्थर का जीव

जहाँ पहाड़ों की कटाई का काम होता है और बड़ी-बड़ी शिलाएं काट कर निकाली जाती हैं वहाँ पत्थरों को काटते समय पत्थर की तह में से बड़ा नरम, मुलायम, गाढा सा, द्रव कहीं न कहीं दिखाई दे जाता है जो हवा लग कर सूख जाता है और कोई तो सफेद, कोई ललाई लिये कोई भूरा चमकीला होता है किसी किसी में कुछ रवे भी चमकीले दिखाई पड़ते हैं। इसका उपयोग न तो किसी आयुर्वेद ग्रंथ में मिलता है. न किसी यूनानी ग्रन्थ में देखा जाता है। मगर अभी कुछ ही दिनों की बात है कि हकीम नूरूद्दीन ने रूमूजुल तिब्बा नामक चिकित्सा का उर्दू में उपयोगी ग्रंथ लिखा था उसमें उन्होंने इस ग्रन्थ के पहले भाग में इसका एक योग दिया है। गर्भपात को दूर करने और गर्भ को स्थिर रखने में इसे उपयोगी बतलाया गया था। इस योग को फिर तो अनेक यूनानी की पत्रिकाओं ने अपने अपने पत्रों में प्रकाशित किया। उसके बाद कुछ वैद्यक पत्रों में भी इसकी चर्चा हुई, तब से इस का प्रचार बढ़ा और वैद्यों को इस खनिज का ज्ञान हुआ तब से यह व्यवहार की चीज बन गई हैं और अनेक वैद्य इसका उपयोग करते हैं, किन्तु यह लाभ दायक भी है? कि नहीं। इसके सम्बन्ध में अभी तक किसी ने कोई प्रकाश नहीं डाला।

इसका रासायनिक रूप—यह चूना, मग्न और शैलिका का ऊष्मिद यौगिक होता है जो हवा लग कर शिला के बाहर आते ही सूख कर सख्त हो जाता है। जिस रंग के पत्थर में यह मिलता है प्रायः उसी पत्थर के रंग का इसका वर्ण होता है और जिन द्रव्यों से शिलाओं की रचना हुई है वही इसमें विद्यमान रहते हैं। कहीं कहीं पहाड़ों में जहाँ झरने होते हैं उन झरनों का पानी निकल कर उसमें शैल कोष्मिद के कुछ विलय मिल कर जल के साथ बाहर आते रहते हैं और वह शिला गर्भ से बाहर आते ही हवा लगकर जमने लग जाते है जिसे प्राचीन रसायनी शिलोदक कहते थे। इसी तरह का यह पत्थर का दिल भी है किन्तु इसकी और उसकी मौलिक रचना में अवश्य ही अन्तर है। इसीलिये इसके गुणों में भी अन्तर हो सकता है। जब से पत्थर के जीव के गर्भपात निरोधी होने का उल्लेख हुआ अनेक हकीम, वैद्य इसकी माँग करते चले आ रहे हैं इसी से हम इसका संग्रह करने लगे हैं। परन्तु यह वस्तु उपयोगी है कि निर्हीं, अभी तक स्पष्ट रूप से किसी ने कोई इस पर विशेष प्रकाश नहीं डाला हमारे मित्रवर हकीम दलजीत सिंह जी का कहना है कि यह गर्भस्राव और गर्भपात दोनों ही स्थितियों में लाभकारी है और बहुत हद तक बन्ध्यत्व को भी दूर करती है। आशा है हमारे पाठक भी इसे आजमा करके कभी इसके फलाफल से सूचित करेंगे।

उपयोग—जिन स्त्रियों को अठराह का रोग लग जाता है और गर्भ रहते ही एक दो मास का गर्भ होता है वह गर्भ अकस्मात पात हो जाया करता है या गर्भ में ही बालक सूख जाता है और गर्भ नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह पत्थर का जीव लाभ करता है। इसका प्रयोग निम्न विधि से करते हैं—पत्थर का जीव २ रत्ती वंशलोचन १ माशा इलायची छोटी ४ रत्ती इन तीनों को पीस करके शहद में मिला करके दिन में दो बार सेवन करें और प्रति एक सप्ताह तक सेवन करते रहें। फिर अगले महीने इसी तरह से एक सप्ताह तक सेवन करें। प्रति सप्ताह महीना चढ़ने के चार पांच दिन सेवन करते रहने पर ९वें मास गर्भ पूर्ण होकर स्वस्थ सुन्दर बालक गर्भ से बाहर आता है जो स्त्रियों वन्ध्या होती हैं, उनको भी लाभ करता है ऐसा उनका कथन है। पर हम इस पर विश्वास नहीं कर सकते, क्योंकि बन्ध्यत्व के एक दो कारण नहीं होते, कई कारण देखे जाते हैं इसलिए उसमें यह लाभ दायी होगा ऐसा विश्वास किस आधार पर किया जाय? निम्न रोगों में भी पत्थर का दिल काम देता है ऐसा उक्त हकीम जी का कथन है, गर्भशूल, श्वेत प्रदर, सर्प विच्छू दंश, धातुक्षीणता, प्रमेह, अपतन्त्रक, पुराने सुजाक, पित्तजशिरःशूल, मुखपाक, रक्तवमन अर्थात् रक्तपित्त, पेचिश आदि रोगों में इसका उपयोग बतलाया गया है। अनुपान भिन्न भिन्न रोगानुसार बना लिये जाते हैं।

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गल गंड रोग का कारण और सरकार की ओर से उसके निवारण का उपाय

गलगंड क्यों होता है ?—

वातःकफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्येसमाश्रित्य तथैव मेदा ।
कुर्वन्तिगंडं क्रमशस्त्रिलिंगैः समन्वितं तं गलगंड माहु ॥

मन्या नाड़ी को ग्रहण कर जब वात और कफ कुपित होकर वहाँ स्थित होते हैं तो उसे गलगंड होता है। क्या यह ठीक है ? इस समय अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है ऐसी बात कुछ नहीं है। खोज करने पर ज्ञात हुआ है कि पार्वतीय तराइयों में के कुछ स्थानों के जल में एक विशेष प्रकार के इतने सूक्ष्म कृमि होते हैं जो दिखाई नहीं देते, यह शरीर के भीतर प्रवेश कर के रक्त मार्ग से चुल्लिका ग्रन्थि में पहुँच कर वहां विकृति उत्पन्न करते हैं इससे चुल्लिका ग्रन्थि बढ़ने लग जाती है और वह बढ़ कर एक बड़े गांठ की आकृति धारण कर लेती है। यह पकती नहीं, न यह फूटती है इसका प्रभाव यह होता है कि उस व्यक्ति की शकल बदशकल हो जाती है। अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि यदि इसमें नैलिका के यौगिक सेवन कराये जाय तो इसमें बहुत लाभ होता है। जिन व्यक्तियों की यह ग्रन्थियाँ बढ़ रही हों उन्हें नैलिका योग के यह लवण दिये जायं तो उनका रोग जाता रहता है।

हमारी सरकार ने इस बीमारी को दूर करने के लिये पंच वर्षीय योजना में इसके लिये ८७ लाख ५० हजार रुपया की योजना रखी है इससे उन तराई के इलाके में जहां यह बीमारी होती है उसके लिये अमेरीका सरकार ने भी संयुक्त राष्ट्र के अन्तःराष्ट्रीय बाल संरक्षण कोष से नमक में नैलिका (आयोडीन) का संयोग कराने के लिये एक बड़ी भारी मशीन देने को कहा है। यह मशीन प्रति दिन ७० टन नमक में आयोडीन मिला कर उस नमक को उपयोगी औषध के तुल्य बना देगी। इतना नमक २७ लाख ५० हजार व्यक्तियों को देने के लिये काफी होगा। यह मशीन इसी वर्ष दिसम्बर तक आ जायगी, और सांभर झील के पास उसे लगाया जायगा जहाँ सांभर नमक के साथ मिला कर यह दवा तैयार कराई जायगी। हमारी सरकार चाहती है कि इस रोग से जो व्यक्ति ग्रसित होकर विकृत अंग बन जाते हैं वह संसार के सामने इस हीन स्थिति में न आवें।

भारत सरकार एक एक रोग के उन्मूलन का क्रम से योजनाबद्ध इस काम को आगे बढ़ा रही है। अब जब रोग का सही ज्ञान हो जाता है तो उसकी औषध मालूम करना भर रह जाता है। इस समय इसी बात का प्रयत्न किया जाता है कि रोग के वास्तविक कारण को मालूम किया जाय। विषम ज्वर का कारण जब मलेरिया के मच्छर हैं इसका ज्ञान हुआ तो इन मच्छरों को किस तरह से समूल नष्ट किया जाय इसकी औषध ढूँढी जाने लगीं। उसी का परिणाम डी० डी० टी० नामक औषध का आविष्कार है। इस समय जहां भी सरकार के द्वारा इस औषध के छिड़कने का प्रबन्ध हुआ है उन स्थानों में विषमज्वर का जोर बहुत ही कम हो गया है। अब यदि सरकार के इस प्रयत्न से गल गंड को भी इस लवण से दमन करने में सफलता प्राप्त हो गई तो यह भी समूल नष्ट हो सकता है। इस तरह से धीरे धीरे संसार से व्याधियां घटती चली जायगी तो वैद्यों का यह व्यवसाय सदा के लिये ठप्प हो जायगा। ऐसी दशा में हमें अपनी स्थिति पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिये। यदि आयुर्वेद को जीवित रखना है तो हमें संसार के अन्य चिकित्सकों जैसी स्थिति में आना चाहिये तभी आयुर्वेद का अस्तित्व संसार में रह सकता है। यदि हम इस समय के विवर्धित ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र से अपने आप को दूर रखेंगे तो निश्चय ही आयुर्वेद का भविष्य अन्धकारमय होगा।

हमारे पास साधन नहीं हैं :— हमें सूचना मिली है कि बम्बई में चिकित्सा अनुसन्धान बोर्ड की ओर से त्रिदोष के आधार पर व्याधियों का निदान करने का प्रयत्न हो रहा है। हमारे पास साधन क्या है ? जिससे हम त्रिदोष के स्वरूप को देख या समझ सकें। हम अब तक त्रिदोष के स्वरूप का ही निश्चय नहीं कर सके, न शरीर में उसकी स्थिति को ही स्पष्ट कर सके हैं, जिस मूल भूत पदार्थ को ही हम अभी तक नहीं जान सके हैं, ऐसी स्थिति में उसके द्वारा स्थापित सिद्धान्त को कैसे समझ सकते हैं। और उस पर किस आधार को लेकर परीक्षा कर सकते हैं। इसका कोई प्रमाण उस बोर्ड ने वैद्य समाज के सामने नहीं रखा। अब बातों से संसार को हम भुलावा नहीं दे सकते, जबकि हमारे सामने परीक्षा के अनेकों साधन विद्यमान हों। जब तक हम उन साधनों के द्वारा अपनी बात को प्रत्यक्ष रूप में सिद्ध न कर दें कोई भी हमारी बात पर विश्वास करने के लिये तैयार नहीं हो सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्य समालोचना

धन्वन्तरि का काय चिकित्सांक—इस काय चिकित्सांक का सम्पादन योग्य लेखक श्री रघुवीर प्रसाद जी ने किया है. यह अंक इतना बड़ा है जो ५४० पृष्ठ में लेखों से परिपूर्ण हुआ है। इस अंक में काय चिकित्सा सम्बन्धी विषय को लेकर ४० रोगों पर विस्तार से रोगों का निदान और उनकी अनुभूत चिकित्सा का इतना अच्छा वर्णन दिया है कि इस एक अंक से ही वैद्यों की चिकित्सा के लिए यह अति सुलभ मार्ग प्रस्तुत करता है। लेखक भी वह ख्यातिलब्ध व्यक्ति हैं जो इस समय के प्रतिष्ठा प्राप्त उच्च लेखकों में से हैं। चिकित्सा के लिये यह अंक बहुत उपादेय है इसके पढ़ने से कोई व्यक्ति जिसे कुछ भी न आता हो वह भी चिकित्सक बन सकता है। हम इस विशेषांक का हृदय से स्वागत करते हैं। मूल्य इस अंक का ८॥) रु० है। प्रकाशक—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़, अलीगढ़।

आरोग्य विज्ञान—नया मासिक पत्र प्रधान सम्पादक—श्रीयुत वयोवृद्ध वैद्य ख्यालीराम जी द्विवेदी आयुर्वेद वृहस्पति, आयुर्वेदाचार्य। सम्पादक श्री डा० सुन्दरलाल जी आयुर्वेद रतन बी० आई० एम० एस०। पता—आरोग्य विज्ञान कार्यालय, बियावानी, इन्दौर। मूल्य वार्षिक ३) रु०।

वैद्य ख्यालीराम जी आयुर्वेद नेताओं में हमारे अग्रणीय नेता हैं और भारत में ऐसा एक भी वैद्य न होगा जो आपकी योग्यता से परिचित न हो। आपने अपने जीवन में आयुर्वेद की शिक्षा देकर हजारों योग्य वैद्य उत्पन्न कर दिये हैं, आपकी आयुर्वेद के प्रति अचल, अटल श्रद्धा है आपने अपने जीवन में जितनी आयुर्वेद की सेवा की है, शायद ही किसी वैद्य ने की हो। आगे भी इससे पूर्व आपने उक्त नाम से एक मासिक पत्र प्रकाशित किया था। पत्र बड़ा उपयोगी था, किन्तु वैद्य समाज गुण ग्राहक नहीं है, नुसखे चाहता हैं। चुटकलों की उसे चाह रहती है वह अपने को योग्य बनाना नहीं चाहता। सदा तो कोई पत्र कोई वैद्य इतने अनुभूत योग जीवन में उपार्जित नहीं कर सकता कि वह वैद्यों और नव सिखियों को अनुभूत योग ही बांटता रहे। बहुत से पत्र जिनमें उपयोगी लेख रहा करते हैं किन्तु अनुभूत योगों की उनमें कमी होती है वैद्य उन पत्रों के ग्राहक बनना पसन्द नहीं करते, इसीलिये वह घाटा उठाकर विचारे बन्द हो जाते हैं।

वैद्य जी के सम्मपादकत्व में यह पत्र बड़ी शान शौकत से १ मई से आरम्भ हुआ है इस पत्र को बड़े-बड़े नेताओं ने शुभ कामनायें भेजी हैं। इस पत्र में पाश्चात्य औषधियों में भल्लातक का उपयोग नामक पहला ही लेख बड़ा ही मननीय है, यदि हमारे वैद्य बन्धु इस लेख के आधार पर दिये भल्लातक के इस योग को बताये हुए रोगों पर उपयोग करके लाभ उठावें तो मेरे विचार में उन्हें इस योग से काफी लाभ मिल सकता है। हम इस पत्र का बड़े प्रेम से स्वागत करते हैं।

आयुर्वेद तथा देश में उसका भावी विकास—लेखक—श्री ए० एन० नामजोशी। भाषा—अंग्रेजी, पृष्ठ संख्या ३६, प्रस्तावना लेखक श्री एम० एस० कन्नमवार, स्वास्थ्य मन्त्री, बम्बई राज्य।

पुस्तिका के लेखक श्री नामजोशी बम्बई आयुर्वेदीय अनुसन्धान बोर्ड के मन्त्री पद पर आसीन है। प्रस्तुत पुस्तिका में आपने आयुर्वेद के विकास से सम्बन्धित समस्याओं को स्पष्ट रूप से वैद्यों एवं सरकार के सम्मुख रखने का प्रयास किया है और अपने दृष्टिकोण से उनका हल भी सुझाया है। भारत सरकार द्वारा निर्मित आयुर्वेद अनुसन्धान मूल्यांकन समिति को प्रस्तुत करने के लिये लेखक द्वारा तैयार किये स्मरण पत्र के आधार पर यह पुस्तिका लिखी गई है। विषय महत्वपूर्ण है और लेखक ने कई उपयोगी सुझाव योजनाबद्ध रीति से सरकार एवं वैद्य समाज के समक्ष रखे हैं। अतः पुस्तिका के विषय का संक्षिप्त दिग्दर्शन वैद्यो के लिये रोचक एवं लाभप्रद समझ कर नीचे दिया जा रहा है।

पुस्तिका में सर्वप्रथम केन्द्रीय सरकार से अनुरोध किया गया है कि वह आयुर्वेद शिक्षा, अनुसन्धान और चिकित्सा के विकास के सम्बन्ध में एक उदार एवं दृढ़ नीति को अपनाये जिससे आयुर्वेद के सर्वाङ्गीण विकास के लिये उचित वातावरण पैदा हो तथा राज्य सरकारों को उससे प्रेरणा मिले।

आयुर्वेद के महत्व और विशेषताओं की चर्चा करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसद में फार्मेसी एमेंडमेंट बिल

ले० राजवैद्य सुधन्वा--देहली

गत मास केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय का वार्षिक बजट जब लोक-सभा में विचारार्थ उपस्थित किया गया, तब उस पर संसद सदस्यों ने देशी चिकित्सा पद्धतियों को राज्यमान्यता का अभाव होने की कड़ी समालोचना की। श्री एच० सी० माथुर (कांग्रेस), श्री बी० पी० नैयर (कम्युनिस्ट), श्री ठाकुरदास भार्गव (कांग्रेस), मौलाना हिफजुर रहमान (कांग्रेस) श्री एन० जी० गोरे, श्री अब्दुल लतीफ एवं श्री राधारमण (कांग्रेस) आदि प्रमुख संसद सदस्यों ने सामयिक भाषणों में स्वास्थ्य मंत्री जी को देशी चिकित्सा विज्ञान द्वारा देश के स्वास्थ्य को सम्भालने, पर्याप्त आर्थिक सहायता द्वारा इसको बहुजन हिताय ग्रामों में फैलाने, इन पद्धतियों के स्नातकों और रजिस्टर्ड चिकित्सकों को सर्व प्रकार की चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएं जुटाने, एवं केन्द्र में एक स्वतन्त्र "देशी चिकित्सा परिषद" स्थापित करने आदि उपयोगी सुझावों की अपने भाषणों में प्रेरणा की। इस अवसर पर केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की "रजिस्टर्ड-प्रेकटिशनर" की परिभाषा को बदलकर उसमें से देशी चिकित्सकों को वंचित करने की मनोवृत्ति की भी कड़ी आलोचना की गई। श्री करमरकर जी ने संसद में इस विषय पर भाषण देते हुए सरकार के रुख की सराहना की और आश्वासन दिया कि उनका मंत्रालय ऐसी कोई कार्यवाही नहीं करेगा, जिसके द्वारा रजिस्टर्ड मेडिकल प्रेकटिशनर की श्रेणी से देशी रजिस्टर्ड चिकित्सकों का बहिष्कार हो।

फिर २१ अप्रैल को एक नया बिल "फारमेसी एमेंडमेंट बिल १९५९' लोक सभा से पारित कर राज्य-सभा में स्वीकृति के लिए स्वास्थ्य मंत्री जी द्वारा उपस्थित किया गया। यह बिल मुख्यतया देश में कम्पौण्डरों, फारमेसी व्यवसाइयों, केमिस्टों एवं सरकारी अस्पतालों तथा रजिस्टर्ड प्रेकटिशनरों के यहाँ नौकरी पाने वाले कर्मचारियों की योग्यता एवं शिक्षास्तर को एकरूपता देने के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार द्वारा रचा गया है। यह बिल तो उपयोगी ही है, परन्तु इस बिल में एक बहुत बड़ी न्यूनता यह पाई गई कि इसमें रजिस्टर्ड मेडिकल प्रेकटिशनर की परिभाषा ऐसी मानी गई कि जिसमें से देशी रजिस्टर्ड वैद्य और हकीमों का बहिष्कार किया गया था। यह एक अति अनुचित एवं वैद्य हकीमों के लिए असहनीय अन्याय था। इसके निराकरण के हेतु पुनः राज्य-सभा के सदस्यों को व्यक्तिशः मिलकर इस बिल में समुचित संशोधन कराने के लिए लगातार दौड़-धूप की गई। स्थानीय यूनानी तिब्बी कानफ्रेंस के प्रमुख कार्यकर्त्ता हकीम बी० एन० शर्मा एवं डाक्टर भद्रसेन, श्री यादवराम शर्मा, श्री विजयकुमार भदवार आदि के सहयोग से यथासमय प्रयत्न करने से राज्य-सभा में श्री राजबहादुर गौड़, डा० सुब्बाराव, हकीम मौलाना मियां फारुकी, श्री पाटिल, श्री जेठालाल एच० जोशी आदि संसद-सदस्यों के भाषणों का पर्याप्त अच्छा असर हुआ। श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल संसद-सदस्या का भाषण बड़ा ओजस्वी था। हर्ष का विषय है कि राज्य सभा के दो दिनों के अधिवेशनों में इन भाषणों का असर यह हुआ कि स्वास्थ्य मंत्री जी ने फारमेसी एमेंडमेंट बिल १९५९ में एक संशोधन ऐसा स्वीकार कर लिया, जिससे इस बिल में देशी चिकित्सा के रजिस्टर्ड वैद्य-हकीम भी जरूर स्वीकार कर लिए जावेंगे। देशी चिकित्सा की यह शानदार विजय है। स्वास्थ्य मंत्री जी के भाषण का रुख भी बदला हुआ था। उन्होंने उदार चित्त होकर देशी-चिकित्सा विज्ञान के हितों का संरक्षण किया जिसके लिए वे देशी चिकित्सक समाज के धन्यवाद के पात्र हैं। इस बिल में इस कार्य के सम्पन्न हो जाने से केन्द्रीय सरकारी बिलों में यह शायद सर्वप्रथम सुअवसर है कि देशी रजिस्टर्ड चिकित्सकों को अभूतपूर्व सफलता सुलभ हो सकी--भविष्य में प्रान्तों में चल रहे बोर्ड आफ इंडियन मेडिसिन द्वारा रजिस्टर्ड वैद्य और हकीमों को केन्द्रीय स्वास्थ्य सचिवालय द्वारा पारित बिलों एवं निर्देशनों में वे सब अधिकार मिल सकेंगे जो अन्य रजिस्टर्ड मेडिकल प्रेकटिशनरों (एलोपेथिक डाक्टरों) को सुलभ हो रहे हैं। सारांश यह कि राज्य सभा द्वारा स्वीकृत इस बिल के द्वारा वैद्य और हकीमों के मार्ग में आने वाली अनेक अड़चनों का निराकरण अब सम्भव हो गया है। जिस रूप में यह बिल पारित होने जा रहा था यदि वैसा ही लोक सभा द्वारा स्वीकृत हो जाता तो देशी चिकित्सकों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए न सिर्फ महान विघ्नकारी सिद्ध होता अपितु देशी चिकित्सा विज्ञान की प्रगति पर अभूतपूर्व सांघातिक प्रहार जनक होता। इस बिल पर सारगर्भित एवं युक्तिपूर्ण भाषण देने वाले पूर्व लिखित संसद सदस्यों का देशी-चिकित्सक समाज बहुत आभार मानता है कि जिनके सद्यः सहयोग से उक्त सफलता मिल सकी। इसके साथ साथ यह भी एक सचाई है कि स्वास्थ्य मंत्री जी ने उक्त बिल में इस नए संशोधन को सहर्ष मानकर अपनी भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा का अनुराग का परिचय मात्र नहीं, अपितु अपनी उदारता का भी प्रदर्शन किया। इसके लिए श्री स्वास्थ्य मंत्री जी भी भारत के समस्त देशी चिकित्सकों के धन्यवाद के पात्र हैं। आपने इस अवसर पर देशी चिकित्सा विज्ञान के अतीत गौरव की जिन शब्दों में प्रशंसा की वह अभूतपूर्व थी। भगवान धन्वन्तरि की कृपा से स्वास्थ्य मंत्री जी की यदि राष्ट्र की इन स्वास्थ्य पद्धतियों के विषय में ऐसी भावना बनी रही तो देश की स्वास्थ्य योजनाओं में भविष्य में चिकित्सा विज्ञान की उपेक्षा नहीं होगी। ऐसी बलवती आशा है। राजधानी के प्रमुख वैद्य और हकीमों को उचित है कि वे श्री स्वास्थ्य मंत्री जी के इस अभूतपूर्व सहयोग के लिए उनके प्रति आभार प्रदर्शन करें। ———

अन्त्र और अस्थि सन्धान की नई कला

संसार चिकित्सा में किस तरह से होड़ ले रहा है इसका एक प्रमाण अभी सामने आया है। इंगलैंड के डाक्टर जब रूस में जाकर उन्होंने हृदय की चमत्कारी शल्य क्रिया रशियन डाक्टरों को दिखाई तो वह उनके इस चमत्कारिक कृत्य से आश्चर्य चकित तो अवश्य हुए किन्तु उन्होंने भी चिकित्सा क्षेत्र में जो उन्नति की है वह भी तो संसार के सामने नहीं आई है, इसीलिये उन्होंने इस क्षेत्र में क्या कुछ काम किया है इसका चमत्कार दिखाने के लिये ही उन्होंने अंतड़ियों और हड्डियों को काट छांटकर उसे जोड़ने की जो नई कला आविष्कृत की है उसका प्रदर्शन करने के लिये वह अब लण्डन जा रहे हैं। वहां वह जाकर आंतों को जोड़ कर हड्डियों को काट कर उसे नये सिरे से जोड़ कर के प्रदर्शन करेंगे। हम वैद्यों की क्या दशा है कि हम अपने आयुर्वेद के प्राचीन सिद्धान्तों को ही सिद्ध करने में समर्थ नहीं हैं नये का तो आविष्कार क्या करेंगे। ———

राज्यों में दस स्वास्थ्य शिक्षालय स्थापित होंगे

भारत सरकार ने राज्यों में दस स्वास्थ्य शिक्षालय स्थापित करने की योजनायें स्वीकार कर ली हैं। इन शिक्षालयों को केन्द्रीय सरकार सहायता देगी और ये दूसरी पंचवर्षीय योजना की बाकी अवधि में खोले जायेंगे। इनमें से ५, १९५९–६० में और बाकी १९६०–६१ में स्थापित होंगे।

राज्य सरकारों को स्वास्थ्य शिक्षालय खोलने को प्रोत्साहन देने के लिये शिक्षालयों के ९९,५४० रु० के आवर्त्तक व्यय और १०,००० रु० के अनावर्त्तक व्यय में से केन्द्र भी काफी हिस्सा देगा। सं० रा० के बाल आपात कोष की ओर से ८७,००० रु० का सामान शिक्षालयों के लिये मिलेगा।

स्वास्थ्य शिक्षालय की स्थापना का निर्णय केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद की सिफारिश पर किया गया है। इसका उद्देश्य लोगों में अपने स्वास्थ्य सुधार के लिये स्वयं प्रयत्नशील होने और दूसरी योजना में दी गई सुविधाओं का पूरा लाभ उठाने को प्रोत्साहन देना है।

स्वास्थ्य शिक्षालय राज्यों में सार्वजनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों और स्वास्थ्य शिक्षा के संगठन और अन्य बातों में हाथ बंटायेंगे। स्वास्थ्य शिक्षा की प्रणालियों के सुधार के लिये भी ये शिक्षालय आवश्यक सुझाव देंगे। सरकारी और गैर सरकारी सभी संस्थाओं के काम में शिक्षालय सहायता देंगे।

देश में छात्रों की संख्या बहुत है, इसलिये उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों को ये शिक्षालय विशेष रूप से हाथ में लेंगे।

राज्यों में स्वास्थ्य परिषदें नियुक्त करने का भी विचार है, जो स्वास्थ्य शिक्षा की योजना करने और उसके लिये शिक्षालयों के उपयोग करने आदि का प्रयत्न करेगी। साथ ही ये राज्यों में इस काम के लिये उपलब्ध साधनों का भी पता लगाएंगी। इस योजना को सफल करने के लिये यह सुझाव दिया गया है कि स्कूलों और स्वास्थ्य विभागों से मिल कर काम किया जाए और स्थान स्थान पर वहां के प्रमुख व्यक्तियों, स्थानीय संस्थाओं और पंचायतों आदि के प्रतिनिधि लेकर स्थानीय समितियां बनाई जायं। सामुदायिक विकास खण्डों में स्वास्थ्य शिक्षालयों की ओर से व्यायाम आदि के प्रदर्शन किये जाएं ताकि लोगों में स्वास्थ्य सुधार के लिये उत्साह पैदा हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखनऊ की सरकारी अनुसन्धान शाला क्या कुछ कार्य कर रही है ?

मालूम हुआ है कि लखनऊ की सरकारी औषध अनुसन्धान शाला के औषध निर्माण विभाग के संचालक डा० गुजराल अनुसन्धान के काम में एक योग्य व्यक्ति हैं। आपने कुछ वर्षों के अनुसन्धान से कुछ औषधियाँ नई ऐसी निर्मित की हैं जो कुछ रोगों पर विशेष लाभदायी सिद्ध हुई है। आपने अब तक जो योग तैयार किये हैं उनमें से निम्नलिखित औषधियाँ विशेष गुणदायक सिद्ध हुई हैं। मृगी रोग पर, निद्रा लाने वाली और आमवात पर तथा सन्तति निरोध पर। जो औषध मृगी रोग पर तैयार की गई है वह तो जटामांसी के सत्व से तैयार की गई है।

अभी अभी डा० गुजराल ने अपने वक्तव्य में कहा है कि सन्तति निरोध की खाई जाने वाली औषध का उपयोग अभी तक पशुओं पर ही किया गया है और उससे जो परिणाम प्राप्त हुये हैं वह अत्यधिक सन्तोषप्रद हैं। यदि यही परिणाम हमें इसके उपयोग से मानव प्राणी पर मिले तो निश्चय ही परिवार नियोजन की समस्या को बिना कठिनाई के हल किया जा सकता है। आप अब तक इस विषय पर उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री डा० सम्पूर्णानन्द जी और उत्तर प्रदेश के राज्यपाल से तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति जी से मिल कर इस विषय की चर्चा कर चुके हैं। आपसे एक अमेरिकन फर्म के प्रबन्धक ने पूछा था कि यदि औषध पूर्ण तथा कारगर सिद्ध हुई तो क्या आप यह योग अमेरिकन सरकार को खुले दिल से बताने के लिये तैयार हैं। उन्होंने इसका हाँ में उत्तर दिया। किन्तु यहाँ इसे किसी को इस औषध के निर्माणार्थ अधिकार प्रदान किया जायगा तो वह देश की ही कोई फर्म हो सकती है। यहाँ किसी विदेशी फ़र्म को इसके निर्माण का अधिकार देने के हक में हम नहीं हैं।

आजकल कोई नई औषधि का आविष्कार होता है और वह जन समाज के लिये उपयोगी सिद्ध होती है तो उसको अब कोई भी आविष्कारक छिपाकर रखना नहीं चाहता, प्रत्युत उसे संसार के सामने प्रकट कर देना चाहता है कि इससे संसार के समस्त प्राणी लाभ उठावें। वैद्यों में यह विचारधारा अभी तक नहीं आई। उन्हें एक योग मिल जाता है तो उसे इतना छिपाते हैं कि अपनी सन्तान तक को बताने को तैयार नहीं होते। जिसका परिणाम यह होता है कि हमारे बड़े से बड़े आविष्कार उन आविष्कारों के साथ ही लुप्त हो जाते हैं इसी कारण हम जितना भी आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व उठे थे उतना ही अब पतित होकर नीचे आ गये हैं इसी का यह परिणाम है कि आज हमारी यह दशा है कि हम दीन हीन हो रहे हैं और हमारा तिरस्कार स्वयं हमारी सरकार कर रही है।

भल्लातक प्रयोग पर हमारे एक मित्र का अनुभव

अमृतसर में हमारे एक मित्र वैद्य छविदत्त जी आयुर्वेदाचार्य हैं, आप बहुत समय से अनेक असाध्य रोगियों पर भल्लातक का अनेक विधियों से प्रयोग करते चले आ रहे हैं अभी आपने पिछले सप्ताह ही बताया कि उन्होंने कुछ उदर के भीतर विद्यमान रसौलियों को भल्लातक सेवन करा कर उन्हें बिल्कुल ही ठीक कर दिया है। आप ने बतलाया कि एक स्त्री के पेट में इतनी बड़ी रसौली हो गई थी कि उसका सारा पेट ही उससे रुक गया था किन्तु भल्लातक के प्रयोग से वह घुल कर बिलकुल निकल गई। आप भल्लातक का प्रयोग कैसे करते हैं ? इसके सम्बन्ध में आपने बतलाया कि वह भिलावे के तेल को तवे पर डाल कर मध्यम आँच पर उसे जलाते हैं, जब वह गाढ़ा होने पर आता है उस समय उसे पानी में डाल देते हैं। जलाते समय उस भिलावें का धुँआ न लगे इससे अपने को खूब बचाना चाहिये। वरना धुआं के लगने से शरीर पर सूजन हो जाने का डर रहता है।

उस तेल को वह फिर घी में मिला देते हैं और फिर उसमें दूना शहद मिला कर रख लेते हैं बस इस योग की मात्रा १ माशे की वह देते हैं इस दवा को पिलाने से पूर्व जरा सा घृत पहले मुख के अन्दर लगा लेने को कहते हैं फ़िर उसे यह योग देते हैं। इस तरह से देते रहने पर इस से कोई दुर्गुण नहीं होता। मंडल कुष्ठ, चम्बल और अनेक प्रकार के रक्त विकारों में भी वह इसे लाभकारी बताते हैं। अब उन्होंने बतलाया कि उनके पास एक रोगी ऐसा आया है जिसके यकृत में डाक्टरों ने केन्सर बतलाया है उस रोगी को अब कुछ नहीं पचता उसकी वह चिकित्सा इसी भल्लातक प्रयोग से कर रहे हैं। उन्होंने कुछ दिन तक इसका परिणाम बतलाने के लिए कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९५८ के नोबल पुरस्कार विजेता वैज्ञानिक

अमरीका में फोर्ड फाऊण्डेशन नाम की एक बड़ी धनाढ्य संस्था है जिसकी ओर से विश्व में अपने अपने क्षेत्र में असाधारण कार्य करने वाले व्यक्तियों को प्रतिवर्ष तक बड़ा भारी पुरस्कार दिया जाता है। यह पुरस्कार राजनीतिज्ञों, वैज्ञानिकों, साहित्यकारों आदि को दिया जाता है।

चिकित्सक होने के नाते वैद्यों को वैज्ञानिक प्रगति में रुचि होनी चाहिये। आज विज्ञान किस कल्पनातीत क्षेत्र में पहुँच चुका है इस बात का परिचय पाठकों को उस अनुसन्धान कार्य की सूक्ष्मता से लगाना चाहिए जिसके आधार पर १९५८ का नोबल पुरस्कार दिया गया है।

गत वर्ष का पहला नोवल पुरस्कार डा० जार्ज बीडल और डाक्टर एडवर्ड टाटम नामक दो वैज्ञानिकों को सम्मिलित रूप से दिया गया है। ज़रा उनके कार्य का विवरण भी सुनिए।

पेनसिलीन का नाम तो आजकल सर्व विदित है। शायद बहुतों को इस बात का भी ज्ञान होगा कि यह पेनसिलियम नोटेटम नामक मोल्दजाति के सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न की जाती है। किसी बड़े या छोटे जीव को किसी ऐसे पदार्थ अथवा परिस्थिति के सम्पर्क में लावें जिससे उसके जीवन को खतरा हो तो उसके शरीर में स्वत: ऐसी प्रतिक्रिया उठ खड़ी होती है जो उस हानिकारक प्रभाव से उसकी रक्षा करे। प्रत्येक छोटे बड़े जीव में यह व्यवस्था प्रकृति प्रदत्त है। इस व्यवस्था के परिणाम स्वरूप कभी बचाव पक्ष प्रबल रहता है तो जैव में उस विशेष परिस्थिति को सहन करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है, कभी आक्रामक परिस्थिति प्रबल होती है उस जैव की अंगहानि अथवा मृत्यु तक हो सकती है।

ठीक यही व्यवस्था पैनसिलियम नोटेटम जैव में भी विद्यमान है। रेडियो सक्रिय पदार्थों, पराकासनी किरणों तथा क्ष-किरणों के सम्पर्क से उक्त जैव में से कुछ की मृत्यु हो जाती है, कुछ गुणहीन हो जाते हैं, तथा कुछ अन्य ऐसे विशेष गुणयुक्त हो जाते हैं जिससे उनके पेनसिलीनोत्पादक गुण में कई गुणा वृद्धि हो जाती है। उक्त दोनों वैज्ञानिकों ने इन विशेष गुणयुक्त जैवों की रूप रचना पहचानने की एक निश्चित विधि आविष्कृत की है। उनके इस आविष्कार से पेनसिलियम जैव द्वारा पेनसिलीन उत्पादन की मात्रा कई गुणा बढ़ जायेगी। संसार की इसी सेवा के कारण इन दोनों वैज्ञानिकों को पुरस्कार का अधिकारी समझा गया है।

दूसरा पुरस्कार एक अन्य डाक्टर जे. लेडर वर्ग को मिला है। इनका कार्य तो और भी रोचक तथा सूक्ष्म है। अब तक तो यह समझा जाता था कि कीटाणुओं की संख्या वृद्धि उनके विभाजन से ही होती है पर डाक्टर लेडर वर्ग का कहना है कि दो कीटाणुओं के अप्रत्यक्ष संयोग से भी उनकी सन्तानोत्पत्ति हो सकती है। पाठक यह तो जानते ही होंगे कि कीटाणुओं से भी सूक्ष्म एक वाइरस Virus नाम के सूक्ष्म जैव होते हैं जो मनुष्य अथवा कीटाणुओं की जीवित कोषाओं में ही जीवित रह सकते हैं और वृद्धि प्राप्त कर सकते हैं। जब वाईरस किसी कीटाणुओं में प्रविष्ट होता है तो उसकी कोषा में विद्यमान वर्णिकाओं (Chromosomes) पर चिपकी हुई संस्कार कणिकाएं (Genes) उस वाईरस के शरीर पर लग जाती है और वह वाईरस जब दूसरे कीटाणु के शरीर में प्रविष्ट होता है तो वह संस्कार कणिकायें भी उसके साथ वहां पहुँच जाती हैं। यदि किसी कीटाणु के शरीर के भीतर ही इस वाईरस की मृत्यु हो जाय तो उसके शरीर पर लगी पिछले कीटाणु की संस्कार कणिकाएं इस नए कीटाणु के शरीर में स्थित हो जाती हैं। डाक्टर लेडर वर्ग ने अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया है कि ऐसे कीटाणुओं के विभाजन से जो सन्तान पैदा होती है उसमें उक्त दोनों कीटाणुओं के गुण धर्म न्यूनाधिक रूप में विद्यमान होते हैं।

उन्होंने यह भी बताया है कि एक ही जाति के परन्तु भिन्न २ रासायनिक स्वभाव वाले दो कीटाणुओं का अनुकूल परिस्थितियों में एक साथ पालन पोषण किया जाय तो थोड़े दिनों बाद उस माध्यम में जो नये कीटाणु उत्पन्न होते हैं उनमें उक्त दोनों प्रकार के कीटाणुओं के मिश्रित गुण धर्म विद्यमान होते हैं। इससे स्पष्ट है कि उक्त दोनों प्रकार के कीटाणुओं में संस्कार कणिकाओं के आदान प्रदान का ही यह परिणाम है। इस प्रकार डाक्टर लेडर वर्ग ने सिद्ध किया है कि जिस प्रकार मनुष्य में रजवीर्य के संयोग से स्त्री एवं पुरुष की संस्कार कणिकाओं का मेल होता है, इसी प्रकार कीटाणु जगत में भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दो प्रकार के कीटाणुओं की संस्कार कणिकाओं के मेल से भी सन्तानोत्पत्ति हो सकती है और ऐसी सन्तान में दोनों पूर्वज कीटाणुओं के गुण धर्म का सम्मिश्रण विद्यमान देखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए लेखक ने आयुर्वेद में प्रकृति, बल, काल, आहार, दिनचर्या आदि के अध्ययन के दृष्टिकोण की सार्थकता पर बल दिया है और कहा है कि क्योंकि आयुर्वेद अनादि काल से लेकर अब तक भारत की असंख्य जनता को स्वास्थ्य दान देता आया है और आज की परिस्थितियों में दूर दराज के ग्रामीणों के लिये भी सुलभ है, इसलिये जनता के हित के लिए सरकार को इस विज्ञान की उन्नति के लिये कोई ठोस कदम उठाने चाहियें। यदि इसी समय ऐसा न किया गया तो जब आयुर्वेद के आधुनिक वयोवृद्ध विद्वान चल बसेंगे और वंश परम्परागत ज्ञान की कड़ी टूट जायगी तो बाद में सरकार के प्रयत्न निष्फल रहेंगे। क्योंकि विदेशी राज्य के दिनों में वंश परम्परागत कई हस्त लिखित उपयोगी ग्रन्थ पहले ही नष्ट हो चुके हैं।

आयुर्वेद विकास की योजना प्रस्तुत करते हुए लेखक ने उसे चार भागों में विभक्त किया है।

१. आयुर्वेद शिक्षा—इस सम्बन्ध में लेखक महोदय भी शुद्ध आयुर्वेद के चक्कर में फंसे दिखाई देते हैं इसीलिये आपने सरकार से शुद्ध आयुर्वेद विद्यालयों को प्रोत्साहित करने का अनुरोध किया है जिनकी उपयोगिता विवादास्पद एवं संदिग्ध है। तथापि वर्तमान आयुर्वेद विद्यालयों को उन्नत करने और स्नातकोत्तर शिक्षा की व्यवस्था के लिए अनेक उपयोगी एवं ठोस सुझाव दिये गये हैं। समस्त देश की आयुर्वेदिक शिक्षा में एकरूपता लाने के लिये एक ही तरह की उपाधियाँ एवं पाठ्यक्रम की व्यवस्था करने का सुझाव विशेष महत्वपूर्ण है।

शिक्षा सम्बन्धी नीति निर्धारण के लिये केन्द्रीय सरकार को आयुर्वेद एवं शिक्षा विशेषज्ञों की केन्द्रीय आयुर्वेद शिक्षा परिषद् नियुक्त करने का परामर्श भी दिया है।

२. आयुर्वेदीय विचारधारा का प्रचार—इसके लिए स्वतन्त्र आयुर्वेदिक सिविल हस्पताल खोलने, सभी राज्यों में पृथक् आयुर्वेदिक डायरेक्टोरेट स्थापित करने एवं दिनचर्या, ऋतिचर्या आहार आदि जन रुचि के विषयों पर आयुर्वेदिक पत्रिका प्रकाशित एवं प्रसारित करने की व्यवस्था का सुझाव दिया है।

३. आयुर्वेदीय प्रैक्टिस—आयुर्वेदिक प्रैक्टिस को व्यवस्थित रूप देने के लिए सभी राज्यों के वैद्यों का पंजीकरण, सरकारी औषधालयों में काम करने वाले वैद्यों के वेतन में वृद्धि तथा सरकार द्वारा शुद्ध औषधद्रव्यों की उपलब्धि के लिये अपने वनस्पति उद्यान लगाने का सुझाव दिया गया है।

४. आयुर्वेदिक अनुसन्धान—अनुसन्धान के लिए सरकार से एक केन्द्रीय आयुर्वेदिक अनुसन्धान परिषद् बनाने का अनुरोध किया गया है जिसका कार्य अनुसन्धान की देख रेख करना एवं भिन्न २ राज्यों के लिये अनुसंधान का विषय नियत करना होगा। पुस्तिका में अनुसन्धान क्षेत्र को पुनः चार भागों में विभक्त किया गया है।

क. अपवव द्रव्यों और तैयार औषधियों का मानदण्ड निर्धारित करना—इस काम में आधुनिक भौतिकी शास्त्र, रसायन शास्त्र एवं वनस्पति शास्त्र की उपयोगिता को स्वीकार करते हुये उनकी सहायता लेने का सुझाव है। आयुर्वेदिक फार्माकोपिया के निर्माण की आवश्यकता भी बताई है।

ख. साहित्य अनुसन्धान—इस सम्बन्ध में विषय प्रधान पाठ्य ग्रन्थों के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया है। देश भर में साहित्य अनुसन्धान कार्य की देखरेख एवं तालमेल रखने के लिए केन्द्रीय आयुर्वेद समिति बनाने का सुझाव दिया है।

ग. चिकित्सा सम्बंधी अनुसंधान—इसके लिये प्रत्येक सिविल हस्पताल में एक आयुर्वेदिक अनुसन्धान कक्ष स्थापित करने और उसका निरीक्षण तत्तत्राज्य अनुसन्धान परिषद् को सौंपने का अनुरोध किया है। इस कक्ष में कुछ चुने हुये आयुर्वेदिक योगों का रोगियों पर अनुभव किया जाना चाहिये ताकि प्रभावकारी औषधियां डाक्टरों के भी काम आ सकें।

अखिल भारतीय स्तर पर गुप्त आयुर्वेदिक योगों का ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है और इस सम्बन्ध में बम्बई सरकार को दी गई एक पृथक योजना का उल्लेख किया है।

घ. रोग निवारण एवं आहार व्यवस्था संबंधी अनुसंधान—इस क्षेत्र के अन्तर्गत रोगी की प्रकृति आयुर्वेदीय आहार विज्ञान, सात्म्यी करण सम्बन्धी आयुर्वेदीय दृष्टि कोण, दिनचर्या, ऋतुचर्या आदि विषयों को अनुसन्धान के लिये उपयुक्त बताया है। [आहार विज्ञान और सात्म्यीकरण के सम्बन्ध में आधुनिक विज्ञान जितनी सूक्ष्मता तक पहुँच चुका है, लेखक उससे अनभिज्ञ नहीं होंगे। अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहां भी आधुनिक विज्ञान की उपयोगिता को स्वीकार करना चाहिये था।

पुस्तिका के अन्त में उपरोक्त भिन्न कार्यों के निरीक्षण एवं उनमें ताल मेल रखने के लिये शिक्षा एवं अनुसन्धान सम्बन्धी दो अखिल भारतीय परिषदों के निर्माण का अनुरोध किया है।

विभिन्न स्थानों पर चल रहे अनुसन्धान का विवरण प्रसारित करने के लिये उक्त अनुसन्धान परिषद एक पत्रिका निकाले। तथा सरकारी आर्थिक सहायता इसी परिषद के द्वारा विभिन्न राज्यों में विभक्त की जाय।

इन दोनों परिषदों की स्थापना बहुत शीघ्र की जाय और आयुर्वेदिक विकास सम्बन्धी मामलों पर सरकार इन परिषदों से सलाह लिया करें, यह सुझाव दिये गये हैं।

श्री नामजोशी के सुझाव व्यापक एवं उत्तम योजनाबद्ध हैं, इसमें सन्देह नहीं पर वास्तविक समस्या तो इन्हें कार्यान्वित कराने की है जो कार्य कोई अखिल भारतीय संस्था ही कर सकती है। दुर्भाग्य से वैद्यों की अखिल भारतीय संस्था आयुर्वेद महासम्मेलन गत कई वर्षों से ऐसे हाथों में पड़ गई है जो व्यक्तिगत विज्ञापन के अतिरिक्त इसे कुछ नहीं करने देते। ऐसी दशा में मनमोदक रूपी ऐसी अनेकों योजनाओं की विद्यमानता के बावजूद आयुर्वेद का भविष्य अन्धकारमय ही दिखाई देता है। वर्तमान समय में आयुर्वेद एवं वैद्य समाज के अस्तित्व की रक्षा के लिये उनकी इस प्रतिनिधि संस्था को स्वार्थी लोगों के पंजे से छुड़ा कर सक्रिय रूप से वैद्य समाज के हित कार्यों में प्रवृत करने की योजना सब से बड़ी आवश्यकता है।

समालोचक—
गौरीलाल चानना, बी. ए.
वैद्य वाचस्पति

मधुमाक्षिकाओं का जहर भी औषध है

देखिये औषध का ज्ञान कैसे होता है। एक वृक्ष पर मधुमाक्षिकाओं का छत्ता लगा हुआ था उस वृक्ष के नीचे एक अनाथ व्यक्ति गठिया से ग्रसित पड़ा हुआ था। मधु का लोभी एक वाज़ पक्षी आया और उसने छत्ते में उड़ते हुए चोंच मार कर उड़ गया इससे मक्खियाँ भन भना उठी और उन्होंने उस पड़े हुए आदमी को काटना आरम्भ किया, उसे खूब काटा वह हिल तो सकता नहीं था कि भाग जाय। गठिया मारा था। उसे एक बार में ही मक्खियों ने अधमरा कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उस एक बार के काटने से ही उसके दर्दों में इतना लाभ हुआ कि वह चलने फिरने के योग्य हो गया। इसी आधार पर अनुसन्धान होने लगे। इसकी चर्चा अनुसन्धान कर्ताओं तक पहुँची उन्होंने मधुमाक्षिकाओं के विष का संग्रह करने की विधि ढूंढ निकाली। उसी के परिणाम स्वरूप इस समय मधुमाक्षिकाओं का विष प्रयोग करने पर आमवात में महौषध सिद्ध हुआ है। तब से अब यह प्रयत्न किया जा रहा है कि इसे अधिक मात्रा में संग्रह किया जाय। कुछ वैज्ञानिकों ने इसका विश्लेषण करके यह मालूम कर लिया है कि इसकी रासायनिक रचना किस प्रकार की है। और उसे कृत्रिम विधि से बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। संसार में किस तरह से खोजों का काम हो रहा है, पर वैद्य सोये पड़े हैं।

हृदय के शल्य क्रिया की नव्य विधि

हृदय के भीतर कोई छेद हो रहा हो तो उसे ठीक करने की विधि यह निकाली गई थी कि कृत्रिम हृदय और फुप्फुस यन्त्र निर्माण किये गये थे और उनको महा धमनी में जोड़ देते थे जिससे शरीर में रक्त संचार बना रहता था और उस रोगी का हृदय शरीर से भिन्न करके उसे चीर कर जहाँ पर उसमें छेद होता था उसे सीकर फिर उसे यथा स्थान बिठा कर महा धमनी से जोड़ देते थे। यह शल्य क्रिया अभी थोड़े दिन की बात है बृटिश शल्य विशेषज्ञों ने रूस में जाकर कई हृदय के छेद वाले रोगियों पर सफल शल्योपचार कर रूसियों को उन्होंने अपने इस कृत्य से चकित कर दिया था। अब खबर आई है कि इंगलैंड के कुछ डाक्टरों ने हृदय के इस शल्यकर्म को करने के लिये एक नई विधि का आविष्कार कर लिया है इस विधि में उन्हें हृदय फुप्फुस मशीन के उपयोग की आवश्यकता नहीं रहती। नई विधि यह है कि रक्त को वह जमा देते हैं उन्होंने ऐसी स्टेनलेस स्टील की सूक्ष्म नालियां बनाई हैं जिसके मार्ग से ताप का परिवर्तन करके रक्त १५ शतांश तक शीतल कर देते हैं इससे रक्त जम कर उसका संचार मन्द हो जाता है। रक्त शीतली करण के पूर्व हृदय को रक्त से खाली कर लिया जाता है। जब रक्त जम जाता है और उसकी गति मन्द हो जाती है उस समय एक पम्प के द्वारा उसकी गति बनाये रखते हैं उस समय पसलियों के बगल में चीरा देकर हृदय को बाहर निकाल लेते हैं और उसमें छेद आदि जो भी त्रुटियां हों उन्हें देख दाख कर ठीक करके फिर हृदय को सी कर महा धमनी से जोड़ देते हैं ऐसे अब तक वह तीन रोगियों को ठीक करने में समर्थ हो चुके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युत् की भट्ठियां और औषधी निर्माण की मशीनें

हम अभी तक धातु भस्में उपलों की अग्नि में तय्यार करते हैं। उपलों की आंच देने में यह त्रुटि सदा रहती रही है कभी आंच कम कभी अधिक लग जाती है, इसके नियन्त्रण के जो भौतिक साधन बताये हैं उन्हें अपनाने पर भी यह त्रुटि दूर नहीं होती, इसीलिये अन्य साधन ढूंढने पड़े। उनमें से विद्युत् की भट्ठियां सर्वोत्तम सिद्ध हुईं। विद्युत्भट्ठी में ताप नियन्त्रण की पूर्ण व्यवस्था होती है, जितनी भी मात्रा में आंच देना चाहें आप प्रसन्नता से दे सकते हैं। प्रत्येक धातु भस्में बनाने पर देखा गया है कि उन्हें एक जैसी आंच नहीं चाहिये। किस धातु भस्म को कितनी आंच देना है? इसका सही-सही ज्ञान आप हमारे लिखे भस्म विज्ञान नामक ग्रन्थ में प्राप्त कर सकते हैं।

और वह भस्में विद्युत् भट्ठी पर ही एक मात्रा में आंच देकर बन सकती है इसका अनुभव लिया जा रहा है और उस पर एक भिन्न ग्रन्थ तैयार हो रहा है। हमने ऐसी विद्युत् भट्ठियां निर्माण की हैं जिन पर धातु भस्म और कूपी-पक्व रस दोनों ही बन सकते हैं। The बड़े कई आकार की भट्ठियां तय्यार करके उन पर अनुभव ले रहे हैं जो वैद्य इन यों का उपयोग करेंगे वह निश्चिन्त बैठे हुए भस्में व कूपी-पक्व रस निर्माण कर सव हैं। जिन्हें भट्ठी लगाने की इच्छा हो वह पत्र-व्यवहार करें।

आज-कल औषधियों की मांग इतनी बढ़ गई है कि हाथ से औषधियां कूट, पीस कर उतनी जल्दी रस, वटी तय्यार नहीं होतीं जितनी मशीनों से होती हैं। हाथ तो लगातार घंटा, आधा घंटा काम कर सकते हैं फिर थक जाते हैं पर मशीन तो लगातार ८-९ घंटा या जितनी देर चाहें उन्हें चलावें क्या वह थकने वाली हैं? फिर खूबी सबसे बड़ी हमारी मशीनों में यह है कि जिस तरह आयुर्वेद के ग्रन्थों में औषधियों की कुटाई, पिसाई और घोटाई (भावना) का जो विधान दिया है जिससे औषधियों का सार भाग गरम न हो कर वह नष्ट नहीं होते, बिल्कुल उसी विधि के अनुसार हमारी मशीनों से कुटाई, पिसाई घुटाई होती है और औषधियां घुट कर इतने सूक्ष्म अणु-अंशों में आ जाती हैं कि जिनका प्रभावशीघ्र होता है। प्रत्येक मशीन बिजली की शक्ति से चलने वाली है। मशीनें निम्न हैं:-

चट्टू मशीन, ढोल मशीन, खरल मशीन, गोली मशीन, टिकिया मशीन, पालिश मशीन, आसव छानने की मशीन फिल्टर आदि। अधिक मात्रा में औषध निर्माण-कर्ता यह मशीनें हमारे कारखाने में आकर देखें और सारी व्यवस्था समझ कर अपने यहां यह मशीनें लगाएं।

पता—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी,

६०-६१ अकाली मार्केट, अमृतसर।

शाखा—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के उत्तम ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने को महा लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से बना वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर [illegible] करके उनके संग्रह का प्रयत्न किया है वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १२) मार्ग व्यय भिन्न।

आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—**मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर।**

अहिफेन मुक्ति दाता वटी

१ अप्रैल से सरकार ने अफीम के ठेके बन्द कर दिये हैं। अफीम खाने के आदी व्यक्तियों को बड़ी मुसीबत का सामना होगा। इस अफीम से बिना कष्ट मुक्ति दिलाने के लिये ही ८-९ वर्ष के अनुसन्धान से यह गोलियां आविष्कृत की हैं। अफीम खाने के समय १-२ या अधिक मात्रा में अफीम खाने वाले तीन गोलियां खालें उन्हें अफीम का प्रभाव नहीं लगेगा। महीना डेढ़ महीना सेवन के बाद गोलियों की मात्रा कम करते चले जाएं। बस अफीम का ख्याल ही भूल जायगा। मूल्य प्रति तोला २), ५ तोला का ८) रु०।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०--६१ अकालमार्केट, अमृतसर

ब्रांच—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६ श्रावण सम्वत २०१६ संख्या ८

अगस्त १९५९

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. आयुर्वेदोन्नति के लिये संयुक्त प्रयत्न १२१
२. रक्त प्रवाह और हृदय के कार्य १२३
३. गर्म का विकास कैसे होता है १२५
४. अनिवार्य भोज्यांश अस्रजन (प्रोटीन) [ले० कविराज गौरीलाल चानना बी०ए० वैद्यवाचस्पति] ... १२८
५. दृष्टि सम्बन्धी विज्ञान में उन्नति १३२
६. आहार लेने पर मादकता १३४
७. कायाकल्प की औषधि का आविष्कार १३५
८. पक्षाघात के रोगियों के लिये सांस लेने का नया यन्त्र १३५
९. अनेक प्रकार के आघात (शाक) का क्षाराम्ल संतुलन पर प्रभाव ... १३६
१०. विज्ञान परिषद द्वारा हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार ... १३६

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक—बदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दरीबा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

विज्ञापन छापने के नियम

१—किसी भी विज्ञापन छापने वाले या बन्द करने वाले को पत्र प्रकाशन से १५ दिन पूर्व सूचना देनी चाहिये।

२—अश्लील सभ्यता के विरुद्ध विज्ञापन नहीं लिये जायेंगे।

३—कोई भी विज्ञापन जनता को धोखा देने वाला सिद्ध होने पर उसका प्रकाशन बन्द कर दिया जायगा और जब तक वह सन्तोषप्रद प्रमाण न देगा जो मूल्य आ चुका है वापस नहीं दिया जायगा।

४—विज्ञापन का मूल्य सर्वथा प्रथम लिया जायगा।

५—आधे कालम से कम विज्ञापन दाताओं को आयुर्वेद विज्ञान बिना मूल्य नहीं दिया जायगा।

६—एक वर्ष के लिये विज्ञापन देने वाले को =) रुपया कमीशन काट दिया जायगा।

विज्ञापन के दर

७—१ पृष्ठ यानी २ कालम की प्रतिबार की छपाई ४०)
आधा पृष्ठ" १ " " " २४)
चौथाई " १।२ " " " १६)
टाईटिल के पीछे के पृष्ठ की " " ५०)
" तीसरे " की " " ४५)
" चौथे " की " " ६०)

८—ट्रेड डायरैक्टरी में विषय वार विज्ञापन प्रति ३) रु० के हिसाब से लिया जावेगा।

मैनेजर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ६ | श्रावण २०१६ वि०, अगस्त १९५९ ई० | अंक ८

आयुर्वेदोन्नति के लिये संयुक्त प्रयत्न

जिस भूमि में आयुर्वेद का आविष्कार हुआ था, जहां वह फला फूला और विकसित हो कर चिकित्सा विज्ञान के रूप में प्रकट हुआ था उस देश में के आयुर्वेदज्ञों की यह दशा है कि उनका न कोई संगठन है न उनमें परस्पर बैठ कर विचार करने की योग्यता है। लगभग समस्त भारत में रजिस्टर्ड हुए वैद्यों की संख्या ५० लाख से ऊपर है। इन वैद्यों में से ३०–४० लाख वैद्य नामधारी ऐसे हैं जो स्वयम्भू वैद्य कहने के अधिकारी हैं। लगभग १० लाख वैद्य अवश्य शिक्षित श्रेणी के आयुर्वेदज्ञ कहे जा सकते हैं। किन्तु इन वैद्यों का भी कोई संगठन नहीं। आप कहेंगे संगठन क्यों नहीं है। एक संस्था अखिल भारतीय आयुर्वेद महा सम्मेलन जो आज ४६ वर्ष से विद्यमान हैं। क्या यह संगठन नहीं? आपको ज्ञात रहे कि इस संस्था के सदस्य इस समय लगभग २५ सौ हैं, जिस देश में शिक्षित वैद्यों की संख्या दस लाख हो उसके सदस्यों की संख्या २५ सौ हो वह भी कोई संस्था हुई? क्या कारण कि इस संस्था का वैद्य समाज में कोई सम्मान नहीं, न इसकी राज्य में ही मान्यता है। इसमें प्रधान कारण निम्न हैं।

(१) आज २० वर्ष से यह संस्था गुट बन्दी का शिकार हो रही हैं। (२) इसी से इस संस्था द्वारा वैद्य समाज की भलाई के कोई काम नहीं हो रहे। (३) इस संस्था ने अर्धशिक्षित चलन्तु वैद्य तयार करने का जो व्यापार खोल रखा है उसकी आय पर संस्था के पदाधिकारी और उनके सगे साथी आनन्द का जीवन बिता रहे हैं। (४) इस विद्यापीठ कल्पतरू की छाया में बैठकर वह पदाधिकारी जीवन का आनन्द ले रहे हैं उन्हें वैद्य समाज और आयुर्वेदोन्नति की जरा भी चिन्ता नहीं। इस संस्था का सर्वेसर्वा एक ऐसा व्यक्ति है जो ६–७ बार इस संस्था का प्रधान बनकर उसने संस्था में विग्रह तो जरूर खड़ा किया पर उन्नति के नाम पर कुछ नहीं किया। यह उसके वार्षिक प्रधान काल के रिकार्ड को देखकर वैद्य समाज समझ सकता है।

अब उन्नति के स्थान पर अवनति कैसे हो रही है?

दिल्ली में उस महा मण्डल का अधिवेशन होने वाला था। किन्तु जिस गुट्ट ने महामण्डल पर आधिपत्य जमाया हुआ है उसको दिखाई दिया कि सम्मेलन यदि दिल्ली में होगया तो महामण्डल की बागडोर हम सबों के हाथ से निकल जायेगी। उन्होंने ऐसे सदस्यों को आगे कर दिया जिन्होंने निषेधाज्ञा प्राप्त कर अधिवेशन होने से रुकवा दिया। फिर महामण्डल की स्थायी समिति के दो अधि-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेशन निषेधाज्ञा लेकर रुकवाये गये। उस स्वार्थी गुट ने अपने पक्ष के भाड़े के लगभग २००सदस्य इस लिये भर्ती किये कि उन्हें महामण्डल का सदस्य बना कर संस्था में अपना बहुमत बना लिया जाय और महामण्डल पर अपना स्वामित्य बनाये रखा जाय। इसको पूर्ण करने के लिये उन्हों ने अभी ३ जुलाई को बैंगलौर में एक कार्यकारिणी का गुप्तरूप से अधिवेशन कर लिया और अपने साथियों के बहुमत से उन व्यक्तियों को महामण्डल का सदस्य बना लिया। यहाँ आयुर्वेदोन्नति के लिये उन्होंने जिन व्यक्तियों को भर्ती किया है वह १० लाख शिक्षित वैद्यों में से कितने हैं? जरा इनकी सूची पढ़कर आप देखें। इन व्यक्तियों ने आज कई वर्षों से संस्था को मुकदमे बाजी का अखाड़ा बना रखा है। यहाँ उन्नति के नाम पर क्या कुछ हो रहा है? इन झगड़ों के कारण इस समय महामण्डल का अस्तित्व ही खतरे में है। ऐसी दशा में संस्था आयुर्वेदोन्नति के लिये क्या कर सकती है?

इस संस्था के सर्वेसर्वा का नया प्रपञ्च

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने लंका सरकार को देश की स्वास्थ्य स्थिति को सुधारने के लिये उसे काफी रुपया दिया। लंका में आयुर्वेद चिकित्सा को राज्याश्रय प्राप्त है इसी से वहाँ के अधिकारियों ने आयुर्वेदोन्नति के कार्यों में सत्परामर्श देने के लिये एक योग्य व्यक्ति की भारत सरकार से माँग की। भारत सरकार ने पं० शिवशर्मा को इसमें परामर्श देने के लिये योग्य समझा और उसको वहाँ भेज दिया, जो व्यक्ति अपने देश की एक मात्र संस्था का ५-६ बार प्रधान बनकर यहां वह आयुर्वेद की उन्नत्ति का काम न कर सका हो वह व्यक्ति लंका में जा कर आयुर्वेद की उन्नति का कोई मार्ग सुझावेगा, उससे यह आशा करना वृथा है। जो व्यक्ति अपने देश की एक संगठित हुई संस्था को समुन्नत न बना सका जिसके कार्यों को देखकर यहाँ का वैद्य समाज उसका सदस्य तक नहीं बनता। वह संस्था उसके प्रभाव से उल्टे झगड़े मुकदमे बाजी का अखाड़ा बनी। वह व्यक्ति सिवाय कागजी घोड़े दौड़ाने के और आज तक कुछ कर न सका। वह लंका के लिये क्या मुफीद सिद्ध होगा?

उसकी आयुर्वेदोन्नति की योजना

पं० शिवशर्मा जब से लंका सरकार के लिये स्वास्थ्य परामर्श दाता बनकर वहाँ गया है सुना है उसने लंका सरकार के सामने एक एशियाई आयुर्वेदिक स्वास्थ्य संगठन नामक संस्था बनाने की योजना रखी है।

लंका सरकार ने इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये भारत, पाकिस्तान, वर्मा, इण्डोनेशिया, श्याम, कम्बोडिया, वीत्तनाम, नैपाल, भूटान, तिब्बत आदि देशों से परामर्श करने का निश्चय किया है और इन सब देशों से पूछेगी कि क्या एक एशियाई आयुर्वेदिक ब्यूरो को स्थापित करना वाँच्छनीय होगा? लंका सरकार का ख्याल है कि इससे आयुर्वेद के अनुसन्धान और विकास को बल मिलेगा।

विचारणीय समस्या

भारत, पाकिस्तान, वर्मा, इण्डोनेशिया आदि देशों में केवल आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति न तो राज मान्य है न इन समस्त देशों में इस आयुर्वेदिक चिकित्सा को प्रधानता दी गई है। जब इन समस्त देशों में आयुर्वेद राज्य मान्य नहीं तो इन देशों की सरकारें इस आयुर्वेदिक चिकित्सा पर जब विश्वास ही न रखती हों तो वह इस संगठन में सम्मिलित होने के लिये किस आधार पर स्वीकृति देंगी।

दूर न जाइये। भारत सरकार को ही ले लीजिये। यह सरकार स्वयम् जब आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पर विश्वास नहीं रखती न इसे मान्यता देना चाहती है तो ऐसी दशा में यह उस संगठन में आयुर्वेद की उन्नति में अपनी आस्था किस आधार पर रखकर उसमें सम्मिलित होने की स्वीकृति देगी?

दूसरी ओर पाकिस्तान को लीजिये! जहाँ आयुर्वेद के लिये उस सरकार की कोई रुचि ही नहीं। वहां आयुर्वेद का सिवाय हिन्दुओं के कोई नाम भी नहीं जानता। वह देश आयुर्वेद अनुसन्धान और विकास में कोई रुचि लेगा? क्या इसको कोई सम्भावना है? शिवशर्मा ने आयुर्वेदोन्नति के कोई काम किये हों तो उन्नति के काम किस तरह किये जा सकते हैं? उसको समझ सकता है। जिसने कागजी योजनाएं बनानी सीखी हों उसे काम का क्या ढंग आ सकता है।

इस योजना के लिए जब तक लंका सरकार उक्त एशियाई देशों से पत्र व्यवहार करेगी। उसमें ही ६ मास से अधिक समय लग जायेगा। जब तक शिवशर्मा का समय भी पूरा हो जायगा और वह अपने स्थान पर आकर बैठा विश्व स्वास्थ्य संगठन की जय मनाता रहेगा। न इन देशों से स्वीकृति मिलेगी। न आयुर्वेद का एशियाई संगठन बनेगा। यह हैं हजरत के आयुर्वेदोन्नति के प्रयत्न।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त प्रवाह और हृदय के कार्य

संसार में और जिस प्रकार के जीव हैं इसी प्रकार का मनुष्य भी जीव है जैसी कुछ हम और प्राणियों के शरीर में कार्य व्यवस्था देखते हैं वैसी ही मनुष्य के शरीर में भी देखने को मिलती हैं। इतना जरूर है कि मनुष्य का मस्तिष्क अधिक विकसित हो गया है इसी विकास के कारण इसमें अनेक विशेषताएं आ गई हैं उस तरह से यह अन्य प्राणियों से किसी बात में भिन्न नहीं है। जिस तरह से अन्य स्तन पायी प्राणी अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं उसी तरह यह भी पिलाता है और जिस तरह बाह्य वातावरण की आपत्तियों से यह बचता है उसी तरह से अन्य प्राणी भी बचा करते हैं। जिस तरह से रज वीर्य के संयोग से मनुष्य का गर्भाधान होता है इसी तरह से अन्य प्राणियों का होता है। जिस तरह से गर्भ में किसी अन्य प्राणी के गर्भ का वर्धन होता है उसी तरह से इसके बालक का भी गर्भ बढ़ा करता है। इस तरह से संसार में जितने भी प्राणी हैं सब ही अत्यन्त सूक्ष्म कोषाओं के सम्मेल से बने हैं इसी तरह मनुष्य भी सूक्ष्म कोषाओं के सम्मेलन से उसके शरीर का विकास हुआ है। मानव शरीर में यह कोषाएं कितनी होंगी विद्वानों ने इसका भी हिसाब निकाल लिया है अन्दाजा है कि मनुष्य शरीर में तीन सौ पचास करोड़ कोषाओं से इसके समस्त शरीर का निर्माण हुआ है। इस कोषा समूह शरीर को स्थिर रखने के लिये और गति आदि क्रियाओं को बनाये रखने के लिये ही शरीर में अस्थियां और कंडरा आदि ऐसे द्रव्यों का विकास हुआ है जो इसमें सहायक हैं। साधारणतया प्रकृति ने शरीर में प्रत्येक वस्तु को ठीक बनाये रखने के लिये अनेक क्रियाओं का ऐसा प्रबन्ध किया है जिससे उसकी जीवन व्यवस्था ठीक रूप से चल सके, और इस विस्तृत शरीर के एक एक कोने तक रस रूप द्रव्यों को पहुँचाने के लिये रक्त एक ऐसा वितरक अंग बनाया गया है जिसके माध्यम से समस्त शरीर को भोजन पहुँचता रहता है। किन्तु हम १६ वीं शताब्दी से पूर्व तक इस बात को नहीं जान पाये थे कि रक्त शरीर में भोजन आदि पहुँचाने और शरीर के भीतर उत्पन्न हुए मलों को निकालने का काम करता है। हमारा विश्वास था कि शरीर के भीतर में "अहर्हर गच्छतीत्यो रसः" अर्थात् शरीर में सदा रस दौड़ा फिरा करता है। किन्तु यह हमारा अनुमान सही नहीं था। विलियम हार्वे नामक एक विद्वान ने सब से पूर्व १५९५ ई० में यह सिद्ध किया कि शरीर में रस नहीं बहता, न शरीर में वायु किसी रस को बहाती है। प्रत्युत उसने बतलाया कि रक्त ही शरीर में घूम फिर कर हृदय में पहुँचता है और वह हृदय से फुफ्फुस में पहुँच कर शुद्ध होता है और फिर वापस हृदय में आकर हृदय की गति के कारण वह धमनियों में धकेला जाता है और वह फिर शरीर में एक चक्कर काट कर फिर हृदय में आ जाता है। यह बात उसने जीवित प्राणी के शरीर का छेदन भेदन करके ज्ञात की थी।

अब रक्त के सम्बन्ध में यह बात समझने की है कि रक्त वास्तव में जिस द्रव्य के विद्यमान रहने के कारण लाल दिखाई देता है वह शरीर के ठोस भाग का एक सजीव अंग है अर्थात् रक्त की ऐसी ही कणिकाएं होती हैं और वह उसी तरह की सजीव कोषा का रूप है जैसा शरीर के और अंग भाग होते है किन्तु वह रक्त की कणिकाएं रक्तरस में तैरती रहती हैं, जो वास्तव में हमारे भुक्त द्रव्यों के और जल के संयोग से विपाक रस के रूप को प्राप्त होता है और उस रस के साथ ही शरीर में घूमती रहती हैं। इन्हीं रक्त कणिकाओं के कारण रक्त का वर्ण लाल दिखाई देता है। इन कणिकाओं को ही रुधिराणु कहते हैं। यह रक्त की कोषाएं इतनी सूक्ष्म रूप की हैं कि एक वर्ग इंच के स्थान पर लगभग १० करोड़ की संख्या में आसानी से आ जाती हैं। इन्हीं में वह राग भरा होता है जिनके कारण ही सारा रक्त लाल दिखाई देता है। इन रक्त कणों का शरीर में घूमते रहने का क्या प्रयोजन ? जब इसकी खोज होने लगी तो पता चला कि विपाक रस तो सीधे ही कोषाओं में प्रवेश कर जाता है किन्तु यह रक्त की कणिकाएं उन कोषाओं में प्रवेश नहीं करतीं प्रत्युत यह उनके द्वार तक ही पहुँच पाती हैं और वहीं से उनके भीतर की अयोग्य अग्राह्य वस्तुएं ले लेती हैं और उन कोषाओं को जीवनदान देने वाली प्राण वायु दे देती हैं और उन मलिन पदार्थों को लेकर शरीर के उन स्थानों तक जा पहुँचती है जहां से वह शरीर के बाहर कर दिये जाते हैं। शरीर की एक एक कोषाओं तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह से आहार रस और जीवन को स्थिर रखने वाली ऊष्मजन वायु न पहुँचती रहती तो जीवन का यह व्यापार कभी स्थिर नहीं रह सकता था। फिर और देखिये इस रक्त में रुधिराणुओं से भिन्न कुछ श्वेताणु भी उसमें रहा करते हैं जिनका काम है शरीर को आपत्तियों से बचाना। शरीर के भीतर अनेकों रोगकारी कीटाणु, जीवाणु सदा ही आहार व श्वास मार्ग से पहुँचते ही रहते हैं। जिन्हें हम अपनी नंगी आँखों से नहीं देख सकते, वह जब रक्त में पहुँचते हैं तो वहाँ वह बढ़ते हैं और बढ़ कर शरीर के किसी स्थान पर जम कर वहाँ की कोषाओं को खाने व शरीर के अवयवों का संहार करने लगते हैं, इनसे बचाने के लिए ही रक्त में इन श्वेताणुओं की बहुत बड़ी फौज रहा करती है। उन से फिर यह युद्ध लेते हैं और उन्हें मारने का प्रयत्न करते हैं। अनेकों बार वह इसमें सफल रहते हैं। अनेकों बार वह इसमें विफल भी हो जाते हैं। जब वह विफल हो जाते हैं उस स्थिति में ही रोगों की उत्पत्ति होती है।

यदि शरीर में रक्त का निरन्तर प्रवाह बना न रहे, वह एक क्षण भी रुक जाय तो उसी समय जीवन का अन्त हो जाता है इसी से तो रक्त को जीवनाधार कहा गया है। कई बार अकस्मात चोट लग जाती है कई बार युद्ध में या अपने आखेट से ही मनुष्य घायल हो जाता है उस समय रक्त में जो जमने का गुण विद्यमान रहता है उस गुण के कारण ही जहाँ पर क्षत हो जाता है वहाँ से जब रक्त बहने लगता है वह उसमें विद्यमान स्कन्धाणु आगे आकर जमने लग जाते हैं इससे रक्त के निकलने का मार्ग बन्द हो जाता है और रक्त शरीर से अधिक नहीं निकलने पाता। यह प्रकृति प्रदत्त विधान के कारण ही जीवन की रक्षा होती है।

रक्त शरीर में सदा ही भ्रमणशील रहता है यह कैसे भ्रमणशील रहता है इसका ज्ञान पूर्व के चिकित्सकों को ठीक तौर पर नहीं हुआ था। इस कार्य का सम्पादन हृदय करता है हृदय में ही यह व्यवस्था है कि उसके भीतर एक ओर से रक्त आता है तो दूसरी ओर जाने के लिये जो मार्ग है उसमें कपाट लगे हुए हैं उन कपाटों के कारण ही वह एक मार्गी बना रहता है। इसी से रक्त एक द्वार से आकर दूसरे द्वार से हृदय के संकोच विकास से ही धमनियों में पहुँचता रहता है। यदि हृदय का कार्य सम्पवत न होता तो रक्त का प्रवाह शरीर में कभी स्थिर रूप से नहीं रह सकता था। रक्त के प्रवाह को स्थिर रूप से बनाये रखने में हृदय का ही मुख्य हाथ होता है। जब हम कहते हैं कि हृदय धड़क रहा है तो इसका अर्थ यह है कि हृदय सिकुड़ता और फैलता है। उसी समय ही हृदय के भीतर से रक्त का धमनियों में धकेला जाना ही उसकी धड़कन है और जब धमनियों में धकेला जाता है उसी समय धड़कन होती है इस धड़कन का धक्का हम नाड़ी पर अंगुली रख कर देख लेते हैं। अर्थात हृदय की गति का पता हमें नाड़ी पर लगता रहता है। हृदय की गति अपने आप किस तरह से निरन्तर होती रहती है? इसका नियन्त्रण कौन करता है? इसका भी ठीक ठीक ज्ञान पूर्व के चिकित्सकों को नहीं हुआ था। उन लोगों का विचार था कि यह क्रिया वायु की प्रेरणा से होती है। किन्तु यह कोरा अनुमान था। इसमें सच्चाई की गंध तक नहीं थी। उस समय यह किसी को ज्ञात नहीं हुआ था कि शरीर में ऐसा भी कोई अंग है जो समस्त शरीर पर उसकी कार्य व्यवस्था को संचालन करने में उसका हाथ होगा। इसी ज्ञान की कमी के कारण शरीर के अनेकों कार्य व्यापारों को हम ठीक तौर नहीं जान सके थे।

उत्तमोत्तम आयुर्वेदिक एवं तिब्बी पुस्तकों पर पुरस्कार

आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकेडमी, उत्तर प्रदेश चालू वित्तीय वर्ष में हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओं के उत्तम आयुर्वेदिक एवं तिब्बी ग्रन्थों के लेखकों को २,३०० रु० के पुरस्कार वितरित करेगी। पुस्तकों को प्राप्त करने की अन्तिम तिथि ३१ अक्तूबर, १९५९ है। अतः लेखकगण निश्चित समय के अन्दर ही आयुर्वेदिक एवम् यूनानी चिकित्सा पद्धति की ऐसी पुस्तकें जो जनवरी १९५८ के पश्चात प्रकाशित हुई हों, की क्रमशः १२ एवं ३ निःशुल्क प्रतियां अध्यक्ष, आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, तुलसीदास मार्ग, लखनऊ के पते पर प्रेषित करने का कष्ट करें। पुरस्कार के लिये प्राप्त हुई पुस्तकों में से प्रत्येक की एक-एक प्रति, चाहे वह पुरस्कृत हो अथवा नहीं एकेडमी के पुस्तकालय में रख ली जावेगी। लेखकों को पुरस्कार सम्बन्धी नियमों का पालन करना होगा।

(द० अ० कुलकर्णी)
अध्यक्ष आयुर्वेदिक एवं तिब्बी एकेडमी उ० प्र०
तुलसीदास मार्ग, लखनऊ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भ का विकास कैसे होता है

गर्भ में बालक की वृद्धि किस क्रम से होती है इसको भी आयुर्वेदज्ञ ठीक तरह से नहीं जान पाये थे। हम सब यही समझते रहे कि जब गर्भाधान हो जाता है तो गर्भ अपने आप ही बढ़ता रहता है। १७ वीं सदी के अन्त में हालेन्ड के एक चिकित्सक दिग्राफ ने यह सुझाव रखा कि जिस तरह से पक्षी के अंडे की उत्पत्ति होती है ठीक इसी तरह से मानव प्राणी के रज वीर्य में अंडे के स्वरूप का प्रारूप कलल होता है। १८वीं शती के आरम्भ में हालेन्ड के एक दूसरे व्यक्ति लीवेन हुक-जो चश्मा बनाने का काम करता था उसने ऐसे चश्मे का शीशा तैयार किया जिससे छोटी चीजें बहुत बड़ी दिखाई देती थी उसने ही उस शीशे से एक बार अपने वीर्य को देखा तो उसमें उसे वीर्य कीट रेंगते नजर आये। उसने ही सबसे पूर्व यह घोषणा की कि मनुष्य के वीर्य में गर्भोत्पादक कीट होते हैं। उसकी इस घोषणा से चिकित्सक जगत में हलचल मच गई और उसके बाद जब सूक्ष्म दर्शक बनने लग गये तो इन वीर्य कीटों को अच्छी तरह से देखा जाने लगा। अंडों और वीर्य कीट का विवाद योरुप में कोई एक शताब्दी तक चलता रहा। उस काल में भारत का अन्य देशों के साथ ज्ञान विषय कोई आदान प्रदान नहीं होता था, इसी से उस समय के इस विवाद से भारत के चिकित्सक परिचित नहीं हो सके। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में आकर ही इस बात का सही ज्ञान हुआ कि शुक्र कीट और डिम्ब के सम्मेलन से गर्भाधान होता है और जब शुक्रकीट गर्भाशय में पहुँचते हैं तब ही डिम्ब अपने आशय से निकल कर उससे मिलता है तभी गर्भाधान होता है। जब यह मौलिक ज्ञान प्राप्त हुआ तो फिर इस बात की खोज आरम्भ हुई कि गर्भ में इनकी वृद्धि कैसे होती है। गर्भ में बालक की वृद्धि को देखने का कोई सरल उपाय तो था नहीं कि उसे देखा जाता। गर्भ वृद्धि को देखने समझने में बड़ी अड़चन यह थी उसकी वृद्धि ऐसे अन्धकार गुहा में होती थी जिसको किसी भी साधनों से देखा जाना कठिन काम था जब इस बात का पता चला कि समस्त संसार के प्राणियों का गर्भ विकास एक ही क्रम से चलता है तो वैज्ञानिकों ने गर्भ की स्थिति को समझने के लिये सर्वप्रथम पक्षियों के अंडों का अध्ययन आरम्भ किया। और अंडों के भीतर गर्भ की वृद्धि को देखते देखते उन्हें इस बात का सही ज्ञान हो गया कि गर्भ धारण होने के बाद वीर्य कीट जब डिम्ब को घेर कर उससे लिपट जाता है तो दोनों ही मिल कर एक रूपता को प्राप्त कर लेते हैं तब वह एकाकार हो जाते हैं। उस स्थिति में फिर उस गर्भ के कलल से विभाजन पद्धति के द्वारा एक से दो और दो से चार में विभक्त होने लगता है। इस तरह से गर्भ विकास आरम्भ हो जाता है। १९वीं शती के मध्य में आ कर तो शल्य कर्म की काफी उन्नति हो चुकी थी और अनेकों शल्य चिकित्सकों को ७वें और ८वें मास के गर्भ जब किसी कारण से निकालने पड़े तो उस समय इनको देखने और उनके स्वरूप से गर्भ की स्थिति का अध्ययन करने के लिये साधन मिलते चले गये और उन सब प्रयासों के परिणाम स्वरूप १९१२ ई० में विलहेल्महिस ने एक छोटी सी पुस्तक गर्भ विज्ञान पर प्रकाशित की और उसी के आधार पर आगे के चिकित्सकों ने इसे और आगे बढ़ाया।

गर्भ धारण के पश्चात गर्भ का विकास कैसे होता है? जब गर्भाशय में गर्भ कारी वीर्य कीट पहुँच जाते हैं और डिम्ब को घेर कर वह उससे लिपट जाते हैं तब दोनों ही कुछ घंटों में परस्पर मिल कर तदाकार हो जाते हैं। उस समय डिम्ब का आकार बढ़ने लगता है और वह बढ़ कर अपने आकार से पचास गुणा और अपने शरीर भार से कोई हजार गुणा तक बढ़ जाता है जिसमें वीर्य कीट का सिर से ले कर पूँछ तक का सारा भाग उस डिम्ब में समा जाता है किन्तु उस वीर्य कीट के डिम्ब में तन्मय हो जाने पर वह अपना अस्तित्व बनाये रखता है और वह अपने प्रधानत्व को कभी नहीं त्यागता। उस वीर्य कीट में समस्त पैत्रिक गुण कहाँ पर विद्यमान रहते हैं? जो गर्भ अपने माता पिता के अनुरूप बनने लगता है इसकी सूक्ष्मता से खोज बीन हुई है।

वीर्य कीट के भीतर क्या क्या अंश विद्यमान हैं

वीर्य कीट के अन्दर जो द्रव भरा होता है उस जैवाद्यम रस में एक केन्द्र बिन्दु होता है उस केन्द्र बिन्दु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस पास संस्कारी कणिकाओं की एक माला फैली होती है। जिसमें २४ कणिकाएं पिरोई होती हैं। इनका सूत्र उस जीवन रस से ही निर्मित होता है। यह संस्कारी कणिकाओं से युक्त केन्द्र बिन्दु ही पैत्रिक संस्कारों की समस्त सम्पत्ति होती है। इन्हीं संस्कारी कणिकाओं के भीतर उस प्राणी की आंगिक रचना और प्रकृति स्वभाव आदि के समस्त संस्कार व्यापक रहते हैं। इन केन्द्र बिन्दु के साथ वह संस्कारी कणिकाएं आगे किस तरह कोषाओं में विभाजित होती हैं और उनसे अंगों प्रत्यंगों की रचना किस तरह होती है? इसको अच्छी तरह से देखा व समझा गया है। जब कलल का रूप बनता है अर्थात् वीर्य कीट और डिम्ब दोनों ही मिलकर एकाकार हो जाते हैं उन दोनों के केन्द्र बिन्दु और संस्कारी कणिकाएं भी परस्पर मिलकर प्रथम एक रूप हो जाते हैं। जब उक्त दोनों एक रूपता को प्राप्त कर लेते हैं उस समय ही डिम्ब आकार में बढ़ता है और अपने आकार से पचास गुणा तक बढ़ जाता है उस समय जब इसकी पूर्ण वृद्धि होती है तो वह कलल मय केन्द्र बिन्दु और संस्कारी कणिकाओं के दो भागों में विभक्त हो जाता है। उनके भीतर का समस्त जैवाद्यम अपने समस्त अंशों को लेकर एक से दो और उन दो कोषाओं से चार बनते जाते हैं और उन चार कोषा से आगे विभक्त होकर आठ बन जाती हैं। वह बराबर द्विगुण में विवर्धित होते चले जाते हैं। और पैत्रिक संस्कारों की उनमें जो कणिकाएं होती हैं उन्हीं के आधार पर उस गर्भ के आकार का प्रादुर्भाव होता है। इन पैत्रिक संस्कारों की स्थिति का महत्त्व यहीं तक नहीं है प्रत्युत यह संस्कार विधान के प्रभाव से शरीर के एक एक कण के निर्माण तथा स्थापन का कार्य इसी के प्रभाव से आगे चलते रहते हैं। यह कलल एक सप्ताह से पूर्व ही इस वेग से वृद्धि करता है कि वह एक छोटे गेंदवत् मांस का लोथड़ा बन जाता है जिसे अंगरेजी में मौर्युला कहते हैं।

यद्यपि एक सप्ताह के गर्भ को मृत माताओं का गर्भाशय चीर कर ही देखा जा सका है और उससे उस स्थिति का ज्ञान हुआ, किन्तु अन्य साधनों से अब तक कम आयु के गर्भ को जो देखा गया है यह ११–१२ दिन की आयु का होगा। इससे पूर्व के गर्भ को बन्दरियों, चिपैंझी आदि मानव सदृश्य प्राणियों के गर्भाशय को चीर कर बहुत कुछ समझा गया है।

एक सप्ताह तक अनवरत गर्भ वृद्धि होने के बाद जब वह मांसपिंड आकृति बनने की स्थिति में होता है तो फिर वह गर्भाशय की दीवार के पास आ जाता है और अपनी स्थिति दृढ़ करने का प्रयत्न करता है। यह समय ८–१० दिन के मध्य होता है। जब वह गर्भाशय की दीवार के पास आता है उस समय उस गर्भ पिण्ड के मध्य में गहराई आने लगती है और वह धीरे धीरे उस गहराई में से कोषाओं की वृद्धि होकर उससे उभार बन जाता है उसमें से गर्भ नाल निकलती है। गर्भाशयाच्छनीं कला जो गर्भ को आच्छादन करती है उससे बढ़ कर लग जाती है। यह पोल मार्ग जब तक पूर्णतया नहीं बन जाता वह बढ़ती रहती है। जब तक इस नाल की रचना में अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। और उस नाल से लगा आच्छादक फैलता चला जाता है। वह गर्भ को अपने भीतर ले लेता है। इस नाल से लगा और अपरा का एक सिरा फिर गर्भ से चिपक कर उससे तन्मय हो जाता है और उस अपरा के संलग्नित किनारों की कोषाएं धीरे-धीरे बदलती हुई रक्त वाहनियों के रूप में आ जाती हैं जिनके मार्ग से रक्त का प्रवाह गर्भ के भीतर होने लगता है। अपरा और नाल की स्थापना गर्भ धारण के दसवें दिन से आरम्भ होकर दो सप्ताह में पूर्ण हो जाती है फिर उसके मार्ग से रक्ताभिसरण होने लगता है।

माता के गर्भ में यह परिवर्तन कैसे होते हैं?

प्रयोगों से जाना है कि स्त्री के गर्भित होने पर पीयूष ग्रन्थि के अग्रिम भाग से एक विशेष गर्भ सम्वर्धक ओज का अन्तः स्राव बढ़ जाता है। इस ओज के आधिक्य से गर्भाशय उत्तेजित होकर उसके अन्दर की कोषाएं विशेष क्रियाशील बन जाती है और उस दशा में गर्भाशय के भीतर रक्त वितरण भी अधिक मात्रा में होता है। और गर्भ की दीवारें रक्त से सदा परिपूर्ण रहती हैं। यह सब विधान अन्योन्याश्रयी शरीर के ओजाश्रित होते हैं।

कुछ गर्भाशय की कोषाएं रक्त चाप के प्रभाव से फट कर उनके मुख खुल जाते हैं वही कोषाएं उस गर्भ पिण्ड के आस पास जम कर व विवर्धित होकर अपरा के रूप में परिवर्तित होने लगती हैं इन्हीं से तो अपरा की दीवार उस गर्भ के आस पास चारों ओर से एक साथ बढ़ कर उसे घेर कर अपने भीतर कर लेती है। इससे गर्भ उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरा से ढक जाता है। इसी अपरा का सम्बन्ध उस नाल से जुड़ जाता है जो गर्भ के मध्य भाग से निकलता है। इस गर्भ नाल में से रक्त का आदान प्रदान का मार्ग जब प्रस्तुत हो जाता हैं तो फिर इसी मार्ग से गर्भ के लिए आहार, ऊष्मजन वायु आदि पहुँचते रहते हैं।

प्रयोगों से देखा गया है कि अग्रिम पीयूष ग्रन्थि के एक विशेष गर्भ सम्बर्धक ओज के प्रभाव से उस अपरा में गर्भ पोषण व संरक्षण की विशेष शक्ति ऐसी आ जाती है जो उस गर्भ की रक्षा में महत्व का पार्ट अदा करती है। यह अपरा गर्भ संरक्षण में बड़े महत्व का योग देती रहती है वह सदा ध्यान रखती है कि कौन से द्रव्य गर्भ तक जाने दिये जायँ, किन्हें रोका जाय जो द्रव्य अयोग्य होते हैं उनको यह भीतर पहुँचने नहीं देती, बाहर ही रोक लेती है। गर्भ पिण्ड की तीन सप्ताह की आयु होने तक यह गर्भाशय का पाँचवां भाग घेर लेती है। और गर्भ के दो मास व्यतीत होने पर गर्भाशय के तीसरे भाग तक फैल जाती है। पाँच मास का गर्भ होने पर गर्भाशय का आधा भाग इस अपरा से घिर जाता है। इसके बाद इसका विस्तार रुक जाता हैं और वह फिर मोटाई के रुख बढ़ने लगती है और दृढ़ होती चली जाती है।

त्वचाओं का आविर्भाव—जिस समय अपरा गर्भ नाल का विकास होता हैं उसके साथ ही गर्भ पिण्ड पर उसके एक ओर दो खोखले छिद्रों का आविर्भाव होता है उसी समय गर्भ पिण्ड में एक ओर सिर और पूंछ का आकार बनता है। यह स्थिति गर्भ से ११-१२ वें दिन आती है। इन दिनों इसका एक स्थान कुछ स्थूल होने लगता हैं यह गर्भ क्षेत्र कहलाता है। इस गर्भ क्षेत्र में एक सूक्ष्म लकीर सी बनती है इसी लकीर पर पृष्ठवंश और गर्भ शरीर बनता है। इसे बाह्य आवरक कहते हैं। इस पर फिर चारों ओर से एक पतली त्वचा की दोहरी थैली बनने लगती है जिसमें विशेष प्रकार का तरल भरने लगता है धीरे धीरे इसका आकार और द्रव की मात्रा बढ़ती हैं जिसके मध्य में गर्भ पिण्ड पड़ कर तैरने लगता है। यह तरल उस गर्भ की आघात से रक्षा करता है। गर्भ की यह द्रव मग्न अवस्था प्रसव काल तक बनी रहती है। प्रसव होने के समय यह गर्भ रक्षक थैली फट जाती है प्रसव के पूर्व यह सारा तरल योनिमार्ग से बाहर निकल जाता है। बाद में अपरा के साथ यह फटी थैली भी निकल जाती है।

प्राणियों के विकास क्रम में यह देखा गया है कि केंचुवे से लेकर मानव प्राणी तक प्रत्येक जीव के गर्भ में प्राथमिक त्वचा से लेकर अन्तिम त्वचा तक का क्रम और उनकी व्यवस्था एक जैसी देखी जाती है। जब गर्भ द्रव प्लावित हो जाता है तो उसकी मध्य त्वचा के ऊपर कुछ कोष्ठ युक्त धब्बे से प्रकट होते हैं। इन कोष्ठों में प्राथमिक रक्त द्वीप का विकास होता है। तीसरे सप्ताह के आरम्भ होते ही यह रक्त पूर्ण धब्बे, रक्त द्वीप बनते चले जाते हैं। और मध्यवर्ती त्वचा से आच्छादित इन रक्त द्वीपों से लग कर रक्तवाही नलिकाओं का प्रादुर्भाव होने लगता हैं जिसके मध्य यह रक्त द्वीप आ जाते हैं। यह रक्तवाही नलिकाएं परस्पर मिलकर मोटी नली का आकार धारण कर लेती हैं। यही छोटी सी रक्त पूर्ण नली हृदय का आरम्भिक रूप होता है। जो विकसित होकर हृदय का आकार धारण करता है। हृदय का आकार जब नली के रूप में बनता है साथ ही उसमें कपाट भी निर्मित होने लगते हैं कपाटों के बनते ही उसमें धड़कन आरम्भ हो जाती है और रक्त संचार के लिये उसके आस पास जो क्षेत्र धमनिकाओं का बनता है उसमें उसका आवागमन आरम्भ हो जाता है। जब रक्ताधार हृदय का विकास होता है उसी के साथ नाडी संस्थान का विकास भी आरम्भ हो जाता है और जिधर गर्भ पिण्ड का सिर होता है उधर एक टिकिया के आकार में नाड़ी मण्डल से संलग्न उस टिकिया से मस्तिष्क का विकास होता है और स्नायु की एक नलिका से मेरु दण्ड में सुषुम्ना का विकास होता है यह विकास गर्भ धारण के २२-२६ दिन के मध्य हो जाता है। इसी से फिर नाड़ियों के ३१ जोड़े उसमें से निकल कर समस्त शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। और वह टिकिया कुछ दिन में मस्तिष्क के आकार में बदल जाती है। और हृदय मस्तिष्क इन दो प्रधान अंगों के विकास के साथ ही शरीर के समस्त अंगों का विकास होता रहता है।

जब यह दोनों अंग बन जाते हैं तो इसके बाद आहार नलिका या अन्न प्रणाली का विकास गर्भ पिण्ड के मध्य में होने लगता है। प्रथम यह एक पोली नलिका के रूप में प्रकट होती है। फिर इसका विस्तार होकर इसके

[शेष पृष्ठ १३१ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य भोज्यांश

अस्रजन (प्रोटीन)

लेखक—कविराज गौरीलाल चानना बी. ए. वैद्य वाचस्पति

आहार के कार्य:—हम नित्य प्रति चलते फिरते हैं, दौड़ते भागते हैं, आवश्यकता पड़े तो बोझ आदि भी उठाते हैं, इन सभी कामों के लिये जो शक्ति व्यय होती है, वह कहां से आती है? यह सभी जानते हैं कि यह शक्ति हमें आहार द्वारा प्राप्त होती है। यदि कुछ दिन भोजन न करें तो काम करने की हमारी यह शक्ति लुप्त होने लगती है और हम चलने फिरने में असमर्थ हो जाते हैं। और अधिक उपवास से शरीर के जीवधारक आन्तरिक अंगों, हृदय, मस्तिष्क, यकृत आदि की कार्य शक्ति भी क्षाण होने लगती है जिसका अन्तिम परिणाम मृत्यु तक हो सकता है।

उपवास का दूसरा प्रभाव यह होता है कि हमारा शरीर दुबला पतला हो जाता है। एक बालक जब जन्म लेता है तो छोटा सा होता है। कुछ ही वर्षों में वह धीरे-धीरे बढ़ता हुआ ५-६ फुट के जवान का रूप धारण कर लेता है। स्पष्ट है कि शरीर की यह वृद्धि भी भोजन ही के द्वारा होती है। भोजन न मिले तो बालक हो चाहे युवा क्या उसका शरीर बढ़ सकेगा? कदापि नहीं। भोजन के बिना शरीर की वृद्धि तत्काल रुक जायगी। यही नहीं प्रत्युत शरीर पहले से भी दुबला पड़ने लगेगा। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि भोजन के अभाव में शरीर में पूर्व विद्यमान धातुयें रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि आदि क्षीण होने लगेंगी अर्थात उन में कमी होना आरम्भ हो जायगी।

इससे स्पष्ट है कि शरीर में भोजन के दो मुख्य कार्य हैं।

१. शरीर के भीतरी और बाह्य क्रिया व्यापार के लिये आवश्यक शक्ति उपलब्ध कराना।

२. शरीर में प्रतिक्षण क्षीण हो रही धातुओं की क्षति पूर्ति करना एवं नवीन धातु कोषाओं का निर्माण कर शरीर की वृद्धि करना।

तीन भोज्यांश—जो कोई भी खाद्यपेय द्रव्य हम आहार के रूप में लेते हैं, रासायनिक गठन की दृष्टि से उन्हें तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। १, कज्जलोदेत। २. स्नेही। ३. अस्रजन। कज्जलोदेत की श्रेणी में निशास्ता शर्करा युक्त पदार्थ आटा, चावल, आलू, शकरकन्दी, चीनी आदि आते हैं। यह सभी पदार्थ शरीर के कार्यकलाप सम्पादन के लिये आवश्यक ताप अर्थात शक्ति (वैज्ञानिक दृष्टि से शक्ति ताप का ही रूपान्तर है). उपलब्ध कराते हैं।

दूसरी श्रेणी में मक्खन, घी, तेल आदि वसायुक्त पदार्थ आते हैं। इन में तापोत्पादन क्षमता कज्जलोदेत और अस्रजन से दुगनी है। इन का कार्य भी शरीर को शक्ति उपलब्ध कराना है। साथ ही यह शरीर की स्नेही घुलनशील खाद्योजांश ए. डी. और ई सम्बन्धी आवश्यकता की भी पूर्ति करते हैं। यदि आवश्यकता से अधिक भोजन निरन्तर लिया जाता रहे तो उस का फालतू भाग इसी स्नेही रूप में ही शरीर में संचित हो जाता है जैसा कि स्थूल व्यक्तियों में हम देखते हैं।

तीसरी श्रेणी का भोज्यांश अर्थात अस्रजन भोजन का एक अत्यन्त आवश्यक एवं अनिवार्य अंग है। शरीर की वृद्धि एवं धातुओं की नई कोषाओं का निर्माण इसी भोज्यांश से होता है। इसके अभाव अथवा न्यूनता में शरीर की वृद्धि रुक जाती है। यदि आहार के कज्जलोदेत एवं स्नेही अंश शरीर की शक्ति सम्बन्धी आवश्यकता के लिये अपर्याप्त हों तो अस्रजन से भी तापोत्पत्ति हो सकती है परन्तु ऐसी स्थिति में अस्रजन का वास्तविक कार्य अर्थात् नव कोषाओं का निर्माण रुक जाता है। इस सम्बन्ध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि शक्ति उत्पादक भोज्यांशों (कज्जलोदेत एवं वसा) की कमी होने पर शरीर की यह आवश्यकता अस्रजन द्वारा पूरी हो सकती है, परन्तु अस्रजन के नव कोषा निर्माण कार्य को किसी भी परिस्थिति में अन्य कोई भोज्यांश सम्पन्न नहीं कर सकता। इससे स्पष्ट है कि अस्रजन आहार का ऐसा अंग है जिसका कोई विकल्प नहीं और जो अनिवार्य है यद्यपि इसके साथ शरीर की शक्ति आवश्यकता के अनुरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कज्जलोदेत एवं वसा का आहार में इसलिये सम्मिलित करना आवश्यक है ताकि अस्रजन का व्यय शक्तयुत्पादन में न हो कर अपने वास्तविक कार्य में हो।

अस्रजन के स्रोत—हमें अस्रजन मुख्यत: दालों, मांस, अण्डे, दूध, दही, पनीर एवं कुछ मात्रा अनाजों आदि से प्राप्त होती है। (किस २ भोज्य पदार्थ में कितनी अस्रजन विद्यमान होती है, इसका विवरण लेख के अन्तिम भाग में दी तालिका में देखें) प्रत्येक पदार्थ में पाई जाने वाली अस्रजन अन्य पदार्थ की अस्रजन से भिन्न प्रकार की होती है। इसलिये प्राय: इनके नाम भी भिन्न २ होते हैं। उदाहरण के लिये गेहूँ में पाई जाने वाली अस्रजन को गोधूमीन, दूध वाली को दुग्धीन (casein), मांस वाली को मायोसीन (Myosine), अन्डे वाली को सितीन (albumin) आदि २। शरीर के लिये विभिन्न अस्रजनों कीं उपयोगिता भी भिन्न २ होती है।

मूल स्रोत के आधार पर अस्रजन को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

१. वानस्पतिक—गेहूँ, दालों, शुष्क फलों आदि से प्राप्त होने वाली।

२. प्राणिज—दूध, दही, माँस, अण्डे, मछली आदि से मिलने वाली।

इन में से प्राणिज अस्रजन शरीर के लिये अधिक अनुकूल एवं उपयोगी होती है क्योंकि जीवित प्राणियों से प्राप्त होने के कारण मनुष्य शरीर में विद्यमान अस्रजनों के अधिक समान धर्मी है। वानस्पतिक अस्रजनों का सात्म्यीकरण शरीर में उतना नहीं हो पाता जितना प्राणिज अस्रजनों का। इसलिये आदर्श स्वास्थ्य के लिये भोजन में अस्रजन का अधिक से अधिक भाग प्राणिज अस्रजन के रूप में सम्मिलित करना बाँछनीय है।

कोई विशेष अस्रजन शरीर के लिये अपेक्षाकृत कितनी अनुकूल है, इस प्रति शतकता को प्रयोगों द्वारा निश्चित रूप से जांचा गया है और इसे अस्रजन का जैव रासायनिक मूल्य (Biological value) का नाम दिया गया है। जैव रासायनिक मूल्य जितना अधिक हो, उस अस्रजन को शरीर के लिये उतना ही अधिक अनुकूल समझना चाहिये। जैवरासायनिक मूल्य का उल्लेख भी आगे तालिका में दिया गया है।

अस्रजनों की सूक्ष्म रचना—रासायनिक दृष्टि से अस्रजन एक बहु अस्रजिद् (poly peptide) यौगिक है जिस की रचना विभिन्न प्रकार के अमीनो अम्ल अणुओं के शृंखला बद्ध संयोग से होती है। दो अमीनों अम्लों के मध्य विद्यमान शृङ्खला को अस्रिजिद् बन्ध (peptide bond) कहते हैं। अमीनो अम्ल स्वयं कई प्रकार के होते हैं, इन्हीं के संयोग भेद से ही भिन्न २ प्रकार की अस्रजनों की रचना होती है। यों तो सभी अमीनो अम्ल उत्तम स्वास्थ्य के लिये नितान्त आवश्यक हैं परन्तु इन में से कुछ अमीनो अम्ल ऐसे हैं जिनका संश्लेषण शरीर के भीतर ही अन्य रासायनिक द्रव्यों से हो सकता है अत: यह अपने असली रूप में भोजन में विद्यमान न हों तो भी पोषण की दृष्टि से विशेष अधिक अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु कुछेक अमीनो अम्ल ऐसे भी हैं जिनका शरीर के भीतर निर्माण किसी हालत में सम्भव नहीं, अत: अपने वास्तविक रूप में उनका भोजन में विद्यमान होना स्वास्थ्य की दृष्टि से अनिवार्य है। इसलिये इन अमीनो अम्लों को अनिवार्य अमीनो अम्ल कहते हैं। अनिवार्य और साधारण दोनों प्रकार के अमीनो अम्लों की सूची निम्न है।

अनिवार्य अमीनो अम्ल	साधारण अमीनो अम्ल
ल्यूसीन	एलेनीन
आईसो ल्यूसीन	ग्लाईसीन
मीथियोनीन	ग्लूटैमिकाम्ल
लाईसीन	उदूष्मोग्लूटेमिकाम्ल
फेनाइलालेनीन	एस्पार्टिकाम्ल
ट्रिप्टोफान	सिस्टाईन
थ्रियोनीन	सिस्टीन
वैलीन	टाइरोसीन
*हिस्टिडीन	प्रोलीन
*आरजिनीन	उदूष्मी प्रोलीन
	सेरीन
	नारल्यूसीन
	सिट्रुल्लीन

अनिवार्य अमीनो अम्लों में से अन्तिम दो चूहे आदि प्राणियों के लिये अनिवार्य हैं, मनुष्यों के लिये नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर में अस्रजन उपभोग का अध्ययन—बाहर से अस्रजन जिस रूप में हम खाते हैं, उसी रूप में वह शरीर का भाग नहीं बन जाती। वह पहले आमाशय, अन्त्र, क्लोम आदि के रसों एवं विकरों से प्रभावित हो अमीनो अम्लों के रूप में विघटित होती है पश्चात् यह अमीनो अम्ल पुनः विशेषानुपात में संयुक्त हो कर शरीर के भीतर मांस, रक्त, अस्थि आदि की भिन्न २ अस्रजनों का रूप धारण कर उस उस धातु का विकास एवं वृद्धि करते हैं।

प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि शरीर में अस्रजनों के सम्यक् एवं समुचित संश्लेषण के लिये अनिवार्य एवं साधारण सभी प्रकार के अमीनो अम्लों की विद्यमानता एक आदर्श अनुकूल परस्थिति है। वास्तव में जिस विशेष अस्रजन का निर्माण होना हो उसके घटक सभी अमीनो अम्ल एक साथ विद्यमान हों तभी उस के संघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो सकती है अन्यथा नहीं। शरीर में कई प्रकार की अस्रजनें विद्यमान हैं अतः स्वास्थ्य संरक्षण की दृष्टि से आहार में अधिक से अधिक प्रकार की अस्रजन सम्मिलित करना वांछित है ताकि अधिक से अधिक अमीनों अम्ल शरीर के भीतर पहुँच पायें।

प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि यदि चूहों के एक दल को एक ऐसा आहार दिया जाय जिसमें केवल सभी अनिवार्य अमीनो अम्ल विद्यमान हों और दूसरे दल को ऐसा आहार दें, जिसमें साधारण तथा अनिवार्य दोनों प्रकार के सभी अमीनो अम्ल विद्यमान हों तो पहले दल की शरीर वृद्धि दूसरे दल की अपेक्षा कम (लगभग ७०-७५%) होती है इससे स्पष्ट है कि पोषण की दृष्टि से साधारण अमीनों अम्ल भी अपना महत्व रखते हैं यद्यपि वह अनिवार्य अम्लों की अपेक्षा कुछ कम है।

अनिवार्य अमीनो अम्लों के सम्बन्ध में भी चूहों पर प्रयोग किये गये हैं। एक दल के चूहों को सभी अनिवार्य अम्लों के मिश्रण युक्त आहार एक साथ दिया गया। दूसरे दल को पांच अमीनो अम्लों का मिश्रण एक समय दिया गया और शेष पांच का मिश्रण एक घण्टा बाद दिया गया। कुछ दिन बाद देखा गया कि दूसरे प्रकार के चूहे दुर्बल हो गये। कारण यह है कि प्रयोग काल में में उनके शरीर के भीतर नवीन अस्रजन का निर्माण अपेक्षाकृत कम मात्रा में हुआ। इससे सिद्ध है कि शरीर के भीतर सभी अनिवार्य अमीनो अम्लों की एक साथ विद्यमानता होने पर ही शरीरास्रजनों की रचना सम्यकतया हो सकती है।

कुछ अन्य प्रयोगों में चूहों को पहले ऐसे आहार पर रखा गया जिसमें उनकी अस्रजन आवश्यकता की पूर्ति गोधूम अस्रजन से की जाती थी। पश्चात उनकी आधी आवश्यकता गोधूम अस्रजन से और आधी चावल की अस्रजन से पूरी की जाने लगी। कुछ दिन बाद निरीक्षण से देखा गया कि उपरोक्त परिवर्तन कर देने पर चूहों के वृद्धि क्रम में ११४% की वृद्धि हो गई और उनके सम्पूर्ण अस्रजन उपभोग में ८६ % की वृद्धि हुई। इससे परिणाम यह निकाला गया कि चावल की अस्रजन में कुछ ऐसे अमीनो अम्ल विद्यमान हैं जो गोधूमास्रजन में नहीं। दोनों पदार्थों को मिला देने से वह एक दूसरे के पूरक का काम करते हैं और मिश्रण में सभी आवश्यक अमीनो अम्ल विद्यमान हो जाते हैं अतः इस मिश्रण की उपयोगिता में एकाएक इतनी आश्चर्यजनक वृद्धि हो जाती है। इस प्रयोग से भिन्न २ प्रकार की अस्रजनों को एक साथ मिला कर खाने की उपयोगिता सिद्ध हैं।

तालिका

भोज्य पदार्थ	अस्रजन की प्रतिशत मात्रा	अस्रजन का जैवरासायनिक मूल्य
गेहूँ	१२.०%	६७
जौ	११.६ ,,	७१
चना	१७.१ ,,	७६
चावल	६.७ ,,	८६
मूंग	२४.० ,,	५१
मसूर	२५.० ,,	५८
अरहर	२२.३ ,,	७४
सोयाबीन	४३.२ ,,	५४
अण्डा मुर्गी का	१३.५ ,,	९४
मांस बकरी का	१८.५ ,,	६०
बादाम	२०.८ ,,	५८
मूंगफली	२६.७ ,,	५७
आलू	१.६ ,,	६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौ का दूध	३.३ ,,	८५
पनीर	२४.१ ,,	८५

अस्रजन के सम्बन्ध में कुछ व्यवहारिक स्मरणीय बातें

१. अन्नों में अस्रजन १०–१२% के लगभग होता है, दालों और माँस में २०–२५% और पनीर में भी २५% के लगभग है।

२. अन्न शाक और दालें तो प्रायः सभी लोग लेते ही हैं, पर मांसाहारियों में मांस के रूप में भी अस्रजन की पर्याप्त मात्रा उनके शरीर को उपलब्ध होती रहती है जिससे उनकी धातुयें शाकाहारियों की अपेक्षा अधिक पुष्ट एवं संवृद्ध होती हैं। यही कारण है कि पठान अंग्रेज आदि मांसाहारी जातियों के लोगों का डील डौल शाकाहारियों की अपेक्षा बड़ा होता है। पनीर में २४% अस्रजन विद्यमान हैं, यदि शाकाहारी अपने भोजन में पनीर का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करें तो उनके आहार में माँस के अभाव की भली भाँति पूर्ति हो सकती है। सोयाबीन में अस्रजन की प्रतिशतकता सर्वाधिक है। इसका आटा अलग अथवा गेहूँ के आटे में मिलाकर प्रयोग करना भी शाकाहारियों के लिये विशेष श्रेयस्कर होगा।

३. अनुकूलता की दृष्टि से दूध और अण्डे की अस्रजन सर्वोत्तम है। मांस और अन्न अस्रजनों का नम्बर उसके बाद है। मांस अस्रजनों में उपयोगी अमीनो अम्ल एक साथ उपलब्ध हो जाते हैं, इसलिये इस दृष्टि से यह अन्नों, दालों की अपेक्षा उत्तम माना जाता है।

४. दूध की अस्रजन यद्यपि उत्तम कोटि की है पर जलीयांश अधिक होने से दूध में उसकी कुल मात्रा बहुत थोड़ी है। अतः केवल दूध के सहारे रहने पर शरीर को अस्रजन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाती।

५. शाकों, फलों में अस्रजन की मात्रा बहुत अल्प, नगण्य होती है। शाकों फलों की उपयोगिता उनमें विद्यमान खनिज लवणों और खाद्योजांशों के कारण है।

६. सभी भोज्यांशों में से केवल अस्रजन ही ऐसा भोज्यांश है जो नव कोषाओं का निर्माण कर शरीर धातु वृद्धि करने में समर्थ हैं। अतः भोजन में पर्याप्त अस्रजन तो लेना ही चाहिये पर उसके साथ कज्जलोदेत एवं स्नेही पदार्थ भी काफी मात्रा में लेने चाहियें ताकि अस्रजन का उपयोग शक्ति उत्पादन के लिये न होकर उसका अधिक से अधिक भाग धातु निर्माण के लिये प्रयुक्त हो सके जैसा कि लेख के आरम्भ में कहा गया है। युवा व्यक्ति के लिये प्रतिदिन ७० ग्राम अस्रजन का प्रयोग पर्याप्त है।

७. शरीर की अस्रजन सम्बन्धी आवश्यकता का अधिकांश भाग प्राणिज अस्रजनों से पूरा करना चाहिये क्योंकि वह शरीर के अधिक अनुकूल हैं। शेष भाग अस्रजन युक्त अधिक से अधिक पदार्थों के एक साथ प्रयोग से पूरा करना चाहिये ताकि अधिक से अधिक संख्या में अमीनो अम्ल एक साथ शरीर को उपलब्ध हों और शरीर में अस्रजन संघटन की प्रक्रिया आसानी और तेजी से चल सके।

———

[शेष पृष्ठ १२७ का]

वास्तविक आकार उस नली में विकसित होते चले जाते हैं। और उस नली का विकास होता हुआ उसका अग्र भाग बढ़ता चला जाता है जो शीर्ष की ओर पहुँच कर गर्भ पिण्ड में एक ओर खुल जाता है जो उसका मुख द्वार होता है इसी तरह उस नली का गर्भ पिण्ड के दूसरी ओर बढ़ते जाने पर जहां पर गर्भ के बाहर उसका द्वार खुलता है वह गुद द्वार बन जाता है इसके बाद इस गर्भ पिण्ड में एक और नली का प्रादुर्भाव होता है जो अन्त्राशय के अग्र भाग से लगी प्रकट होती है यह हृदय के ठीक पीछे होती है। फुफ्फुस का यह प्रारम्भिक रूप होता है इसके साथ ही दूसरी ओर यकृत के प्राथमिक आकार का भी प्रादुर्भाव हो चुकता है। और वृक्कों के चिन्ह भी दोनों ओर उस पिण्ड में प्रादुर्भूत हो जाते हैं इस एक मास के गर्भ पिण्ड को देखने पर कोई व्यक्ति इसकी आकृति को देख कर यह नहीं बतला सकता कि यह गर्भ पिण्ड किस प्राणी का है। क्योंकि समस्त स्तन पायी प्राणियों के गर्भ भ्रूण इस स्थिति तक बिलकुल एक ही आकार प्रकार में बढ़ते हैं और सबों की रचना रूप एक जैसे ही होते हैं। इस प्रारम्भिक गर्भ भ्रूणों को देख कर ही इस बात का पता चलता है कि समस्त प्राणियों का जिस तरह एक रूपत्व गर्भ में देखा जाता है यह एक रूपता इस बात का प्रमाण है कि इन समस्त प्राणियों का विकास एक ही आदिवंश से हुआ है। यही पुष्ट प्रमाण विकास वाद के लिये इतनी बलिष्ठ साक्षी रखते हैं जिसका खण्डन किसी तर्क की शैली से होना सम्भव नहीं। मनुष्य भी इन स्तन पायी प्राणियों की शृंखला का एक प्राणी है जो बौद्धिक विकास के बल पर अपने उन भाई बन्धुओं से दूर हो गया है। वरना उनसे इनका कोई अन्तर नहीं। (क्रमशः)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि सम्बन्धी विज्ञान में उन्नति

आज से एक शताब्दी पूर्व जब किसी व्यक्ति को दूर की चीज या पास की चीज साफ नहीं दिखाई देती थी तो किस त्रुटि के कारण नेत्र में यह अन्तर पड़ गया है? इसके समझने के कोई साधन नहीं थे। फिर कुछ अर्से के बाद एक चार्ट बना कर उससे नेत्र दृष्टि की स्थिति को समझने का प्रयत्न होने लगा। १९वीं शताब्दी के आरम्भ में चश्मे बाजार में आ गये थे। और कोई व्यक्ति अपने लिये ऐनक चाहता था तो उन चश्मों को आँखों पर चढ़ा चढ़ा कर देखता रहता था जो उसकी दृष्टि के अनुकूल पड़ जाता वही ऐनक वह लगा लेता था और अपना जैसे तैसे काम निकालता था। किन्तु धीरे धीरे नेत्र विज्ञान में उन्नति हुई और आज इसमें काफी सुधार हो गये हैं।

अब नेत्र की रचना को सही तौर पर समझ लिया गया है। हम सब तो आज तक यह मानते चले आ रहे हैं कि नेत्र हमारी ज्ञानेन्द्रियों में से एक ज्ञानेन्द्रिय है और इसे देखने का ज्ञान आत्मा के द्वारा होता है। किन्तु बात ऐसी कुछ नहीं हैं। हमारे नेत्रगोलक में पुतली के पीछे एक ताल लगा होता है। उस पुतली के मार्ग से प्रकाश, की किरणें भीतर जाकर उस ताल पर पड़ती हैं और फिर कृष्ण पटल से जा टकराती हैं जहां दृष्टि नाड़ी का जाल बिछा होता है उस कृष्ण पटल पर प्रकाश के टकराने से जिस दृश्य पर पड़कर वह प्रतिफलित हुआ है उसका बिम्ब उस पटल पर बन जाता है जो दृष्टिक नाड़ी के मार्ग से उस आकार का बोध मस्तिष्क को होता है और उससे हम उस पदार्थ की आकृति का बोध कर लेते हैं। यह मध्यवर्ती ताल जब प्रकाश के आरपार जाने के समय ठीक काम नहीं करता तभी उसका प्रतिबिम्ब कृष्ण पटल पर पूरा नहीं बनता। इसी खराबी के कारण वस्तु का रूप ठीक नहीं दिखाई देता। इसके आरम्भ में चार प्रकार जाने गये थे। (१) निकट दृष्टि (२) दूर दृष्टि (३) वैषम्य दृष्टि और (४) युगुल दृष्टि। यह समस्त विकार आजकल ऐनक लगाने से दूर हो जाते हैं।

आज से ४५ वर्ष पूर्व अमेरिका के नेत्रविशेषज्ञों ने एक पांचवें नेत्र रोग का और आविष्कार किया था भिन्न बिम्ब दृष्टि। इसमें मनुष्य को एक ही दृश्य के दो असमान रूप दिखाई देते हैं। यह तारामण्डल का विकार होता है। दृष्टि नाडी देखने का प्रयत्न अवश्य करती है कि दोनों नेत्रों के दृश्य रूप को एक बनाने का भी किन्तु जब वह विफल होती है तो इसी प्रयत्न के परिणाम स्वरूप सिर में दर्द पैदा हो जाता है। इस भिन्न बिम्ब दृष्टि का परिणाम यह होता है कि मनुष्य दूरस्थ दृश्य को तथा उस दृश्य की गहराई को पहचानने में असमर्थ रहता है।

इस रोग को जानने के लिये विशेष साधनों का उपयोग किया गया और उस नये साधन के सहारे ऐसा विशेष ताल बनाया गया जो दोनों नेत्रों के प्रतिबिम्ब के अन्तर को मिटा कर एक रूपता प्रदान करता है। इन तालों का डिजाइन भी डार्टमाइप के उन्हीं वैज्ञानिकों ने तैयार कर ताल निर्माण करने वाली कम्पनी को दिया।

नेत्र ताल में आये दुर्गुण को यह कृत्रिम ताल अपने मध्य से प्रकाश रेखा को गुजरते समय भीतर ताल की त्रुटि को दूर कर देते हैं तब इन दृष्टिक विकारों को इन ऐनकों द्वारा दूर करने का विज्ञान बढ़ता चला गया जो आज चर्मसीमा तक पहुँच रहा है।

इस समय तो दृष्टि सम्बन्धी विकारों को दूर करने के लिये तथा तीव्र प्रकाश, विद्युत कौंध, सर्च लाइट आदि से नेत्रों को बचाने के लिये ऐसे ताल बन गये हैं जिनकी एनकें नेत्र पर चढ़ा लेने पर फिर नेत्र के ताल पर कोई बुरा परिणाम नहीं होता। यह ध्रवात्मक ताल कहलाते हैं इससे भिन्न फरालाल और पारकासनी ऐसी रश्मियाँ हैं जो कुछ अधिक देर नेत्र ताल पर पड़ती रहें तो उन्हें हानि पहुँचा देती हैं। इनसे बचाव के लिये भी ऐसे तालों का आविष्कार हो चुका है जो नेत्र पर लगा लेने से वह इन रश्मियों का शोषण कर लेता है बड़ी बड़ी भट्टियों पर काम करने वाले व्यक्ति इसी चश्मे की बदौलत अब निरापद होकर वहाँ काम करते रहते हैं।

अब तो वर्णपट सूक्ष्मता सम्बन्धी नेत्र दोषों को दूर करने के लिये ऐसे भी तालों का आविष्कार हो चुका है जिनके किनारों तक दृश्य वस्तु को बिल्कुल साफ-साफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा जा सकता है। इस तरह से आँख की दृष्टिक त्रुटि को दूर करने के वह कृत्रिम साधन ज्ञात हो चुके हैं। वैद्य समाज को इन नेत्र सम्बन्धी विकारों को समझने और उन्हें दूर करने के पूर्ण साधन जानने चाहियें। जिस नेत्र ताल पर प्रकाश पड़ कर कृष्णपटल पर विम्ब बनाता है कई बार उस नेत्र ताल में पानी उतर कर उसे धुंधला करता चला जाता है। जिसे हम काच बिन्दु या मोतिया बिन्द, तिमिर आदि नाम से पुकारते हैं। इस पानी को हटाने का आविष्कार यद्यपि सुश्रुत के समय ही हो चुका था किन्तु नेत्रताल को बदलने का आविष्कार इसी शताब्दी का है। अब तो नेत्र शल्य क्रिया में इतनी उन्नति हो चुकी है कि नेत्र के उस विकृत ताल को निकाल कर उसके स्थान पर नया कृत्रिम ताल फिट कर देते हैं। जो शरीर का सजीव अंग बन जाता है। इस कोमल शल्य क्रिया को इस कौशल से किया जाता है कि नेत्र को जरा भी हानि नहीं पहुँचने पाती।

जो व्यक्ति एक विशेष प्रकार के अन्धे हो जाते हैं उनके लिये भी एक दूरदर्शक ताल की ऐसी ऐनकें बनकर आने लगी हैं जिसमें से देखने पर वस्तु की अभिवर्धकता इतनी बढ़ी होती है कि उस अन्धे को भी उसमें से दिखने लग जाता है। पहले तो दृष्टिदोष को जाँचने के लिये बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ता था किन्तु आजकल चक्षु दृश्य मापक ऐसा यन्त्र बन गया है जो रोगी के चक्षु पर प्रकाश की एक किरण फेंककर कृष्ण पटल पर उसके बिम्ब की परीक्षा करने का अवसर देता है इससे नेत्र के भीतर नाड़ी सम्बन्धी विकार और रक्त द्वारा आये विकारों का आसानी से निदान किया जा सकता है। इसी तरह नेत्र के और कई विकारों को देखने समझने के लिये कई और यन्त्र भी बन गये हैं जिनका प्रयोग प्रायः नेत्र चिकित्सक करते रहते हैं।

इस बात को अच्छी तरह समझ रखना चाहिये कि हमारी देखने की शक्ति सीमित होती है और हमारा दर्शन क्षेत्र भी एक सीमा के भीतर रहता है। यह दर्शन क्षेत्र हमारा सामने की ओर ऊर्ध्वाधर तले में १२० और क्षितिज तल पर १८० तक है इससे बाहर हमारे द्राष्टिक क्षेत्र की पहुँच नहीं है। इसे हमें समझना चाहिये रतौंधा क्यों होता है? इसका भी हम आयुर्वेदज्ञों को सही ज्ञान नहीं था।

अनुसन्धान से जाना गया है कि नेत्र के दृष्टि पटल में एक बैंगनी रंग का पदार्थ रहता है जिसे दृष्टि प्रकाशक कहते हैं। इसका देखने की क्रिया से गहरा सम्बन्ध रहता है। जब हम देखते हैं उस समय जब नेत्रों पर तीव्र प्रकाश पड़ रहा हो उस प्रकाश के प्रभाव से इस दृष्टि प्रकाशक द्रव्य के रंग का ऊष्मीकरण होता है और यह द्रव्य कासनी से पीत वर्ण में बदलता चला जाता है। इससे नेत्र के भीतर दृष्टि प्रकाशक की मात्रा घटती चली जाती है। यदि रक्त के साथ खाद्योजांश ए की मात्रा नेत्रों के भीतर समुचित रूप से पहुँचती रहे तो जितना दृष्टि प्रकाशक प्रकाश प्रभाव से नष्ट होता रहता है रक्तस्थ खाद्योजांश ए की उपस्थिति में उतना ही बनता भी रहता है। इससे दृष्टि शक्ति में कोई विकार नहीं आता वह अंधेरे में भी यथावत् बनी रहती है। यदि खाद्योजांश ए की न्यूनता हो रही हो तो उस स्थिति में जितना दृष्टि प्रकाशक नष्ट होता रहता है उतना बन नहीं पाता। इसी कारण से जब हम प्रकाश से निकलकर अंधेरे में जाते हैं तो हमें एकाएक कुछ दिखाई नहीं देता। क्योंकि अंधेरे में देखने के लिये जितनी दृष्टि प्रकाशक की आवश्यकता होती है उतनी शीघ्र वह खाद्योजांश ए के अभाव में बन नहीं पाता तभी हम अंधेरे में देखने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि हमें खाद्योजांश ए की समुचित मात्रा मिलती रहे तो दृष्टि प्रकाशक का निर्माण त्वरितगति से होता रहता है और जितनी देर में हम प्रकाश स्थान से अंधेरे में पहुँचते हैं उसी क्षण दृष्टि प्रकाश की विद्यमानता से हमें उस अंधेरे में भी सब कुछ दिखाई दे जाता है। और जब खाद्योजांश ए की बहुत न्यूनता रहती है तो उसका परिणाम यह होता है कि अंधेरे में दृष्टि प्रकाशक का बनना रुका रहता है इसी से रात्रि में उस व्यक्ति को कुछ दिखाई नहीं देता, इसी त्रुटि का नाम नक्तान्ध या रतौंधा है।

जिस व्यक्ति को रतौंधा आता हो उस व्यक्ति को आप खाद्योजांश ए की समुचित मात्रा आहार में देने लग जायें तो दो चार दिन में ही उसका रतौंधा जाता रहेगा। यह प्रयोग तभी सफल हुआ जब रोग के मूल कारण को सही रूप में देख लिया गया। जब निदान ठीक हो तो चिकित्सा अवश्य सफलीभूत होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आहार लेने पर मादकता

उत्तरी जापान में होकाइडो नामक कस्बे में मिजारो बाम का एक व्यक्ति रहता है। आज बीस वर्ष से उसे यह कष्ट है कि वह जो भी आहार लेता है उदर में जाकर उसका वह मद्य में परिणत हो जाता है। उसे भोजन करने के आधे घण्टे बाद नशा चढ़ने लगता है। धीरे २ धमनियाँ प्रसर जाती हैं और श्वास कष्ट से आने लगता है। हृदयोद्वेग बढ़ जाता है और इस मद्य के नशे में वह २॥-३ घण्टे बना रहता है। यद्यपि इस मद्य से भी उसे कार्यसंचालन के लिये उत्ताप और शक्ति दोनों ही मिल जाते हैं। इससे उसका शरीर क्षीण नहीं होता किन्तु इस मद्य के प्रभाव से उसे जो कष्ट होता है वह अब सहन नहीं करता। बहुत से डाक्टरों ने इस रोगी को देखा और रोग के कारण को समझने का प्रयत्न किया पर विसफल रहे।

होकाइडो विश्वविद्यालय के एक कृषि विभाग के प्रोफेसर शुजी शासा ने अनुसन्धान कर बतलाया कि इसकी लाला ग्रन्थियों व क्लोम में बहुशर्करोजों से द्राक्षज बनाने वाले विकरों द्वारा जब द्राक्षज निर्माण होता है तो उस के अन्त्राशय में पहुँचने पर वह मद्य सन्धानी कीटाणु द्वारा हलाहल में बदल जाता है। वही मद्य द्राक्षज के स्थान पर शोषित होता है। जब मद्य का शोषण होता है तो नशा चढ़ने लग जाता है। जैसे २ मद्य रक्त में पहुँचता है नशा बढ़ता जाता है। २॥-३ घण्टे में वह शोषित होता है उतनी देर वह नशे की हालत में रहता है। उस आदमी के अन्त्राशय में जब द्राक्षज में सन्धान उठता है उस समय उत्ताप भी बढ़ जाता है और वह अन्त्र स्थल उस समय आसवन की आदर्श भट्टी बन जाती है।

यद्यपि यह किण्व कीटाणु कुछ न कुछ प्रत्येक व्यक्ति के अन्त्राशय में हैं किन्तु इनसे उत्पन्न हुआ हलाहल इतनी अल्प मात्रा में होता है जो नशे की हालत उत्पन्न नहीं कर सकता किन्तु इस व्यक्ति में जितना भी द्राक्षज होता है वह सारा का सारा ही मद्य में परिणत हो जाता है। इसी से उसका प्रभाव मदकारी हो जाता है। उस प्रोफेसर ने उस व्यक्ति की कोई ऐसी विधि से चिकित्सा की जिससे उसके पेट में मद्य बनना बन्द हो गया और वह अब बिल्कुल ठीक हो गया है।

प्योंद लगाने की करामात

इस समय प्रत्येक विषय का ज्ञान विज्ञान इतना बढ़ रहा है जिसे सुन सुनकर हैरानी होने लगती है। आप सब जानते हैं कि इस समय एक सजातीय वृक्ष पर दूसरे सजातीय वृक्ष की कलम लगा दी जाय तो दोनों की कलमें जुड़ जाती हैं फिर वृक्ष की डाली को काट देते हैं। इस तरह एक बढ़िया आम के वृक्ष पर की डालियों से कलमें लगाकर कलमी आम प्राप्त करते हैं इसी तरह निम्बू नारंगी आदि की जाति के वृक्षों पर भी कलम लगाई जाती है और उससे उत्तम कोटि के फल प्राप्त किये जाते हैं।

इस कलम प्योंद की लगाने की चाह में रूस ने कमाल कर दिया है। मास्को की ताजा सूचना है कि काकेशिया के सागर तट पर सोची नामक एक कलम प्योंद लगाने का प्रायोगिक बाग है उस बाग में एक निम्बू जाति के वृक्ष में उन्होंने उस पर चकोतरा, इटली का संतरा, नागपुरी सन्तरा, आसाम की नारंगी, जापानी सन्तरा, टेंगोराइन, भारतीय निम्बू, अमेरिकन निम्बू, ग्रेपफ्रूट, फर्चुनेला आदि निम्बू जाति के ४२ प्रकार की कलमें उस एक वृक्ष में लगाकर उसे ऐसा सदाबहार फल देने वाला वृक्ष बना दिया है कि जो देखता है वह हैरान होता है। एक डाली में चकोतरा लटका हुआ है तो दूसरे में निम्बू तीसरे में सन्तरा चौथे में जापानी सन्तरा इस तरह ४२ डालियाँ एक ही वृक्ष पर ४२ प्रकार के फल दे रही है। इस वृक्ष पर प्रतिवर्ष दो तीन नये फल वाले पौधों की कलमें लगा दी जाती हैं। यह वृक्ष २५ वर्ष का हो गया है इतने वर्षों में इस पर ४२ प्रकार के फलों की कलमें लग चुकी हैं। इस वर्ष आखरी एक कलम और लगाई जायगी फिर इसी तरह वहां एक ही आम पर कई प्रकार के आमों की कलमें लगाने का प्रयत्न हो रहा है। हमारे देश में तो केवल अच्छे फल वाले वृक्ष की कलम लेकर उससे अच्छा आम का वृक्ष उत्पन्न कर लेते हैं किन्तु ऐसा किसी ने आज तक नहीं किया कि एक ही वृक्ष पर कई प्रकार के आमों की कलमें लगाकर उस वृक्ष को बहुरूपिया बनादें। स्वतन्त्र विज्ञान प्रेमी देश में ही ऐसे प्रयोग हो सकते हैं रूढ़ीवादी भारत तो लकीर पीटता उस पर ही चलना चाहता है। इसी से यह उन्नति नहीं कर रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कायाकल्प की औषधि का आविष्कार

बूढ़ों को जवान बनाने वाली दवा निकल आई

खाद्योजांश (विटामिन) आहार में एक ऐसे प्रभावकारी अंश जाने गये हैं जिनसे रहित खाद्य वास्तव में निर्गुण होता है। यदि किसी आहार में खाद्योजांश न हों तो उस आहार का शरीर पूरी तरह उपयोग नहीं कर सकता। यह खाद्योजांश एक दो प्रकार के नहीं अब तक मुख्यतया ५-६ भेद के ऐसे जाने गए हैं जिनका स्वास्थ्य की दृष्टि से भिन्न २ उपयोग होता है: यह खाद्योजांश अंगरेज़ी अक्षरों के क्रम से ए. बी. सी. डी. ई. एफ. जी. एच. आई. के तक जाने गए हैं। इनमें से ए. बी. सी. डी. ही मुख्य हैं। इनमें से खाद्योजांश सी. तो अधिकतर फलों के रस में होता है यह खाद्योजांश शरीर के स्वास्थ्य वर्धन के लिये अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुआ है। रूमानियां के कुछ वैज्ञानिक इस खाद्योजांश सी के साथ कुछ वृंधण, वल्य रसायन औषधियों को मिलाकर उससे जो औषध तयार की उसका प्रयोग उन्होंने प्रथम वृद्ध पशुओं पर किया। वह वृद्ध पशु कुछ दिनों में ही युवावस्था को प्राप्त कर मादा पशुओं के पीछे उसी तरह उन्मत्त होकर फिरने लगे जिस तरह युवावस्था में बकरे वृषभ आदि उनके पीछे फिरते हैं इस सफलता को देखकर फिर उन वैज्ञानिकों ने इस औषध का प्रयोग वृद्ध मनुष्यों पर किया। ६७ वर्ष के ऊपर के १०० व्यक्तियों पर इस औषध का प्रयोग कर इसके फलाफल को जानने का प्रयत्न किया। इनमें से १० प्रतिशत व्यक्तियों के चेहरे की झुरियां शरीर की गिरी हुई स्थिति सब दूर हो गई। और जिनकी कमरें टेढ़ी हो गई थीं उनकी कमरें सीधी हो गईं, सफेद बाल काले हो गये। जिनके दांत गिर गये थे उनके फिर नये सिरे से दांत निकल आये। इनमें ऐक दम्पत्ति जिन्हें पुनः नवजवानी प्राप्त हुई है वह सुहागरात मनाने के लिए किसी सुरम्य स्थल की ओर रवाना हो गये हैं। जब यह खबर संसार के अन्य देशों में पहुँची तो दूसरे देश के वैज्ञानिक इस नुसखे को जानने के लिये लालायित हो उठे। और यह इस प्रयत्न में हैं कि यह किसी तरह हाथ आ जाय किन्तु उक्त वैज्ञानिक अभी इसे बताने के लिये तयार नहीं हैं। वह कहते हैं कि अभी इसमें कुछ त्रुटियाँ हैं जब तक वह त्रुटियां पूरी नहीं कर ली जातीं तब तक इसे गोपनीय रखा जायगा इसके बाद प्रकट कर देंगे। उनका दावा है कि १९६७ ई० तक वह इसमें सफल हो जायेंगे। और उसके बाद यह दवा इतनी सस्ती होगी कि हर कोई खरीद कर बुड्ढे से जवान बन सकेगा है।

हमारे देश में भी आयुर्वेद चिकित्सकों ने यह प्रयत्न किया था और उन्हें इसमें कुछ सफलता भी मिली थी किन्तु 'गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः' की प्रकृति ने वह सफलीभूत योगों को संसार के सामने आने नहीं दिया इसी से हमारे देश की यह विद्या लुप्त हो गई। और हम धनहीन बुद्धिहीन की श्रेणियों में गणना पा रहे हैं। यदि आयुर्वेद विज्ञान में परस्पर मिलकर उन्नति करते तो हमारी यह दशा कभी न होती। ———

पक्षाघात के रोगियों के लिए सांस लेने का नया यंत्र

अब एक ऐसे 'ब्रीदिंग बेल्ट' नामक यन्त्र का आविष्कार हुआ है जिसके कारण पक्षाघात रोग से पीड़ित रोगियों को सांस लेने के लिये कृत्रिम फेफड़ों की सहायता नहीं लेनी पड़ेगी। यह पेटी के आकार का नया यन्त्र बहुत आरामदेह है और वस्त्रों के नीचे आसानी से पहना जा सकता है। पक्षाघात रोगियों को पुनः उपयोगी और आत्म निर्भर बनाने में इस यन्त्र से बहुत सहायता मिलेगी। लोहे के कृत्रिम फेफड़ों की सहायता से सांस लेने वाला रोगी अब उस मानसिक यन्त्रणा से छुटकारा पा सकेगा, जो इस क्रिया में उसे अनुभव होती है। अब वह बैठकर सांस ले सकेगा और पट्टियों द्वारा पेटी में इधर उधर घूम फिर सकेगा। पक्षाघात रोग के मामूली शिकार इस विशेष प्रकार की सांस लेने वाली पट्टी को पहन कर अपने घर रह सकेंगे और कोई न कोई कार्य कर सकेंगे। नेशनल फाऊण्डेशन द्वारा पक्षाघात रोग के शिकार व्यक्तियों को यह सांस लेने वाली पट्टी मुफ्त बांटी जाती है।

यह पट्टी सूती कपड़े से बनती है और रोगी की छाती के नाप की होती है। कपड़े के नीचे अच्छी कोटि के रबड़ का ब्लैडर फिट होता है जो पट्टी के साथ फिट बैटरी की शक्ति से फूलता और गिरता रहता है। रोगी की छाती में पूरी तरह से फिट ब्लैडर के फूलने और गिरने से इस प्रकार फेफड़ों में हवा पहुँचती रहती है। इस पट्टी में एक पारे की बैट्री भी फिट रहती है जो ब्लैडर को चलाने वाली बैटरी की शक्ति खत्म होने की चेतावनी देती है। इस चेतावनी को सुनकर एक क्षण में ही आवश्यक कार्यवाही कर दी जाती है। (दैनिक हिन्दुस्तान से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक प्रकार के आघात (शाक) का क्षाराम्ल सन्तुलन पर प्रभाव

आघात उस स्थिति को कहते हैं जबकि रक्त संचार की मात्रा रक्तवाहनियों के आयतन की अपेक्षा घट जाती है। क्योंकि रक्तवाही संस्थान में रक्त की मात्रा सदैव ही उक्त संस्थान की समाई के बराबर रहनी चाहिए, जो आघात काल में नहीं रहती। इसका कारण यह होता है कि रक्त वाहनियां स्थिति स्थापक होने के कारण आघात काल में वह फ़ैल जाती है, उन वाहनियों के अन्तिम भाग में रक्ताभिसरण रुक जाता है। इसमें निम्न कारण हो सकते हैं रक्त स्राव होने के कारण वाहनियों में रक्त की न्यूनता या आघात से वाहनियों का मार्ग अवरुद्ध होना जिससे रक्त शरीर के विशेष भाग में संचित होकर रह जाता है।

हृदय के वाह्यावरण में प्रसार होने पर या हृद्धमनी के अवरोध होने पर भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिससे रक्त के उस भाग में अधिक संचित हो जाने से आघात की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। आघात के कारण रक्त संचार में बाधा आती है तो रक्तस्थ जल में घुले लवणों की स्थिति में भी परिवर्तन आ जाता है।

जब रक्त स्राव होता है तो कुछ समय के लिए रक्तचाप भी घट जाता है इसी से रक्त वाहनियाँ भी संकुचित हो जाती हैं और इस सन्तुलन को ठीक बनाये रखने के निमित्त अथवा यों कहिये रक्तचाप की न्यूनता के कारण तन्त्वावकाशों का तरल चू कर रक्त में पहुँचने लगता है। यदि रक्तस्राव अधिक मात्रा में हो गया हो तो उसकी क्षतिपूर्ति शीघ्र नहीं होती। और न ही तरलों के भीतर पहुँचाने पर पूर्ण होती है। इसी कारण रक्तचाप अधिक समय तक न्यून बना रहता है। और रक्त के घटे विद्यमान पदार्थों की मात्रा जिस तेजी से घटी थी उसीकी अपेक्षा उसकी पूर्ति मन्द गति से होती है। इसलिए रक्त प्रकृतिस्थ स्थिति तक पहुँचने में काफी समय ले लेता है। जब रक्त स्राव बहुत अधिक मात्रा में हो जाता है तो रक्तचाप एक बार गिरकर पुनः बढ़ने का प्रयत्न करता भी है किन्तु जल्दी ही वह फिर कम होकर इतना गिर जाता है जहां जीवन की स्थिति डांवाडोल हो जाती है। रक्त प्रगाढ़ता बढ़ने पर मूत्रावरोध और मूर्च्छा प्रकट होती है जब स्राव के पश्चात् रक्त की मात्रा काफी कम हो जाती है उस समय रुधिराणु और रक्त वर्तुलीन का अनुपात एकाएक सन्तुलन को बनाये रखने की दृष्टि से बढ़ जाता है किन्तु इनका एकाएक अपूर्ण रचना में बढ़ना और रक्त में पहुँचना भयावह होता है। रक्तस्राव के आरम्भ में रक्त द्रव में अस्रजनों की मात्रा बढ़ जाती है। इनका बढ़ना इस बात का प्रमाण है कि रक्त गाढ़ा हो रहा है। ऐसी स्थिति आने पर रोगी की मृत्यु होने का भय उत्पन्न हो जाता है। ———

विज्ञान परिषद् द्वारा

हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार

सूचना

बड़े हर्ष के साथ विज्ञान परिषद, प्रयाग, सूचित कर रही है कि इस संस्था की ओर से प्रतिवर्ष सर्वोत्कृष्ट मौलिकता लिये किसी वैज्ञानिक विषय के किसी ग्रन्थ पर दो हजार रुपये का नकद हरिशरणानन्द वैज्ञानिक पुरस्कार दिया जायगा। यह प्रथम पुरस्कार उन वैज्ञानिक ग्रन्थों में से किसी एक को दिया जायगा जो जनवरी १९५४ के बाद प्रकाशित ग्रन्थों में से सर्व श्रेष्ठ रहेगा।

उक्त विज्ञप्ति के द्वारा विज्ञान परिषद प्रयाग पुरस्कार के लिये प्रत्येक वैज्ञानिक विषय की पुस्तकें आमन्त्रित करती है।

१ प्रत्येक पुस्तक की ८ प्रतियां १५ अगस्त १९५९ तक विज्ञान परिषद, म्योर सेंट्रल कालेज ग्राउन्ड, प्रयाग के पते पर आ जानी चाहिये।

२ पुस्तकें शुद्ध हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हों।

३ अनुवाद के ग्रन्थों पर विचार नहीं किया जायगा।

४ इन प्रकाशित पुस्तकों में विज्ञान परिषद, प्रयाग, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तथा भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय द्वारा स्वीकृत में से कोई भी वैज्ञानिक परिभाषिक शब्दावली व्यवहृत हुई होगी मान्य होगी। ग्रन्थ लेखकों को पुरस्कार सम्बन्धी नियमावली बिज्ञान परिषद से मंगा कर देखना चाहिये।

—मन्त्री
विज्ञान परिषद, प्रयाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन

कार्य समिति का अधिवेशन

पिलानी (डाक से) राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन की कार्य समिति का द्वितीयाधिवेशन आचार्य नित्यानन्द जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय आयुर्वेदिक फार्मेसी जयपुर में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में वैद्यराज रामनारायण जी शर्मा की धर्म पत्नी एवं गोस्वामी गणेशदत्त जी महाराज के स्वर्गवास पर शोक प्रकट करने के बाद निम्न लिखित निर्णय किये गए। :—

१. कार्य समिति वार्षिकाधिवेशन में निर्णीत विषयों के अलावा सामयिक स्थिति पर विचार कर सकती है, किन्तु आर्थिक मामलों में स्वीकृत आधुनिक बजट को दृष्टि में रखते हुये ही कार्य करना चाहिए।

२. सम्मेलन के कार्यों को ग्रन्थ रूप में तैयार करने का भार कविराज परमानन्द जी शास्त्री जोधपुर के संयोजकत्व में संपादक मंडल को सौंपा गया।

३. नि० भा० आयुर्वेद महा सम्मेलन के अध्यक्ष एवं प्रमुख पदाधिकारियों से अनुरोध किया गया कि वे महा सम्मेलन के वर्तमान गतिरोध को शीघ्र समाप्त करने का प्रयास करें तथा दिल्ली में वार्षिकाधिवेशन शीघ्र सम्पन्न करावें।

४. पंचवर्षीय योजना व्यवस्थित रूप से तैयार करने तथा इस सम्बन्ध में राजस्थान सरकार के अधिकारियों से भेंट करने का निश्चय हुआ। पत्रिका व्यवस्था उप समिति की कार्यवाही कविराज परमानन्द जी द्वारा सम्पन्न की जायें।

५. सरकार की आयुर्वेद विरोधी नीति को जन साधारण में प्रचारित करने के लिये एक आयुर्वेद दिवस आयोजित किया जाये।

६. सरकार से अनुरोध किया जाय कि वह स्टैंडिंग बोर्ड की बैठक बुलाये। इन्डियन मैडिसन बोर्ड से अनुरोध किया जाय कि वह विद्यापीठ परीक्षाओं के रजिष्ट्रेशन से सम्बन्ध रखने वाली मूल धाराओं को न हटाये एवं विद्यापीठ से अनुरोध किया किया जाय कि विशारद का पाठ्यक्रम तीन साल का रहे।

७. संवत् २०१५ के सदस्यों के सम्बन्ध में तथा संगठन की स्थिति पर विचार हुआ।

८. धन्वन्तरि मन्दिर रतनगढ़ को प्रतिनिधि शुल्क दे दिया जाए एवं सम्मेलन की विवरण पत्रिका छपाने को लिखा जाए।

इनके अलावा अन्य कुछ विषयों पर विचार विमर्श के बाद भगवान धन्वन्तरि की जयघोष के साथ कार्यवाही सम्पन्न हुई।

———

जल का वाष्पीकरण रोकने का प्रयत्न

भारत में कई भाग ऐसे हैं जहाँ वर्ष के अधिकांश भाग में जल की कमी रहती है। यद्यपि वर्षाकाल में वहाँ जलाशयों में जल संचित हो जाता हैं पर उसके बाद धूप निकलते ही थोड़े दिनों में वह जल वाष्पी भूत हो कर उड़ जाता है और इस प्रकार वहाँ सूखा ही पड़ा रहता है कुछ समय से भारत सरकार का केन्द्रीय जल विद्युत आयोग इस परीक्षण में लगा है कि किसी तरह इन जलाशयों से जल का वाष्पी करण रोका जा सके ताकि जल की कमी वाले इलाकों में जलाशयों में संचित जल काफी समय तक उस स्थान के सिंचाई आदि अन्य आवश्यक एवं उपयोगी कार्यों के लिये उपलब्ध होता रहे। आयोगद्वारा नियुक्त विशेषज्ञों ने यह प्रयोग देशके तीन स्थानों पर किये हैं। १. पंजाब में फरीदाबाद के निकट बडखल जलाशय। २. मैसूर। ३. पूंडी (मद्रास राज्य में)। इन प्रयोगों के परिणाम स्वरूप आयोग को अपने ध्येय में कुछ सफलता मिली है।

देखा गया है कि यदि जलाशय पर ऐसीटाइल अलकोहल (Acetyl Alcohol) और ह्वेल मछली के तेल के एक विशेषानुपात में बनाये मिश्रण की एक अत्यन्त पतली (अर्थात एक इंच का दसलाखवां भाग मोटी) तह जलाशय पर छोड़ दें तो जलाशय का वाष्पी करण ३०-४० प्रतिशत कम हो जाता है। यह भी देखा गया है कि उक्त मिश्रण की इतनी पतली परत में से वायु एवं प्रकाश किरणें बिना किसी बाधा जल में आ जा सकती है अतः न तो उस जल में रहने वाली मछलियों पर इसका कोई बुरा प्रभाव पड़ता है और न ही वनस्पतियों को इस से कोई हानि पहुँचती है जिन की सिंचाई इस जल द्वारा की जावे। इस प्रकार वाष्पीकरण कम हो जाने से जल की अधिक मात्रा सिंचाई आदि उपयोगी कार्यों के लिये उपलब्ध हो सकेगी। वाष्पी करण को और भी कम करने के लिये प्रयोग अभी जारी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के उत्तम ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरंन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं उनके संग्रह का प्रयत्न किया है वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १२) मार्ग व्यय भिन्न।

आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर।

अहिफेन मुक्ति दाता वटी

१ अप्रैल से सरकार ने अफीम के ठेके बन्द कर दिये हैं। अफीम खाने के आदी व्यक्तियों को बड़ी मुसीबत का सामना होगा। इस अफीम से बिना कष्ट मुक्ति दिलाने के लिये ही ८-९ वर्ष के अनुसन्धान से यह गोलियां आविष्कृत की हैं। अफीम खाने के समय १-२ या अधिक मात्रा में अफीम खाने वाले तीन गोलियां खालें उन्हें अफीम का अभाव नहीं लगेगा। महीना डेढ़ महीना सेवन के बाद गोलियों की मात्रा कम करते चले जाएं। बस अफीम का ख्याल ही भूल जायगा। मूल्य प्रति तोला २), ५ तोला का ८) रु०।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०--६१ अकालमार्केट, अमृतसर

अथवा—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्ष ६ भाद्रपद सम्वत २०१६ संख्या ९

सितम्बर १९५९

आयुर्वेद-विज्ञान

चिकित्सा संसार में क्रान्ति लाने वाला मुख्य वैज्ञानिक पत्र

AYURVED-VIJNAN

The Leading Hindi Journal Explaining The Ayurvedic System on Scientific Lines

सम्पादक

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य

विषय-सूची

१. औपसर्गी जैवों का प्रभाव १३७

२. गर्भ विज्ञान के कुछ और रहस्य १४१

३. सात्म्यी करण क्रियाओं पर ओजों का प्रभाव १४३

४. चाय का गुण दोष विवेचन
(लेखक :—कविराज गौरीलाल चानना बी० ए० वैद्य वाचस्पति) ... १५०

५. समालोचना व साहित्य सत्कार १५१

प्रकाशक—

स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य, आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय, खारी बावली, दिल्ली-६

मुद्रक—चंदलिया प्रिंटिंग प्रेस, दर्जीवाड़ा नई सड़क, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम

१—आयुर्वेद-विज्ञान प्रत्येक अंग्रेजी मास की १ तारीख को प्रकाशित होता रहेगा।

२—डाक-व्यय सहित इसका मूल्य ३) वार्षिक, एक प्रति का मूल्य ३० नये पैसे होगा।

३—पत्र मंगाने वालों को अपना पता साफ २ अक्षरों में लिखना चाहिये।

४—जिन व्यक्तियों के पास उस मास की ५ ता० तक पत्र न पहुंचे उन्हें इसकी सूचना देनी चाहिये।

५—यदि एक-दो मास के लिये पता बदलवाना हो तो उसका प्रबन्ध स्वयम् डाकखाने से कर लेना चाहिये। अधिक समय के लिये पता बदलवाना हो तो फिर हमें सूचित करना चाहिये।

६—पत्र व्यवहार करते समय ग्राहकों को अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये। अन्यथा उत्तर नहीं दिया जावेगा।

७—पत्र व मूल्य सम्बन्धी पत्र-व्यवहार मैनेजर आयुर्वेद विज्ञान के नाम से और लेख, समालोचनादि व पुस्तकादि सम्पादक के नाम से भेजना चाहिये।

८—कोई भी पत्र, पुस्तक समालोचना के लिये भेजी जाय उनकी दो प्रति भेजनी चाहिये।

९—आयुर्वेद विषयक वैज्ञानिक गवेषणापूर्ण लेखों को पत्र में सर्व-प्रथम स्थान दिया जायेगा और श्रेष्ठ सचित्र लेखकों को पुरस्कृत भी किया जायगा।

१०—वृथा के आडम्बर पूर्ण पृष्ठ-पोषक लेखों के लिये इसमें स्थान नहीं मिलेगा। किसी भी लेख को घटाने, बढ़ाने व प्रकाशित करने, न करने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार होगा।

११—जो लेख भेजे जायें, कागज पर एक तरफ हाशिया छोड़ कर लिखे होने चाहिये।

१२—उत्तम २ अलभ्य आयुर्वेद साहित्य सम्बन्धी चित्र लेख व वनस्पतियों आदि को जो सुरक्षित भेजेंगे उनको सपारिश्रमिक मार्ग व्यय आदि सब आयुर्वेद विज्ञान कार्यालय से दिया जायेगा।

१३—आयुर्वेद शास्त्र सम्बन्धी प्रश्नों को छोड़ कर किसी परामर्श सम्बन्धी या किसी रोगी के लिये रोग-सम्बन्धी प्रश्नों पर प्रति प्रश्न के लिये आयुर्वेद-विज्ञान के ग्राहक आठ आना, जो ग्राहक नहीं वह प्रति प्रश्न एक रुपये का टिकट प्रश्न के साथ भेजेंगे तभी उनके प्रश्न और उत्तर छापे जायेंगे।

मैनेजर

स्वागत समिति

४३ वाँ अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की सूचना

समस्त वैद्य समुदाय एवं आयुर्वेद प्रेमी महानुभावों को यह सूचित करते हुए हम अतीव हर्ष का अनुभव करते हैं कि अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन का ४३ वां अधिवेशन जो किन्हीं कारणों से गत फरवरी मास में स्थगित हो गया था अब पुनः अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में सम्पन्न होने जा रहा है। निश्चित तिथियों के लिये श्री महासम्मेलनाध्यक्ष महोदय से निवेदन किया गया है, जिनकी घोषणा यथाशीघ्र की जावेगी। अधिवेशन को सर्वजनोपयोगी एवं सफल बनाने के लिए स्वागत-समिति पूर्ण उत्साह से कार्य में जुट गई है। स्वागत समिति सभी आयुर्वेद प्रेमी महानुभावों से सानुरोध प्रार्थना करती है कि इस कार्य में वे यथासम्भव सहयोग प्रदान कर आयुर्वेदोन्नति के पवित्र कार्य में पुण्य के भागी बनें।

सधन्यवाद— भवदीय

श्री वैद्यनाथ सरकार,
अध्यक्ष स्वागत समिति

आयुर्वेद में अनुसन्धान

स्वास्थ्य मन्त्री श्री दत्तात्रेय परशुराम करमरकर ने २५ अगस्त को लोक सभा में श्री नरदेव स्नातक के प्रश्न के लिखित उत्तर में सदन की मेज पर एक वक्तव्य रखा। इसमें बताया गया है कि केन्द्रीय सरकार ने सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं को आयुर्वेद में अनुसन्धान के लिये कुल मिला कर, १९५७–५८ में ६,५९,३०० रु०, १९५८–५९ में ५,६७,३४५ रु० और १९५९–६० में (अब तक) २,१५,०७५ रु० की आर्थिक सहायता दी।

इसके अलावा देशी चिकित्सा प्रणाली की शिक्षा देने वाली संस्थाएं खोलने और अनुसन्धान कार्यक्रम आदि के लिये विभिन्न राज्य सरकारों को २० लाख ५५ हजार रु० की केन्द्रीय सहायता दी गई।

देशी चिकित्सा प्रणाली में अनुसन्धान के लिए जामनगर में जो केन्द्रीय संस्था है, उसके अलावा अन्य कोई संस्था खोलने का विचार नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयुर्वेद-विज्ञान

आयुर्विदेव वितते किल शास्त्र जाते पुम्भिः प्रयत्नपरकैर्भवतीह लभ्यम् ।
शक्तिं शिवं च जनता यदि कांक्षतीयम् विज्ञानमेव भजतां सततं विशेषम् ॥

वर्ष ६ | भाद्रपद २०१६ वि०, सितम्बर १९५९ ई० | अंक ९

औपसर्गी जैवों का प्रभाव

सर्वव्यापी जैव :—

जैव इस समय इस पृथ्वी पर किस तरह से व्याप्तमान हैं। इसे बतलाने की अब जरूरत नहीं। सूक्ष्मदर्शक के आगे मिट्टी, जल, हवा में उड़ने वाले सूक्ष्म कण आदि किसी चीज को रख दें और उन्हें देखें तो सबों में एक ही प्रकार के नहीं बीसों प्रकार के जीवाणु कीटाणु घुसे मिलेंगे। यही नहीं, किसी प्राणी के भीतर में या अपने ही शरीर के भीतर बाहर कहीं भी शरीर के किसी भी हिस्से में इनकी खोज करें तो सभी स्थानों में इनकी उपस्थिति पाई जाती है। आंतों में तो यह एक दो प्रकार के नहीं कोई ८० प्रकार के अब तक पाये गये हैं। इस पृथिवी पर इन्हें सर्वव्यापी कहना कोई अनुचित न होगा। हमारे पेट में सदा ही कुछ न कुछ वायु बनती ही रहती है, यह वायु क्यों बनती है ? साधन न होने के कारण हम इसे जान नहीं सके थे। तभी हमने एक अपान वायु की कल्पना खड़ी कर ली थी। किन्तु इसका वास्तविक ज्ञान अब जाकर हुआ कि यह वायु तो स्वतः अपने आप उत्पन्न नहीं होती। प्रत्युत प्रयोगों से जाना गया कि यह वायुएं उदर में तब बनती हैं जब उदरदरी में विद्यमान पच्यमान लेही पर कोई जैव आक्रमण करते हैं अर्थात इसके आक्रमण से या यों कहिये कि जब वह हमारे खाद्य पेय द्रव्यों पर अपना जीवन निर्वाह करने लगते हैं उस समय उनके द्वारा पच्यमान द्रव्यों के रूप में जो विकृति उत्पन्न होती है और जो सन्धान उठता है उस सन्धान काल में अनेक प्रकार की वायुओं का संजनन होता है। वही वायुएं फिर हमारे अपान वायु के रूप में निकलती हैं। यह अब तक निम्न प्रकार की देखी गई हैं। काऊ२, गन्धिन (इन्डोल), दुर्गंधिन (स्केटोल), दिव्योल (फिनोल), प्रोदेन (मीथेन), वलिकेत (सल्फेट) आदि। मनुष्यों के मल में जो एक प्रकार की गंध रहा करती है जिसे हम विष्ठागन्ध के नाम से पुकारते हैं। वह इन्हीं समस्त वायुओं के मिश्रण से उत्पन्न हुई अपान वायु होती है,जो सदा ही निर्गत होती रहती है। यह जैव केवल वायु ही उत्पन्न नहीं करते, प्रत्युत अनेक प्रकार के द्रव द्रव्य भी उत्पन्न करते हैं—शव गन्धिन (Ptomaine), चुक्राम्ल (सिरका), ज्वलील नैवनीतेत (ईथल ब्यूटाईरेट),नवनीताम्ल (ब्यूटाइरिकएसिड),वैलेरिकाम्ल (Valeric acid),हली (मद्य), मधुरोल (ग्लाइसरोल), दुग्धाम्ल (लैक्टिक एसिड), पिपीलिकाम्ल (फार्मिक एसिड), लोबानिकाम्ल (बेंन्जोइक एसिड) उद्वलिकेत (हाइड्रोसल्फेट), कज्जलिकाम्ल (कार्बो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निक एसिड) इत्यादि। यह सब अम्ल स्वाभावी या अम्ल रूप हैं यही मल हैं जो शरीर को मलिन करते हैं। यह जब अन्नाशय से शोषित होकर यकृत में पहुँचते हैं वहां इन्हें निरम्ल करने का अवश्य प्रयत्न होता है किन्तु इनकी मात्रा बहुत अधिक होने से जब यह निरम्ल नहीं होते तो यह फिर रक्त में पहुँच जाते हैं और अनेकों व्याधियों के कारण बनते हैं।

जैवों का विभेद—कौन से जैव उदरदरी में रह कर किस प्रकार के पोष्य द्रव्यों पर अपना जीवन यापन करते हैं? विद्वानों ने इसकी ढूंढ खोज की है पता चलता है कि कुछ जैव तो शर्करा श्रेणी के द्रव्यों पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं कुछ स्नेहाम्लों पर और कुछ अस्रजनीय श्रेणी के द्रव्यों पर अपना जीवन यापन करते हैं इन में से कुछ जैव दुग्धाम्ल उत्पन्न करते हैं, कुछ नहीं। विद्वानों ने इनकी इस अम्लोत्पादन अनम्लोत्पादन क्षमता पर इनका विभेद किया है उनके किये विभेद के अनुसार हम उसका उल्लेख कर रहे हैं।

(१) दुग्धाम्ल जनक जैवों के प्रकार

साधारण अन्त्रवासी कीटाणु		६ प्रकार के
नव पालित	,, ,,	४ ,,
दुग्धाम्ल जनक	,, ,,	३ ,,
वायूत्पादक	,, ,,	४ ,,
युग्मवायु जनक	,, ,,	५ ,,
नासार्शोत्पादक	,, ,,	२ ,,
पीनसोत्पादक	,, ,,	३ ,,
एशियावासी	,, ,,	८ ,,

इनसे भिन्न कुछ और भी कोई ८ प्रकार के ऐसे कीटाणु जाने गये हैं जो शरीर में किसी प्रकार का दोष उत्पन्न नहीं करते। इस प्रकार कुल जोड़ ४३ हुआ।

(२) अदुग्धाम्ल जनक

मन्थरोद्भवी	,, ,,	४ ,,
पोष्य विकृतकारी	,, ,,	५ ,,
अतिसारोद्भवी	,, ,,	६ ,,
		कुल १५ ,,

उपर्युक्त वर्णित दुग्धाम्ल जनक जितने भी कीटाणु जाने गये हैं इनमें कई जातियां प्रजातियां हैं और इन सबों के खाद्य द्रव्य भी एक दूसरे से अन्तर रखते हैं। द्राक्षज, दुग्धज, फलज, यवज, द्राक्षीन आदि शर्कराएं एक ही नहीं होतीं। प्रत्युत इन सबों की रचना में कुछ न कुछ अन्तर होता है। इसीलिये एक जाति के कीटाणु जो एक शर्करा पर अपना जीवनयापन करते हैं तो दूसरे प्रकार के शर्करा पर नहीं कर सकते। दूसरे प्रकार के कीटाणुओं का भोज्य दूसरी प्रकार की शर्करा होगी। इसी तरह भिन्न-भिन्न प्रकार के कीटाणु भिन्न-भिन्न शर्कराओं पर जीवन निर्वाह करते हैं। कुछ प्रकार के ऐसे भी कीटाणु हैं जो दो दो प्रकार की या तीन तीन प्रकार की शर्कराओं पर अपना जीवन निर्वाह कर सकते हैं। किन्तु इन सबों द्वारा जितने प्रकार की शर्कराएं भक्षण की जाती हैं उन सबों से जो दुग्धाम्ल बनता है वह एक ही प्रकार का होता है। इसके यौगिक में कोई अन्तर नहीं होता। जो कीटाणु दुग्धाम्ल नहीं बनाते उनमें कोई चुक्राम्ल बनाता है, कोई पिपीलिकाम्ल, कोई लोबानिकाम्ल तो कोई कज्जलिकाम्ल आदि। जिस तरह प्रत्येक प्राणी का भोजन भिन्न भिन्न होता है। बिल्कुल इसी तरह से इन सबों का भोजन भिन्न भिन्न है और उनसे प्रादुर्भूत द्रव्य भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस तरह उदर में ८० प्रकार के कीटाणु पाये जाते हैं इसी तरह कोई १० प्रकार के जीवाणु भी देखे जाते हैं वह निम्न हैं।

उदर वासी जीवाणु

अतिसारोद्भवी मायावी अन्त्रवासी जीवाणु ५ प्रकार
अतिसारोद्भवी बादामाकृति ,, ,, ,,

इनमें कोई लोमशी, अष्टकूचि, वृहल्लोमशी, लघु बादामाकृति, वृहद बादामाकृति आदि अनेक भेद हैं। कोई मायावी (अमीबा) प्रकार के ऐसे भी देखे जाते हैं जो अपनी आकृतियां बदल लेते हैं।

यह जैव अनेक प्रकार के विष भी उत्पन्न करते हैं।

संसार में कोई भी ऐसा प्राणी न होगा जिस का दूसरा प्राणी शत्रु न हो। प्रायः देखा जाता है कि एक प्राणी दूसरे प्राणी की सदा ही ताक में रहता है और अवसर मिलते ही जो बलवान होता है दूसरे को मार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर खा जाता है। एक प्राणी जब दूसरे पर आक्रमण करता है तो वह भी अपने बचाव का प्रयत्न करता है। यह क्षुद्र प्राणी अपने भीतर जो प्रयत्न करते हैं उससे वे दो प्रकार का विष उत्पन्न करते हैं (१) अन्तर्विष (२) वहिर्विष। अन्तर्विष तो उन प्राणियों के शरीर के भीतर रहता है जो उनके जीवित रहते उनके शरीर से बाहर नहीं आता जब वह मर जाते हैं उस समय वह उनके शरीर के भीतर से निकल कर आस पास शारीरिक द्रव में फैल जाता है जिसमें वह निवास करते हैं। अन्त्रवासी यह कीटाणु एक ओर जन्मते हैं,तोदूसरी ओर मरते भी रहते हैं इनके मरने के बाद इनके अन्दर से जो विष निकलता है वह विष भी शोषणीय द्रव्यों के साथ मिलकर शरीर के भीतर पहुँच जाता है। इससे जो शरीर को हानि होती है इसको हम प्रत्यक्ष में नहीं देख पाते।

वर्हिविष—यह विष इन जीवाणुओं, कीटाणुओं से उस समय उत्पन्न होता है जब यह शरीर के भीतर या अन्त्राशय में रह कर बढ़ते हैं। यह विष वह इसलिये त्यागते हैं क्योंकि जिस समय वह बढ़ते हैं। उस समय वह शरीर को हानि पहुँचाते हैं ऐसे समय शरीर इनका प्रतिरोध करता है। हमारे शरीर में कीटाणु भक्ष और श्वेताणु यह दोनों ही शरीररक्षक फौज के रूप में रहते हैं यह उन जैवों से आकर लड़ते हैं उन्हें मारने खाने लगते हैं ऐसे समय इनसे बचाव के लिये ही अपने भीतर से ऐसा विष त्यागते हैं कि वह शरीर के रक्षक इस विष के प्रभाव से इनके पास फटक नहीं पाते, इनका यह विष उन रक्षकों से बचाने के लिये ढाल का काम करता है।

प्रयोग कर्ताओं ने इन जीवाणुओं कीटाणुओं की कृषि करके इनके दोनों प्रकार के विष उनसे प्राप्त करके उन्हें प्रयोगशाला में देखा है इन जैवों का जो अन्तः विष होता है वह निःस्यन्दकों से छानने पर छन कर भिन्न नहीं होता। किन्तु जो वहिर्विष होता है उसे छाना जा सकता है। वह निःस्यन्दक से छान कर भिन्न किया जा सकता है। प्रयोगों से देखा गया है कि इन जैवों का मृतोद्भूत विष बड़े ही स्थिर स्वरूप का है जो क्वथनांक के उत्ताप पर भी नष्ट नहीं होता, न आसानी से विश्लेषित किया जा सकता है। किन्तु वहिर्विष को भिन्न करके उसे धूप में ही रखा जाय तो वह नष्ट हो जाता है और क्वथनांक पर भी इसका यौगिक स्थिर नहीं रहता। अधिक काल तक रखे रहने पर भी यह अपने आप पड़ा पड़ा निर्विष हो जाता है और यह भी देखा गया है कि इसे किसी रासायनिक द्रव्य के साथ मिलाया जाय तो इसकी विषाक्तता घट जाती है। इन्हीं बातों को देख कर वैज्ञानिकों ने इस विष को भिन्न करके उसे अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में पशुओं को सूची भरण देकर उसके प्रभाव को जांचा है। यह विष जब किसी प्राणी के शरीर में पहुँचा देते हैं तो उससे शरीर के भीतर उसका प्रतिद्वन्दी विष प्रतियोगी बना करता है, यह प्रतियोगी विष उस विष को नष्ट कर डालता है। हम सबों को जो जैवी व्यधियां हो जाती हैं इन व्याधियों के समय ही जो इन जैवों द्वारा विष प्रादुर्भूत होकर शरीर में फैल जाते हैं उसी से अनेक प्रकार के रोग जनित लक्षण प्रादुर्भूत होते हैं। जब ऐसे जैवी रोगों का ज्ञान हो जाय तो चिकित्सक उन जैवों का प्रतिविष जो अन्य प्राणियों में तयार कराया गया था उसका सूची भरण देते हैं। उसके सूचीभरण देने पर उसके प्रभाव से वह विष नष्ट हो जाता है। इस समय अनेकों ही जैवी व्यधियों के प्रतिविष बने हुए बाजार में मिलते हैं, जिनके कारण ही उन व्याधियों से बचने के साधन ज्ञात हो गये हैं। जैसे रोहिणी, धनुर्वात, सर्पविष, अलर्कविष,कर्दमविष, आदि। इन रोगों के निवारणार्थ ही यह लसिका चिकित्सक गण तयार कर सके हैं।

इन जैवों के वहिर्विषों का शरीर पर क्या प्रभाव होता है। इसका भी अच्छी तरह से अध्ययन किया गया है। यह प्रत्येक प्रकार के जैवों द्वारा उत्पन्न होने के कारण अनेकों प्रकार का होता है और शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों पर इनका भिन्न-भिन्न प्रभाव होता है। यह विष कोषा के जैवाद्यम में प्रवेश करके उसे जमा देता है इसी से उसका जैवाद्यम मज कर सिक्थ हो जाता है और मृत हो जाता है। यह रुधिराणुओं पर भी बहुत बुरा प्रभाव डालता है इससे वे रुधिराणु मृत होने लगते हैं। कुछ विष ऐसे भी हैं जो रक्त के स्कन्धी द्रव्यों पर प्रभाव डाल कर उसे नष्ट कर देते हैं। इससे रक्त स्कन्धन शक्ति घट जाती है। कुछ ऐसे भी विष हैं जो श्वेताणुओं को विगलित कर नष्ट कर डालते हैं। इन जीवाणुओं और कीटाणुओं से दो चार नहीं सैंकड़ों प्रकार की व्याधियां प्रादुर्भूत होती हैं अन्त्रवासी इन जैवों से अब तक जो जो व्याधियां होते पायी गई हैं, संक्षेप में हम उनके नाम का यहां निर्देश करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्त्रवासी जैवों से होने वाले कुछ रोग

परीक्षाओं से देखा गया है कि यह अन्त्रवासी जैव जब तक तो उदरदरी में बने रहते हैं तब तक तो यह अपना जीवन निर्वाह हमारे वक्ष्यमान द्रव्यों को खाकर उस पर अपना निर्वाह करते हैं किन्तु किसी कारण वह जब अन्त्राशय को छोड़कर शरीर के किसी अन्य स्थानों में प्रवेश कर जाते हैं तो यह वहां अपने रहने के लिये स्थान या केन्द्र ढूंढते हैं क्योंकि जब यह शरीर के भीतर घुस जाते हैं उस समय शरीर के रक्षक इनको वहां ठहरने नहीं देते, इनको मारने का प्रयत्न करते हैं। उसी समय यह अपना वहिर्विष आस पास फैलाकर उन रक्षकों को अपने पास फटकने नहीं देते और अपने रहने के स्थान ढूंढते हैं और अपनी स्थिति को दृढ़ करने का प्रयत्न करते हैं। यदि इन जैवों की शक्ति अधिक हो इनका विष बलवान् हो तो वह शरीर के किसी न किसी स्थान को केन्द्र बना कर वहां जम जाते हैं। जब यह जम जाते हैं तभी व्याधियों का रूप प्रकट होता है। जिन जैवों के प्रभाव से शरीर व्यापि ज्वर आदि सार्वदेशिक लक्षण उत्पन्न होते हैं ऐसे अन्त्रस्थ कीटाणु अब तक चार प्रकार के जाने गये हैं। उन्हीं से मन्थर, उपमन्थर ज्वर आदि अवधिबन्धी व्याधियां उत्पन्न होती हैं। यह कीटाणु अपना केन्द्र अन्त्राशय में ही स्थापित करते हैं,तभी मनुष्य को मंथर उपमंथर आदि ज्वर प्रादुर्भूत होते हैं।

अतिसारोद्भवी जैवः—जिस तरह से मन्थर ज्वर उत्पन्न करने वाले चार प्रकार के मन्थरी कीटाणु जाने गये हैं इसी तरह से कोई ९-१० प्रकार के अतिसार उत्पन्न करने वाले कीटाणु हैं। इनसे जो अतिसार उत्पन्न होता है उन सबों के लक्षणों में इनका कम अन्तर होता है जिसे देख कर कोई यह नहीं बतला सकता कि यह किस जाति के कीटाणुओं से उत्पन्न हुआ। इसका ज्ञान तो हमें तभी होता है जब हम सूक्ष्म दर्शक के द्वारा उन कीटाणुओं के स्वरूप को देखते हैं। इसी तरह से कोई चार पांच प्रकार के जीवाणु ऐसे भी देखे गये हैं जो अतिसार उत्पन्न करने में कारण हैं। इनसे उत्पन्न अतिसार को भी लक्षणों से नहीं पहचाना जा सकता। इनका ज्ञान भी हमें सूक्ष्म दर्शक से ही ठीक तौर पर होता है। इनमें से शिगा नामक अनुसन्धान कर्ता के द्वारा ज्ञात हुए चार प्रकार के ऐसे कीटाणु हैं जो अन्तर्विष और वहिर्विष दोनों उत्पन्न करते हैं। इनका वहिर्विष इतना उग्र होता है जिसका प्रभाव सारे शरीर के कोषाओं पर, रक्त पर, यकृत पर होता है प्रवाहिका संग्रहणी आदि रोग इन्हीं कीटाणुओं के विष प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। इन अन्त्र वासी जैवों से अब तक मोटी मोटी व्याधियां देखी जा चुकी हैं वह निम्न हैं—पिताशय शोथ, पिताशय विद्रधि, पिताश्मरी, यकृत-विद्रधि, पुच्छान्त्र शोथ, परिविस्तृतकला शोथ, कर्णकुहर शोथ, कर्णकुहर-विद्रधि, वस्तिशोथ, मदग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लेण्ड) शोथ, अलिन्दशोथ, वृक्कालिन्दशोथ, वृक्कविद्रधि, वृक्कोपरिविद्रधि, रक्तपूय मयता, अनेक प्रकार के व्रण, फैलने वाली छूतदार फुन्सियां, रक्त विकार, रक्ताल्पता, रक्तपूयमयता, कीटाणु मयता आदि आदि अनेकों रोग देखे जाते हैं। जिनका ज्ञान सिवाय रक्त परीक्षा के हो ही नहीं सकता।

कुछ साधारण व्याधियां जिनका सही ज्ञान नहीं होता था अब हुआ

पेट में जब हवा ज्यादा बनने लग जाती है हम समझते हैं कि पेट में वायु का प्रकोप हो रहा है, वास्तव में यह किसी वायु के प्रकोप से ऐसा नहीं होता। प्रत्युत जब उदरदरी में यह कीटाणु बढ़ते हैं और इनके द्वारा पच्य लेही विकृत कर दी जाती है उस समय उस विकृति के कारण पेट में अनेक प्रकार की वायुओं का संजनन होने लगता है, उससे ही वह वायुएं बढ़ने लग जाती हैं। कई बार इस तरह के पेट में विकार बने रहें तो रात को अच्छी तरह से नींद नहीं आती। रात को स्वप्न आते रहते हैं। इसका कारण यही होता हे कि इन जैवों के कारण जो उदरदरी में सन्धान उठा करते हैं और उससे जो वायुएं उत्पन्न होती रहती हैं उनका कुछ न कुछ अंश रक्तगत होकर रक्त परिभ्रमण के मार्ग से मस्तिष्क में पहुँच जाता है इन्हीं वायुओं की उपस्थिति के कारण मानस क्षेत्र सदा विचलित रहता है इसी कारण रात्रि को नींद नहीं आती और मानस क्षेत्र की कोषाओं को विश्राम नहीं मिलता। वह क्षण क्षण में उत्तेजित होती रहती है इसी से स्वप्न की स्थिति बनी रहती है। मुझको कई बार जब ऐसी ही स्थितियां उत्पन्न हो जाया करती हैं, जब रात्रि को नींद नहीं आती उस दशा में इन उदरदरी में रहने वाले जैवों को मारने वाली औषधियां तीन चार गोली ले

[शेष पृष्ठ १७२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्भ-विज्ञान के कुछ और रहस्य

जैसे पुरुषों में दो अंड ग्रन्थियाँ होती हैं और वह शुक्र कीट का निर्माण करती हैं जो गर्भाधान में कारण होता है ठीक इसी तरह से स्त्रियों के शरीर में दो डिम्ब ग्रन्थियाँ होती हैं जो रजाणु का निर्माण करती हैं यही रजाणु शुक्राणु से जब मिलता है तभी गर्भ ठहरता है। पुरुषों के तो वृषणांड बाहर लटके हुये दिखाई देते हैं, किन्तु स्त्रियों की यह ग्रन्थियां कोई बाहर से देख नहीं सकता। यह गर्भाशय के दोनों ओर वस्ति गह्वर के पार्श्विक दीवारों से लगी हुई भीतर स्थित रहती है यह ग्रन्थियां लगभग बेर के बराबर वजन में कोई ढाई तीन माशे के लगभग होती हैं। जब तक तो स्त्रियों को रजोदर्शन नहीं होता, इन डिम्ब ग्रन्थियों का वाह्य स्तर चिकना साफ सुथरा होता है। जब मासिक धर्म आरम्भ होता हैं तो रजोदर्शन के १४ वें दिन रज और रजाणु उस स्तर को फोड़ कर बाहर निकलते हैं। उस समय उस स्तर में क्षत बन जाता है। उस क्षत स्थान में फिर पीत वर्ण की वसा और कुछ और द्रव्य संचित होने लगते हैं और वहाँ पर एक नई प्रकार की पिंगल कोषाओं का प्रादुर्भाव होता है। यदि गर्भाधान हो जाय तो उस पिंगल कोषा से एक प्रकार का गर्भ रक्षक ओज उत्पन्न होता है। जो गर्भ की रक्षा करता है यह ओज चार मास तक उन कोषाओं में बनता रहता है, इसके बाद बन्द हो जाता है। फिर इस ओज का स्राव अपरा से होने लगता है। यदि गर्भाधान न हो तो उस स्थिति में यह पिंगल कोषाएं लुप्त हो जाती हैं और उस डिम्ब में उस स्थान पर उस क्षत का एक बहुत छोटा सा गढा रह जाता है। इस तरह से प्रतिमास उस डिम्ब पर एक नया गढ़ा बनता चला जाता है। स्त्री अपनी आयु में कितनी बार रजस्वला हुई उन गढ़ों को गिन कर उसकी संख्या बताई जा सकती है।

कुछ इतिहास—इन डिम्ब ग्रन्थियों का ज्ञान आयुर्वेदज्ञों को नहीं हुआ था, केवल इतना जान सके थे—

आर्तव वहे द्वे तयोर्मूलं आर्तव वहिन्याश्च धमन्यः। चरक

आर्तव वाही दो धमनियां होती हैं जिनमें आर्तव बहा करता है। इन डिम्ब ग्रन्थियों का सबसे पूर्व १६७३ ई० में डा० ग्राफ ने उल्लेख किया था। उसी ने सबसे पूर्व इन क्षत स्थानों में गढ़े देखे थे, और उसने ही इन रजाणुत्पादी कोषाओं का ज्ञान प्राप्त किया था। इसीलिये इन गढ़ों वाली कोषाओं का नाम ग्राफियन कोषाएं पड़ गया। आज भी यह इसी नाम से पुकारी जाती हैं। इसके बाद डिम्ब की रचना सबसे पूर्व देखने समझने का श्रेय एक इसी वैज्ञानिक वोन वेयर को है। इन डिम्बों का वास्तविक कार्य व्यापार का पता तो तब चला जब एक स्त्री को इन डिम्बों में अर्बुद हो रहा था और उसे काट कर निकाल देने के सिवा और कोई चारा न था जब इन्हें काट कर निकाल दिया गया तो उस स्त्री का मासिक धर्म बन्द हो गया।

रजस्वला होने के समय जो रक्त प्रति मास स्त्रियों का जाया करता है, वह रक्त तो गर्भाशय कला की सूक्ष्म धमनियों में संचित होता रहता है जब वह २८ वें दिन पूर्णतया रक्त पूरित हो जाती हैं उस समय वह फट जाती हैं उसमें से यह रक्त तीन चार दिन तक स्रवता रहता है फिर वह बन्द हो जाता है। इस शोणित स्राव का सम्बन्ध सीधे तो उन डिम्ब ग्रन्थियों से दिखाई नहीं देता था, किन्तु जब डिम्ब ग्रन्थियों को काट कर निकाल दिया गया तो मासिक धर्म के बन्द होने पर इस बात का ज्ञान हुआ कि इन ग्रन्थियों से इस गर्भाशय के रक्त संचय का अवश्य सम्बन्ध है। तब इसको जांचने का प्रयत्न हुआ। कुछ प्राणियों के डिम्ब काट कर निकाल दिये गये और जब उनका रजोदर्शन चक्र बन्द हो गया तो फिर उन प्राणियों के शरीर में दूसरे प्राणियों के डिम्ब काट कर लगाये गये। जिनके शरीर में यह डिम्ब फिर लग गये उन प्राणियों का रजोदर्शन चक्र फिर आरम्भ हो गया और उन्होंने बच्चे दिये। इससे इस बात का सही ज्ञान हुआ कि इन डिम्बों से मासिक धर्म का निश्चित सम्बन्ध है। तब फिर इस पर और अधिक खोज होने लगी।

१९११ ई० में डा० एलडर ने पशुओं के डिम्ब से उसका सत्व निकाला और जिन प्राणियों का ऋतुकाल नहीं आता था उन्हें उसके सूचीभरण दिये उसका परिणाम यह हुआ कि उनमें कुछ समय के बाद ऋतुकाल आता दिखाई दिया और उन्होंने सम्भोग के लिये नरों को अपनी ओर आकर्षित किया और फिर कुछ समय में ही उन्होंने गर्भ धारण किया। यह प्रयोग अनेकों प्रयोगकर्ताओं ने दोहराये और उसे सही पाया। १९२४ में अमेरिका के डा० डोइसी ने और १९२५ ई० में हालेण्ड के डा० लैक्योर ने सिद्ध किया कि ग्राफियन कोषा में जो द्रव विद्यमान होता है उसमें यह शक्ति है कि वह गर्भाशय में ऐसा परिवर्तन उत्पन्न कर देता है कि वह ऋतुकाल की स्थिति अपने में उत्पन्न कर लेता है और उसके अन्दर से ऋतुधर्म के अंकुर फूट पडते हैं और वह समागम के लिये लालायित हो जाती है। १९२७ में जर्मनी के दो डाक्टरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने मिलकर कुछ सगर्भा स्त्रियों के मूत्र की परीक्षा करके बतलाया कि वह रजोज जो ऋतुकाल का प्रादुर्भावक है उसका सक्रिय अंश मूत्र में भी विद्यमान रहता है। नर घोड़े के मूत्र में यह रजोज स्त्री मूत्र की अपेक्षा ४०० गुणा अधिक देखा गया है। यह ओज तो गर्भाधान के लिये क्षेत्र तयार करता है किन्तु क्या गर्भ स्थिति अपने आप हो जाती है? ऐसा नहीं होता, प्रत्युत उन गर्भोत्पादनी कोषाओं के स्थान पर जो पिंगल कोषा का आविर्भाव होता है और वह जो एक विशेष प्रकार का ओज निर्माण करती है वही ओज गर्भ स्थापन में गर्भाशय को अनुकूल बनाता है और यह ओज ४ मास तक उस गर्भ की रक्षा करता है। जिन प्राणियों को गर्भाधान था उनके जब डिम्ब निकाल दिये गये तो उसका गर्भपात हो गया, किन्तु जिन प्राणियों के डिम्ब निकाल दिये गये थे उनको पिंगलोज के सूचीमरण दिये गये तो उनका गर्भ फिर पात नहीं होता।

गर्भजनक रजाणु भी जब रजाणूत्पादक कोषा के फटने से बाहर आता है वह फिर बड़ी आश्चर्यकारी विधि से रज वाहनी में पहुँचता है। रजाणु जब जन्म लेकर बाहर आता है यह खिसकता हुआ पुष्प पत्रिकाओं के समीप जब आता है पुष्प पत्रिकाएं इसे अपनी ओर आकर्षित कर उसे रज वाहनी में पहुँचा देती हैं। उधर वीर्य कीट गर्भाशय के भीतर जब पहुँचता है वह भी उन कीटों में जो बलवान तीव्र गतिकारी होता है वही उस रज वाहिनी के भीतर घुस पाता है जो उसके भीतर घुसने में समर्थ होता है वही रजाणु को जा पकड़ता है। इन दोनों के मिलने पर ही गर्भाधान होता है। यह अन्तर्रहस्य की प्रक्रिया को भी अनुसन्धान कर्ताओं ने प्रत्यक्ष देख लिया है। यह भी जाना गया है कि जितनी देर में रजाणु अपने गर्भजनक कोषा से निकल कर रज वाहनी में पहुँचता है लगभग एक दिन का समय ले लेता है। इस एक दिन में ही उस कोषा के स्थान पर फिर पिंगल कोषा का प्रादुर्भाव हो जाता है और वह पिंगलोज नामक एक ओज का उत्पादन करने लगता है। यही ओज रक्त में मिल कर गर्भाशय को गर्भ धारण के योग्य बनाता है। इस ओज के प्रभाव से गर्भाशय नरम पुलपुला होकर उस भ्रूण को अपने में चिपकाने के योग्य बन जाता है। इससे वह भ्रूण उस गर्भ से चिपक कर किसी एक स्थान पर लग जाता है। जब वह लग जाता है तभी वह बढ़ने लगता है। जब तक गर्भाशय चिपकना न बन जाये भ्रूण उसमें नहीं ठहरता। इस समय की प्रयोगशालाएं शरीर के भीतर होने वाली अनेकों सूक्ष्म क्रियाओं को देखने समझने में इतनी सफल हो गई हैं और उसकी वास्तविकता को जान कर चिकित्सक संसार को अपूर्व लाभ पहुँचा रहे हैं तथा विश्व के चिकित्सक तीव्र गति से आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। इधर हमारा वैद्य समाज इस प्रायोगिक ज्ञान से बिलकुल कोरा बना हुआ है।

———

[शेष पृष्ठ १४० का]

लिया करता हूँ उसका परिणाम यह होता है कि पेट में जो अधिक मात्रा में कीटाणु बढ़े होते हैं वह मर कर निकल जाते हैं, इससे वायुओं का संजनन घट जाता है, इसका परिणाम यह होता है कि वायुओं के घटते ही रक्त में विद्यमान वायु का अंश जब घट कर समाप्त हो जाता है तो सिर पर जो भारीपन का अनुभव होता है वह जाता रहता है और फिर खूब नींद आने लगती है। फिर स्वप्न का आना बिल्कुल ही बन्द हो जाता है। जिन व्यक्तियों को सिर दर्द की शिकायत प्रायः बनी रहती है ऐसे व्यक्तियों के पेट में इसी प्रकार कोई जैवी कारण विद्यमान होते हैं जिससे उदरदरी कभी स्वस्थ नहीं रहती, तभी उससे बनकर मस्तिष्क में पहुँचने वाली वायुएं सदा ही मस्तिष्क के स्नायु मंडल को उत्तेजित किये रहती हैं इसी से सिर का दर्द पीछा नहीं छोड़ता। चित्त का उद्विग्न बना रहना, किसी काम में मन न लगना, स्मरण शक्ति की कमी आदि अनेकों व्याधियां ऐसी हैं जो इन उदरदरी में रहने वाले जैवों के प्रभाव से उत्पन्न होकर बनी रहती हैं। रक्त विकार, फोड़ा, फुन्सी आदि ऐसे रोग हैं जो पूयोद्भवी कीटाणु जब रक्त में पहुँच कर वहां से वह त्वचा में अपना केन्द्र बनाते हैं तभी फोड़ा, फुन्सी आदि के कष्ट होते हैं। यह उदरस्थ जीवाणु, कीटाणु ही अनेकों रोगों के कारण हैं इसलिये अनेक क्षुद्र रोगों को समझने के लिये इन जैवों के प्रभाव को अच्छी तरह से समझना चाहिये। अनेक रोगो में मूल कारण यह जैव हैं इसको कभी भूलना नहीं चाहिये।

कुछ व्यक्तियों के नासा मार्ग में मस्से उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें हम नासाश कहते हैं यह नासिका रन्ध्र में मस्से उत्पन्न करने वाले उदरदरी में रहने वाले एक प्रकार के कीटाणु ही जब रक्त मार्ग से होकर नासिका रन्ध्र में पहुँच जाते हैं तो वही बड़ी खुरदरी ग्रन्थियां उत्पन्न करते हैं। इसी तरह से कुछ व्यक्तियों को नासिका से एक विशेष प्रकार का गन्ध युक्त श्लेष्म का स्राव होता रहता है जिसे हम पीनस के नाम से जानते हैं। यह दुर्गन्धित श्लेष्म उत्पन्न करने वाले अब तक तीन प्रकार के कीटाणु देखे जा चुके हैं। कई बार पेट का पच्यमान द्रव्य ऐसा दूषित हो जाता है जिसके कारण उससे ऐसे विषाक्त द्रव्य उत्पन्न हो जाते हैं जो रक्त में पहुँच कर अनेकों रोगों के कारण बनते हैं। इन सबों के मूल कारण को अच्छी तरह देखना समझना चाहिये।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सात्म्यीकरण क्रियाओं पर ओजों का प्रभाव

रक्त द्वारा शरीर की कोषाओं तक जो द्रव पहुँचता है इसी द्रव में समस्त पोषणीय द्रव्य घुले रहते हैं। इन द्रव्यों में से कुछ तो कोषाओं के भीतर आसानी से प्रवेश कर जाते हैं जैसे—अनैन्द्रियक लवण आदि। कुछ जरा कठिनाई से प्रवेश कर पाते हैं जैसे—असजन, स्नेही द्रव्य। कुछ ऐसे भी होते हैं जो अप्रवेश्य होते हैं। कोषाओं के जैवाद्यम की रासायनिक रचना इस द्रव्य से काफी भिन्न होती है किन्तु यही कोषाओं से उनके अंगों प्रत्यंगों के मध्य सम्पर्क का साधन होता है। परीक्षाओं से देखा गया है कि सूचिकाभरण द्वारा कोई रासायनिक पदार्थ रक्त में मिला दिया जाय तो यह कोषा के अन्दर पहुँच कर उसमें चलने वाली रासायनिक क्रियाओं को प्रभावित करता है। और कई रासायनिक द्रव्य उसकी आन्तरिक क्रियाओं को बढ़ा देते हैं, कई घटा भी देते हैं, कई द्रव्य आंशिक प्रभाव डालते हैं। इन रासायनिक द्रव्यों से भिन्न ओज भी रासायनिक क्रिया को प्रभावित करते हैं। उस तरह तो स्वतः कोषाओं में निरन्तर अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होते रहते है किन्तु जब उसमें अन्तःस्रावी ओज भी पहुँच जाय तो उसकी उत्प्रेरणा से रासायनिक क्रियाएं बढ़ जाती हैं।

यह ओज स्रावी ग्रन्थियां स्वतन्त्र इकाई के रूप में कार्य नहीं करती, प्रत्युत इनका कार्य-व्यापार अन्योन्याश्रयी है। जिस तरह शरीर में पाचन संस्थान आदि सामूहिक कार्य के विभाग हैं ठीक इसी तरह ओज स्रावी ग्रन्थियों का भी शरीर व्यापक एक संस्थान है और उन सबों का परस्पर कार्य-व्यापार में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि किसी एक ग्रन्थि के कार्य व्यापार में जरा भी वृद्धि या ह्रास हो जाता है या उसके ओज में यत्किंचित न्यूनाधिकता हो जाती है तो उसका प्रभाव दूसरी ग्रन्थियों पर पड़ता हैं और उसके साथ ही उनके कार्य-व्यापार में भी अन्तर आ जाता है। एक ग्रन्थि के कार्य-व्यापार के असन्तुलित होने पर शरीर की क्षय-पूर्ति पर भी प्रभाव पड़ता है। यदि यह ग्रन्थिजन्य अव्यवस्था कुछ समय तक बनी रहे तो उससे आन्तरिक विकृत प्रक्रियाओं की शृङ्खला ऐसी खड़ी हो जाती है जो रोगों के मूल कारण को जन्म देती है।

हमारे अन्दर अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की विकृति के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से सही पाई गई है। यदि हम इन ग्रन्थियों के कार्य-व्यापार और इनसे उत्पन्न होने वाले ओजों के वृद्धि-ह्रास को समझ लें तो उनसे उत्पन्न होने वाले व्याधि-मूल को समझने में कोई कठिनाई नहीं रहती। यह ओजस्रावी ग्रन्थि संस्थान का जो ज्ञान हुआ है और उन ओजों का जो अध्ययन हुआ है उसकी तो चर्चा हम इस अध्याय में करने चले हैं।

क्षय-पूर्ति पर अग्रज पीयूष ग्रंथि (पिट्यूटरी) का प्रभाव

जिन प्राणियों की पीयूष ग्रंथि का अग्रिम भाग काट कर निकाल दिया जाय उनके वृषणांड, डिम्ब, चुल्लिका, उपवृक्क आदि अन्तःस्रावी ग्रंथियां क्षीण होने लगती हैं और जिन प्राणियों को उक्त ग्रन्थि के ओज का सूचिकाभरण दिया जाय तो उक्त ग्रंथियों की वृद्धि होने लगती है। इसका कारण यह है कि इस अग्रज भाग में अब तक भिन्न-भिन्न १६, १७ प्रकार के ओज जाने गये हैं:-

(१) वर्धकौज (ग्रोथ प्रोमोटिंग)—इस ओज का शरीर की विशेषतः शाखाओं और अस्थियों के संयोजक तन्तुओं, अस्थि कोषाओं की वृद्धि से सम्बन्ध है। इस वर्धक ओज के अधिक सूचीभरण देने पर शरीर दानवाकार होने लगता है।

(२) यौनांग वर्धकोज (गोनाडोट्रापिक)—इस ओज का प्रभाव वृषण, डिम्ब, पौरुष, मद आदि ग्रंथियों की वृद्धि से सम्बन्ध रखता है। इसके सूचीभरण देने पर उक्त ग्रन्थियों का खूब विकास होने लगता है। यदि इस ओज की न्यूनता हो तो उक्त ग्रन्थियों का विकास रुक जाता है।

(३) डिम्बाणु उत्प्रेरकोज (प्रोलान ए)—इस ओज का प्रभाव डिम्बाणु जनक है। इसी की उत्तेजना से डिम्बाणुओं का विकास होता है और कमी से ग्रन्थि का ह्रास होता है।

(४) शुक्र वर्धकोज (प्रोलान बी)—इस ओज के प्रभाव से शुक्राणुओं की उत्पत्ति व वृद्धि होती है। यह ओज एक ओर शुक्राणु का विकास करता है दूसरी ओर वृषणोज का नियंत्रण भी करता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. An eGangotri Initiative

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) स्तन्य वर्धकोज (प्रोलैक्टीन)—जब गर्भ धारण होता है तो इस ओज के प्रभाव से स्तन ग्रंथियों का विकास होता है तथा प्रसव के बाद इन दुग्धजनक ग्रन्थियों का इसी के प्रभाव से विकास होता है और उसमें दूध की मात्रा बढ़ती है।

(६) क्लोम नियंत्रणोज (पेंक्रियाट्रोपिक)—इस ओज का प्रभाव क्लोम ग्रंथि पर तथा उसके मधु-विलीन (इंसुलीन) द्वारा रक्त शर्करा के सात्म्यीकरण पर नियन्त्रण रखता है।

(७) मधु शुक्त नियन्त्रणोज (डायावेटोजैनिक एण्ड किटोजोनिक)—इस ओज के प्रभाव से शार्करी द्रव्यों (कज्जलोदेर्तो) के सात्म्यीकरण का नियन्त्रण होता है। यदि इस ओज की कमी हो जाय तो रक्त में शर्करा की कमी हो जाती है और उसका ठीक सात्म्यीकरण नहीं होता। वह शर्कराएं फिर स्नेही पदार्थों में बदलने लगती हैं इससे शरीर पर चर्बी बढ़ने लगती है और उन स्नेही पदार्थों के असात्म्यीकरण से चुक्रोन (एसीटोन) बनकर मूत्र में जाने लगता है।

(८) चुल्लिकोत्पादकोज (थायरोट्रोपिक)—इस ओज का प्रभाव चुल्लिका ग्रंथि पर पड़ता है। इसीकी उत्तेजना पाकर चुल्लिका का विकास होता है और इस ओज की कमी से चुल्लिका ग्रंथि का ह्रास हो जाता है।

मेदोनियन्त्रणोज (लाइपोट्रापिक होर्मान)—यह ओज अल्प मात्रा में हो तो यकृत को मेद संचय में उत्प्रेरणा देता है। और अधिक मात्रा में पहुँचे तो यकृत के संचित हुए मेद को हटाने में उत्प्रेरणा देता है।

(९) उपचुल्लिकोत्पादकोज (पेराथायरोट्रोपिक)—यह ओज उपचुल्लिका ग्रन्थि का उत्प्रेरण करता है। यदि इस ओज का प्रभाव अधिक होने लगे तो रक्त में चूनजम के यौगिकों की मात्रा बढ़ जाती है।

(१०) वृक्कोपरिउत्प्रेरकोज(एड्रीनोट्रोपिक)—यह ओज उपवृक्कान्त: सार को उत्तेजित करता है तथा उसके ओज का नियन्त्रण व विकास में सहायता करता है।

(११) रुधिराणु उत्प्रेरकोज (एरीथ्रोपोइटिक)—यह ओज अस्थि मज्जा कोषाओं में पहुँच कर उनको उत्तेजित करता है जिससे उनकी रक्ताणुउत्पादन क्षमता बढ़ जाती है। इस ओज की कमी से रक्तोत्पादन घट जाता है।

(१२) षड्स्फुरेतोज (हैक्सी काइनोट्रोपिक—इसके प्रभाव से द्राक्षाज षड्स्फुरेत में बदला करता है। इस ओज की कमी से यह क्रिया रुक जाती है। किन्तु मधु-विलीन का सूचीभरण दिया जाय तो यह क्रिया फिर चल पड़ती है।

(१३) स्नेह क्षयपूर्त्योत्प्रेरकोज (फेट मेटावोलिज्म)—यह ओज कोषाओं में स्नेही पदार्थों के सात्म्यीकरण में सहयोग देता है। किन्तु इस ओज का विश्लेषण करने पर उसमें दो ओज मिश्रित हुए मिलते हैं। एक का प्रभाव यह देखा गया है कि इसके सूचीभरण देने पर स्नेह का सात्म्यीकरण ठीक न होकर रक्त में शुक्तोन (किटोन) की मात्रा बढ़ जाती है। शुक्तजनकोत्प्रेरकोज (कीटोजेनिकहार्मोन) यह ओज रक्त में शुक्तोन कीटोन की मात्रा को बढ़ा देता है।

दूसरे अंश का यह प्रभाव देखा गया है कि यदि इसका न्यून मात्रा में सूचीभरण दें तो शरीर में और यकृत कोषाओं में स्नेह के संचित होने में सहायता मिलती है। यदि इस ओज का अधिक मात्रा में सूचीभरण दिया जाय तो संचित स्नेह घट जाता है और स्नेह का दहन अधिक वेग से होता है।

(१४) पवन सात्म्यीकरणोज (नाइट्रोजन मेटावोलिज्म)—यह ओज पवनाम्लों के सात्म्यीकरण में सहायता करता है।

(१५) ब्राह्मणिकोत्प्रेरकोज (ब्रोमिक)—इस ओज के प्रभाव से ब्राह्मणिक ग्रन्थि में ब्रह्मणिका (ब्रोमीन) की उत्पत्ति होती है जो जाग्रत अवस्था में तो शरीर में विद्यमान रहती है निद्राकाल में वह अन्तर्धान हो जाती है।

(१६) यकृताँग नियन्त्रणोज (हिपेटोजेनिक)—यह ओज यकृत की रचना तथा उसके कार्य-व्यापारों पर प्रभाव डालकर उसे व्यवस्थित बनाये रखने में सहायता करता है।

(१७) रंजक नियन्त्रणोज (मेलानोफोटिक)—यह ओज रक्त रंजन करने वाले अवयव यकृत वृक्कोपरि-वल्क आदि पर प्रभाव डालकर उसके कार्य को नियन्त्रित रखता है।

पश्चिम पीयूष ग्रन्थ्योज का प्रभाव:—

यह भाग अग्रज से पीछे और पृष्टज के साथ लगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ होता है। इससे जो ओज बनता है उसका नाम पीयूषीन (पिटुट्रीन) है। इस पीयूषीन में भी कई प्रकार के ओजों का संमिश्रण पाया गया है। जिनके सूचीभरण देकर निम्न प्रभाव जाने गये हैं :—

(१) धमनिका नियन्त्रणोज--(पिटरेसीन) यह धमनियों को संकुचित कर रक्त चाप को स्थिर रूप में बनाये रखता है।

(२) पेशीनियन्त्रणोज—(वेसोप्रेसीन) इसका प्रभाव स्वतन्त्र पेशियों, श्वास प्रणालियों वस्ति व अन्न प्रणाली की पेशियों पर होता है। यह उन अंगों को संकुचित कर उसके कार्य-व्यापार को व्यवस्थित रखता है।

(३) अन्य पेशी नियन्त्रणोज—इसमें भी दो ओज मिश्रित रहते हैं एक पिटोसीन दूसरा आक्सीटोसीन यह दोनों ही अन्त्र व गर्भाशय की पेशियों को प्रभावित करते हैं। इसी ओज प्रभाव से प्रसवकाल में गर्भाशय के संकोच की गति बढ़ जाती है और बालक को गर्भ से बाहर करने में यह ओज पेशियों को उत्तेजित करता है।

(४) हृदेद्योत्प्रेरी ओज--यह पियूषीन हृत्पेशियों को उत्प्रेरित कर उन्हें सक्रिय बनाये रहता है। दूसरी ओर धमनियों को संकुचित कर रक्त चाप को स्थिर रखने का प्रयत्न करता है।

(५) मूत्रस्रोतों की आवरक कला को उत्तेजित करता है इससे छने हुए जल का शोषण बढ़ जाता है इसीसे मूत्र की मात्रा स्थिर रहती है। दूसरे यह वस्ति पेशियों को उत्तेजित कर मूत्र त्यागने की गति को नियन्त्रित रखता है। अन्न प्रणालियों की पेशियों को उत्तेजित कर उनकी गति बढ़ाता है। आमाशय पेशियों को उत्तेजित कर जब उसकी गति बढ़ती है तब आमाशयिक स्रावों में कुछ कमी आ जाती है। स्तन ग्रंथियों की दुग्धस्रावी नलिकाओं की स्वतन्त्र पेशियों को संकुचित कर दुग्धस्राव के प्रवाह को बढ़ाता है। यदि किसी गर्भिणी को इसका सूचीभरण दे दिया जाय तो उसके स्तनों से स्वतः दुग्ध निकलने लगता है। यकृत और पेशियों में विद्यमान मधुजन को द्राक्षज में परिवर्तन करने के लिये उक्त अंगों को उत्तेजित करता है। इसीसे रक्त में द्राक्षज की मात्रा बढ़ जाती है और वह मूत्र में आने लगती है।

पश्चिम पीयूषग्रंथ्योजों का प्रभाव–इस भाग का छेदन कर इसके द्वारा होने वाला नियन्त्रण को देखा गया है जिसका उक्त भाग छेदन कर दिया जाता है उसे उदक मेह हो जाता है। मूत्र की मात्रा अधिक बढ़ जाती है। जल का ऊष्मीकरण नहीं होता। इस मूत्र में न तो मूत्रिया या मूत्राम्ल बढ़ता है न कोई और द्रव्य जाते हैं। यह कष्ट अस्थायी होता है। यदि पायूष का इसके साथ का अन्तिम भाग निकाल दिया जाय तो उदकमेह स्थायी रूप से बना रहता है।

अग्रज पीयूष ग्रंथि प्रभाव—प्रयोगों से देखा गया है कि अग्रज पीयूष ग्रन्थि जिन प्राणियों की निकाल दी गई है उनके आंतों की द्राक्षज आचूषण की शक्ति बहुत घट जाती है। यही नहीं पेशियों में, यकृत में, शर्करीय पदार्थों की कमी हो जाती है और रक्त में द्राक्षज बढ़ जाती है। इससे भिन्न यकृत में जो द्राक्षजन का भण्डार है वह भी घट जाता है। इसके प्रभाव से क्षय-पूर्ति-क्रिया का वेग बढ़ कर शर्कराओं का अधिक दहन होता है। इसीसे श्वसनांक की संख्या बढ़ जाती है। जिन प्राणियों को उक्त ओज सूचीभरण दिये गये हों उनके यकृत और पेशियों में द्राक्षजन संचय की प्रवृत्ति बहुत बढ़ जाती है और शर्कराओं का दहन घट जाता है। इसीसे श्वसनांक की संख्या भी घट जाती है।

मधुविलीन के विपरीतगामी प्रभाव—मधुविलीन (इन्सुलीन) क्लोम का वह ओज है जिससे रक्तगत द्राक्षज का ऊष्मीकरण होता रहता है। किन्तु पीयूष ग्रन्थि का क्लोम नियन्त्रक ओज मधुविलीन की क्रिया को मर्यादित रखता है। यदि किसी प्राणी की अग्रज पीयूष ग्रन्थी का छेदन कर दिया जाय तो मधुविलीन बिना नियन्त्रण के रक्तगत शर्करा का इतनी तीव्र गति से दहन करता है कि रक्तशर्करा का अनुपात ८० स०धान्य प्रतिशत से नीचे चला जाता है। रक्त में द्राक्षज की राशि प्रायः ८० से १२० स० धान्य प्रतिशत के मध्य रहती है। जब रक्त द्राक्षज की मात्रा घटकर ३०-४० स०धान्य रह जाती है उसी समय आक्षेप, चित्तविक्षोभ, दुर्बलता, ग्लानि, हस्तपाद कम्प, वमनेच्छा, वमन, स्वेदाधिक्य, प्रलाप, मूर्च्छा आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यदि रोगी को शर्करा खाने को दे दी जाय तो कुछ घंटों में सारे लक्षण जाते रहते हैं और रोगी स्वस्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाता है। परीक्षाओं से देखा गया है कि किसी स्वस्थ व्यक्ति को इस क्लोम नियन्त्रणोज के सूचीभरण दिये जायं तो रक्त शर्करा की मात्रा बहुत बढ़ जाती है जो सारी शर्करा ऊष्मीकृत नहीं होती, इसीसे वह मूत्र में जाने लगती है। यही नहीं रक्त द्राक्षज का बहुत सा अंश स्नेहीकृत होते समय जब वह मध्य यौगिक चुक्रोन (एसीटोन) में बदलता रहता है वह दहन नहीं होता। इससे रक्त में चुक्रोन की मात्रा बढ़ जाती हैं जो मूत्र मार्ग से जाने लगती है। कई बार पीयूष ग्रन्थि का अग्रिम भाग विकृत होकर बढ़ जाता है उस समय उक्त ओज की मात्रा भी बढ़ जाती है। इसी ओज वृद्धि के प्रभाव से रक्त शर्करा की मात्रा मर्यादा से बहुत अधिक३००स०धान्य प्रतिशत से ऊपर जा पहुँचती है ऐसे समय उस ग्रन्थि वृद्धि का प्रभाव मधुमेह जन्य स्थिति से भिन्न होता है। प्रयोगों से एक बात और महत्व की देखी गई है कि स्वस्थ व्यक्ति को क्लोम नियन्त्रणोज लगातार देते रहें तो पहले उसे मधुमेह हो जाता है फिर धीरे-धीरे वह घटता जाता है और मूत्र में शर्करा का जाना बन्द हो जाता है। इसका कारण तो ठीक ज्ञात नहीं हुआ किन्तु अनुमाना गया है कि किसी अन्तःस्रावी ग्रन्थ्योज की मात्रा बढ़कर रक्त द्राक्षज का नियन्त्रण करती है। क्योंकि क्लोम नियन्त्रणोज के लगातार सूचीभरण देने पर क्लोम के लेंगर हैन्स द्वीप कोषाएं मरने लगती हैं। इसीसे मधुविलीन की मात्रा घट जाती है, तभी मधुमेह स्थायी रूप ग्रहण कर लेता है। किन्तु इस स्थिति में अग्रज पीयूष ग्रन्थि काट कर निकाल दी जाय तो मधुमेह घट जाता है। इससे स्पष्ट है कि कज्जलोदेतों की क्षय-पूर्ति में उक्त ग्रन्थि ओजों का पूर्ण सम्बन्ध है। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पीयूषोज प्रभाव से शरीर में शर्कराओं का ऊष्मीकरण स्थिरीकरण, संचयीकरण का नियन्त्रण करता है और शर्कराओं का सात्म्यीकरण व्यवस्थित रूप से चलता रहता है।

कज्जलोदेत क्षय-पूर्ति पर मधुविलीन का प्रभाव-

प्रयोगों से देखा गया है कि क्लोम ग्रन्थि के लेंगर हैंन्स द्वीप कोषाएं काट कर निकाल दी जाय तो उस प्राणी में मधुविलीन नामक ओज के न रहने से निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं :—

(१) रक्त में द्राक्षज की मात्रा ३०० स० धान्य के ऊपर चली जाती है और उसका दहन रुक जाता है। इसी से मूत्र में शर्करा जाती रहती है। ऐसी दशा में शर्कराएं न खाने पर भी रक्त की यह मात्रा नहीं घटती।

(२) यकृत में द्राक्षजन का जो संचय रहा करता है उसका कोष खाली हो जाता है। पेशियों में भी जो द्राक्षजन संचित रहता है उसकी भी मात्रा घट जाती है।

(३) क्लोम ग्रन्थि निकाल देने पर उस समय यह स्थिति देखी जाती है कि जितनी मात्रा में कज्जलोदेत खाये जायं उतनी ही मात्रा में मूत्र-मार्ग से निकल जाते हैं। जब क्लोम विच्छेदी प्राणी का शरीर अधिक कृश हो जाता है तो उस स्थिति में कुछ द्राक्षज की मात्रा रुकने लगती है।

(४) द्राक्षज का ऊष्मीकरण बहुत घट जाता है इसीलिये श्वसनांक की संख्या भी बहुत कम रह जाती है। इसका अनुपात स्नेह सात्म्यीकरण के स्तर ०·७१ के आस पास आ जाता है।

(५) उपवास करने वाले व्यक्ति या अस्रजनीय भोजन पर रहने वाले व्यक्ति के मूत्र में जाने वाली शर्करा और पवन यौगिकों का अनुपात समान हो जाता है। यह अनुपात लगभग ३· के होता है। जो इस बात का सूचक है कि भोजन में लिये गये अस्रजन का बहुत सा अंश शरीर के भीतर द्राक्षज में बदल रहा है और साथ ही तन्तुओं का अस्रजन भी क्षय होकर द्राक्षज में परिवर्तित हो मूत्र-मार्ग से जा रहा है।

(६) स्नेह पाचन काल में जो चुक्रोन बनता है वह सात्म्यीकृत न होने में जैसा का तैसा मूत्र में जाने लगता है।

(७) जिस प्राणी का समस्त क्लोम निकाल दिया गया है ऐसे प्राणी अन्त समय उदन्यूनता (डिहाइड्रेशन) और अम्लोत्कर्ष ग्रसित होकर उसकी संज्ञानाश हो जाती है जिसके कुछ दिन बाद प्राणी मर जाता है।

ऐसे प्राणियों को जिनमें उक्त लक्षण उत्पन्न हो गये हों उन्हें मधुविलीन के सूचीभरण दिये जाएं तो उनके सारे लक्षण जाते रहते हैं और ऐसे प्राणियों को मधुविलीन के सूचीभरण पर वर्षों जीवित रखा गया है।

यह भी देखा गया है कि शार्करी श्रेणी के द्रव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक खाये जायँ और उसके साथ या खाने से पूर्व मधुविलीन का सूचीभरण दिया जाय या सिरावेध द्वारा द्राक्षज की अधिक मात्रा पहुँचा दी जाय तो रक्त शर्करा का अनुपात नहीं बढ़ता। किन्तु श्वसनांक संख्या बढ़ जाती है। जिससे ज्ञात होता है कि कोषाओं में शर्कराओं का ऊष्मीकरण वेग से हो रहा है। यही नहीं पेशियों में भी द्राक्षजन संचय की प्रवृत्ति घट जाती है। कारण यह है कि यकृत पर मधुविलीन का प्रभाव यह होता है कि द्राक्षजन से द्राक्षज निर्माण की गति बढ़ जाती है। उधर कज्जलोदेतों से जो यकृत द्राक्षज का निर्माण कर उससे द्राक्षजनोत्पत्ति करता है यह क्रिया मधुविलीन के प्रभाव से घट जाती है।

शर्करा क्षय-पूर्ति पर वृक्कोपरीन का प्रभाव—

वृक्कों के सिर पर त्रिकोणाकार एक टोपी मढ़ी होती है। इस टोपी की रचना और उसके कार्यानुसार इसे दो भागों में विभक्त किया गया है। (१) वल्क और (२) अन्तःसार। यह दोनों ही भिन्न-भिन्न अन्तःस्रावी ओज निर्माता अंग है। वल्क में जो ओज बनते हैं वह अब तक चार प्रकार के जाने गये है :—(१) वल्कलीन (कोर्टिन), (२) चेतनीन (न्यूमीन), (३) वल्क दुग्धीन (कार्टिलेक्टीन), (४) हृदयासीन (कार्टियासीन)।

अन्तःसार में जो ओज बनते उनका पूरा पृथक्करण नहीं हुआ किन्तु अब तक दो प्रकार के ओजों का ज्ञान हो पाया है :-(१) अन्तःसारीन (एड्रीनेलीन) (२) अन्तःचापीन। इन दोनों भागों के ओजों का प्रभाव भिन्न-भिन्न है। प्रयोगों से पाया गया है कि वल्कीन नामक ओज जिसमें चार प्रकार के ओजों का मिश्रण होता है इस मिश्रित ओज का निम्न प्रभाव देखा जाता है। जिस तरह अग्रज पीयूषोज का प्रभाव अस्थि विकास पर होता है इसका भी इसी तरह अस्थि विकास पर होता है। इसके सूचीभरण देने पर अस्थियां बढ़ती हैं और इसकी कमी हो जाय तो चूनी भवन की क्रिया मन्द पड़ जाती है, अस्थियों का निर्माण पूर्णरूपेण नहीं होता। इसीसे अस्थि विद्रूपता उत्पन्न हो जाती है। इसका प्रभाव यौन ग्रन्थियों पर भी देखा जाता है। इसके सूचीभरण से यौन ग्रन्थियों की वृद्धि होती है और ह्रास से उनका विकास रुक जाता है। देखा गया है यदि किसी बालक के वृक्कवल्क में अर्बुद (ट्यूमर) हो जाय या वल्क वृद्धि दोष हो जाय तो ऐसी स्थिति में वल्कलीन की मात्रा अधिक बन कर देहव्यापी होती रहती है, इससे ७-८ वर्ष के बालक-बालिकाओं में पूर्ण युवक-युवती जैसे यौनांगों की वृद्धि हो जाती है और कहीं किसी युवती के वल्क वृद्धि का रोग या अर्बुद रोग हो जाय तो इस ओज वृद्धि के प्रभाव से उसका ऋतुधर्म बन्द होकर उसमें पुंसत्व के चिह्न प्रादुर्भूत हो जाते हैं। और कहीं किसी का यह वल्क भाग क्षीण हो जाय तो वल्कलीन की कमी से चिरकालीन हलीमक (एडीसन का रोग) हो जाता है जिससे रक्ताल्पता, रक्तचाप न्यूनता, क्षय-पूर्ति में ह्रास, शरीर का ताम्रवर्ण या नीलाभवर्ण होना, वमन, कम्प आदि कष्ट प्रादुर्भूत हो जाते हैं।

प्रयोगों से देखा गया है कि जिन प्राणियों के दोनों ओर का वल्क भाग उतार दिया गया है उनमें निम्न लक्षण उत्पन्न हो गये:—

(१) रक्त में मूत्रिया और क्रव्ययीन (क्रियाटीन) की वृद्धि हो जाती है। (२) रक्त में उदह्रास होता है (३) क्षारीयकोष की मात्रा मर्यादा से न्यून हो जाती है। (४) रक्त में सैंधव लवण सन्तुलित मर्यादा से न्यून हो जाता है तथा पांशुजम लवण मर्यादा से अधिक बढ़ जाता है। अर्थात दोनों लवणों का सन्तुलन बिगड़ जाता है। (५) दुर्बलता अधिक प्रतीत होती है और शरीर कृश हो जाता है। (६) रक्तचाप में ह्रास होता है। (७) रक्तज शर्करा की मात्रा घट जाती है। (८) नाड़ी की गति मन्द हो जाती है अर्थात हृदय की गति घट जाती है। (९) पाचक विकारों में कमी हो जाने से पचन में विकार आ जाता है। (१०) श्वास प्रणाली का मार्ग संकुचित हो जाता है। इसीसे श्वास लेने में कष्ट होता है। इसके पश्चात ५-७ दिन में ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है।

यदि एक ओर के वल्क को उतार दिया जाए तो देखा जाता है कि कुछ ही दिन में दूसरी ओर का वृक्कोपरि वल्क बढ़ कर उस हानि की पूर्ति कर लेता है और उतनी ही मात्रा में वल्कलीन बनाने लगता है जितनी कि दोनों ओर के वल्क में बना करती थी और दोनों ओर के वल्क निकाल देने पर उन प्राणियों को वल्कलीन के सूचीभरण देते रहें तो उनके स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता, वह प्राणी काफी आयु भोग लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वल्कलीन में मिला हुआ दूसरा ओज चेतनीन (न्यूमीव) को शुद्ध रूप में भिन्न कर लिया गया है और इसकी न्यूनता व वृद्धि के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इसका सूचीभरण देने पर यह पहले लसिकावाहनियों में जाता है वहां से फिर रक्त संस्थान में प्रवेश कर श्वास प्रणाली को उत्तेजित करता है। यह लसिका वाहनियों में होकर रक्त में पहुँचता है इसको निम्न प्रयोग से जाना गया। जो लसिकवाहनियां उपवृक्क से सम्बन्धित है उन्हें काट दिया गया तो चेतनीन का निर्गत बन्द हो जाने से श्वसन क्रिया बन्द हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में चेतनीन का सूचीभरण दिया जाए तो पुनः श्वसन क्रिया चल पड़ती है। वल्क दुग्धीन नामक तीसरे ओज का प्रभाव भी प्रयोग से देखा गया है, इसकी उपस्थिति में स्तन ग्रन्थियों में दुग्ध की मात्रा बनती वह बढ़ती रहती है। और इसके प्रभाव में दुग्धजनक ग्रन्थियों में दुग्धोत्पादन घट जाता है। चौथे ओज का प्रभाव भी देखा गया है इस हृदयासीन की विद्यमानता से हृदय की गति के लिये उत्तेजना मिलती रहती है और इसके अभाव में हृदय बैठने लगता है।

अन्तःसारीन का प्रभाव—

(१) रक्त संस्थान पर प्रभाव--इस ओज का सूचीभरण दिया जाए तो रक्त वाहनियों में संकोच होता है। हृदयगत वाहनियों पर इसके विपरीत प्रभाव होता है अर्थात उनका प्रसार होता है। इसी कारण रक्त चाप वृद्धि होती है। जिस प्राणी को इसका सूचीभरण दिया गया हो उसकी प्राणदा नाड़ी काट दी जावे तो इसका प्रभाव और भी बढ़ जाता है। देखा गया है कि प्राणदा इसके प्रभाव को शमन करती है। इस ओज का प्रभाव यह देखा जाता है कि जहां पर पेशियों और स्नायुओं का सन्धि स्थान होता है वह स्थल प्रभावित होकर उनका संकोच होता है। अन्न प्रणाली की रक्त वाहनियां इससे अधिक प्रभावित हो संकुचित होती हैं। जिन अंगों में साम्वेदनिक स्नायु सूत्रों की न्यूनता रहती है उन पर इसका प्रभाव न्यून होता है जैसे सिर और फुफ्फुस। जो धमनियां अधिक फैली हों उन पर संकुत्वन अधिक होता है।

(२) इसका प्रभाव अलिन्द और निलय कपाटों पर सीधा पड़ता है। इसीसे वे जल्दी-जल्दी खुलने और बन्द होने लगते हैं तभी संकोच कालीन वेग बढ़ जाता है और रक्त निर्यात में वृद्धि होकर रक्तचाप बढ़ता है। प्राणदा नाड़ी को काट दिया जाए तो यह प्रभाव अधिक स्पष्ट देखा जाता है।

(३) अन्न प्रणाली संस्थान की समस्त पेशियों में प्रसार होता है तथा आमाशय का मुद्रिका द्वार तथा उण्डुक द्वार की संकोचनी पेशियों में अधिक संकोच होता है। अर्थात जिस तरह साम्वेदनिक स्नायुओं की उत्तेजना से उनमें संकोच प्रसार होता है बिल्कुल उसी जैसा ही प्रभाव इस ओज का होता है। अन्न प्रणाली की पेशियों के प्रसार होने से अन्त्र की परिसरण गति घट जाती है तथा पाचक रसों का स्राव भी घट जाता है, यहां तक कि लालास्राव भी घट जाता है।

(४) इसके प्रभाव से श्वास नलिकाओं में प्रसार होता है इसीलिये तो जब श्वास रोग के कारण श्वास लेने में कष्ट हो रहा हो तो इस ओज के सूचीभरण पर लाभ होता है।

(५)इसके प्रभाव से वृक्क के भीतर रक्तवाहनियों का संकोच हो जाने के कारण वृक्कों में रक्त की मात्रा कम पहुँचती है। रक्त की न्यूनता के कारण मूत्र, मूत्रिया भी कम छन कर बाहर आते हैं। इसी से मूत्र की मात्रा घट जाती है।

(६) इसके प्रभाव से मूत्र स्रोत पेशियों का संकोच तथा वस्ति पेशियों का प्रसार होता है।

(७)इसके प्रभाव से यकृत का साम्वेदनिक स्नायु जाल उत्तेजित होता है। इसी कारण द्राक्षजन द्राक्षज में परिणत होने लगता है। और वह रक्त में मिलकर रक्त शर्करा की मात्रा को मर्यादा से अधिक बढ़ा देता है। तभी यह मूत्र में जाने लगती है। तीव्र भावावेश की अवस्थाओं में अन्तः-सारीन (एड्रीनलीन) का स्राव बढ़ जाता है। इस वृद्धि से भी मूत्र में शर्करा देखी जाती है। शोक चिन्ता का इसके विपरीत प्रभाव होता है। इस स्थिति में ग्रन्थि शिथिल हो जाती है इसीसे स्राव की मात्रा भी घट जाती है।

(८) इससे पित्ताशय की कला भी संकुचित होती है तभी उससे पित्त की मात्रा अधिक स्रवने लगती है।

(९) प्लीहा की मज्जिक कोषाएं इसके प्रभाव से संकुचित होती हैं और उनकी सक्रियता बढ़ जाती है।

(१०) रक्त में जो स्कन्धन का गुण होता है यदि इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओज को थोड़ी मात्रा में दिया जाय तो उसे जमने से रोकता है। यदि अधिक मात्रा में दिया जाय तो शीघ्र जमने की प्रक्रिया बढ़ा देता है।

(११) यह स्वतन्त्र पेशियों के संकोच को बढ़ाता है और थकावट को शीघ्र दूर करता है। अर्थात श्रम काल में जो पेशियों में द्राक्षजन से तक्राम्ल बनता है उसीसे श्रम होता है। किन्तु यकृत इसे द्राक्षजन में बदल देता है। इसीसे थकावट जल्दी दूर हो जाती है। जिन कोषाओं तक साम्वेदिनक सूत्र नहीं पहुँचते उन कोषाओं पर भी इसका प्रभाव होता है।

(१२) यह श्वसन क्रिया को भी घटा देता है।

(१३) इसके प्रभाव से यकृत संचित किये द्राक्षजन को तीव्र गति से द्राक्षज में बदलने लगता है। इसीसे रक्त में शर्करा की मात्रा मर्यादा से अधिक हो जाती है। इस ओज का प्रभाव शरीर पर बिल्कुल उसी तरह होता है जैसा स्वतन्त्र स्नायु मण्डल का होता है।

वृक्कोपरिवल्कलोज प्रभावः—

इसके सूचीभरण देने पर यकृत द्राक्षजन का संचय बड़ी मात्रा में करने लगता है। रक्त गत शर्करा की मात्रा बढ़ती है। यदि रक्त में शर्करा की मात्रा मर्यादा से कम हो तो इस ओज के प्रभाव से अस्रजनीय यौगिक के विच्छेद से कज्जलोदेतों की रचना होने लगती है और उससे शर्कराएं बन कर सन्तुलन बनाये रखने का प्रयत्न होता है। इसका एक प्रभाव यह भी देखा गया है कि शर्कराओं का ऊष्मीकरण भी घट जाता है ताकि द्राक्षज का सन्तुलन बना रहे। द्राक्षज सन्तुलन को बनाये रखने के निमित्त ही यह तन्तुओं में होने वाले दहन को रोकता है।

(१) यदि किसी कारण से चुल्लिकोज की वृद्धि हो जाय तो इसके प्रभाव से शरीर की समस्त क्रियाएं बढ़ जाती हैं तथा स्वतन्त्र नाड़ीमण्डल का सन्तुलन बिगड़ जाता है इसीसे हृदय की गति बढ़ जाती है, मानसिक उद्वेग बढ़ जाते हैं, शरीर में बेचैनी रहती है आरम्भ में रक्तचाप बढता है फिर घट जाता है। और कहीं उक्त ओज की कमी हो जाय तो मानसिक शक्तियों में बहुत कमी आ जाती है। मनुष्य मन्द बुद्धि हो जाता है। मस्तिष्क क्षेत्र का विकास रुक जाता है। शारीरिक शक्ति में ह्रास होता है। स्वाभाविक प्रकृति में बड़ा परिवर्तन आ जाता है।

(२) हृदय व नाड़ी की गति मन्द हो जाती है स्थिर तापमान घट जाता है। भोजन की मात्रा कम हो जाती है पाचन शक्ति भी घट जाती है। मूत्र में जाने वाले मलमूत द्रव्य कम निकलते हैं त्वचा मोमवत, नाक मोटी, खुरदरी, खुश्क पीली झुरीदार हो जाती हैं। नाखून टूटने लगते हैं। यौन विकास रुक जाता है, रजोरोध होता है।

यदि बाल्यकाल में इस ओज की कमी हो जाय या इस ग्रन्थि को निकाल दिया जाय तो निम्न लक्षण देखे जाते हैं:—अस्थियां लम्बाई के रुख बढ़ने से रह जाती हैं, चौड़ाई में ठीक बढ़ती हैं, इसीसे शरीर अष्टावक्र होता चला जाता है। मानसिक विकास रुक जाता है, युवावस्था प्राप्त होने पर भी बुद्धि बालकों के तुल्य रहती है। अर्थात बालक मूढमति हो जाता है।

उपचुल्लिकोज प्रभाव—

यह चार ग्रन्थियां चुल्लिका के पीछे उससे सटी हुई होती हैं। इन ग्रन्थियों में कई ओज बनते हैं जिनको अभी तक भिन्न नहीं किया जा सका है। मिश्रित ओजों का निम्न प्रभाव देखा गया है:—इस ओज के सूचीभरण से निरेन्द्रिय चून व स्फुरेत यौगिकों का सेन्द्रिय रूप में परिवर्तन होता है और आगे क्षय-पूर्ति में उपयोजित होते समय इसके द्वारा सात्म्यीकरण प्रक्रिया अच्छी तरह चलती है। यह अन्त्र प्रणाली की कला को भी उत्तेजित कर उसकी क्रिया को बढा देता है और सन्धान द्वारा उत्पन्न विषाक्त पदार्थों के प्रवेश को रोकता है। यदि उक्त ग्रंथियों को निकाल दिया जाय या स्वयं ग्रन्थियां क्षीण होकर उनका ओजोत्पादन घट जाय तो इसकी कमी से शरीर का मांस तीव्रता से क्षीण होने लगता है। शारीरिक विकास रुक जाता है। रक्त शर्करा मर्यादा से बहुत अधिक बढ जाती है, इसीसे मूत्र में जाने लगती है। रक्त चून यौगिकों की मात्रा १० सहस्रांश धान्य प्रतिशत से घट कर ५-६ स० धान्य रह जाती है। इसीसे अस्थियों में चूनीभवन ठीक तौर पर न होने के कारण दांत व अस्थियां निर्बल पड़ जाते हैं। चूने की कमी के कारण स्वतन्त्र पेशियों के कार्य शिथिल हो जाते हैं तथा स्नायु सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि चूने के यौगिक ही स्नायुमण्डल की उत्तेजना को नियन्त्रित करते हैं।

[शेष पृष्ठ १५२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाय का गुण दोष विवेचन

लेखक—कविराज गोरीलाल चानना बी० ए० वैद्य वाचस्पति

आज चाय संसार में इतना सामान्य पेय बन चुका है कि शायद ही कोई व्यक्ति इसके प्रभाव से बचा हो। रासायनिक विश्लेषण से चाय में मुख्यतः कैफीन और टैनीन नामक दो पदार्थ पाये गए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ उद्वायी तैल होते हैं जिनके कारण चाय से उसकी अपनी विशेष सुगन्धि आती हैं।

अल्प मात्रा में कैफीन नाड़ी मण्डल उत्तेजक, स्वेदल और मूत्रल गुण रखता है। इसलिये चाय पीने से शरीर में स्फूर्ति, गर्मी का अनुभव होता है। मानसिक और शारीरिक चुस्ती अनुभव होती है थकान से उत्पन्न आलस्य अस्थायी रूप से दूर हो जाता है। अधिक तेज चाय हो तो मूत्र अधिक आने लगता है। यह चाय पीने वाले प्रायः सभी व्यक्ति अपने अनुभव से जानते हैं। इन्हीं प्रभावों के कारण ज्वर, प्रतिश्याय, अङ्गमर्द आदि अवस्थाओं में चाय पीने से लाभ होता है (डाक्टर लोग ऐसी अवस्था में एस्प्रीन, फिनेस्टीन और कैफीन मिला कर उसकी पुड़िया अथवा गोली ए. पी. सी. नाम से प्रयोग करते हैं।) प्रति पुड़िया में लगभग दो ग्रेन अर्थात १ रत्ती कैफीन होती है। चाय की एक तेज प्याली में भी १–१½ ग्रेन अर्थात आधी पौनी रत्ती के लगभग कैफीन होती है)

जहां तक स्वास्थ्य का सम्बन्ध है चाय के उक्त प्रकार के हल्के से अस्थायी प्रभाव से शरीर को कोई हानि नहीं पहुँचनी चाहिये परन्तु चाय में जो एक सब से बड़ा दुर्गुण है वह यह है कि यह अफीम, शराब (मद्य) आदि के समान एक नशे वाली चीज है। यदि नियम पूर्वक इसे पीना आरम्भ कर दिया जाय तो इसका भी अभ्यास या नशा पड़ जाता है। और कुछ दिन तक यह स्थिति आ जाती है कि यदि निश्चित समय पर चाय न मिले तो बेचैनी, आलस्य, सिर दर्द, अङ्गमर्द (हडफूटन) आदि लक्षण अनुभव होने लगते हैं जो चाय लेने पर ही शान्त होते हैं।

चाय का अभ्यास क्यों पड़ता है ?

अफीम, मद्य आदि कुछ एक वस्तुयें ऐसी होती है जिनको नियम पूर्वक लेते रहने से शरीर पर उनका दो प्रकार का प्रभाव होता है। प्रथम तो यह कि निश्चित समय पर उनको ग्रहण करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होती है और जब तक वह मिल न जाय, चैन नहीं पड़ता प्रत्युत वह इच्छा बनी रहती है शरीर में भारीपन, आलस्य और ग्लानि भी बने रहते हैं। दूसरा प्रभाव इन वस्तुओं का यह होता है कि शरीर इनके प्रति अधिक सहिष्णु होने लगता है अर्थात पहले अल्प मात्रा से जो प्रभाव इनका शरीर पर पड़ता था, वह अब उतनी मात्रा से नहीं पड़ता प्रत्युत उतना प्रभाव उत्पन्न करने के लिये उसकी मात्रा को उत्तरोत्तर बढ़ाना पड़ता है यहां तक कि उस वस्तु ग्रहण की इच्छा के प्रबल वेग की सामयिक शान्ति के लिये इतनी अधिक मात्रा में उसे लेना पड़ता है कि शरीर के जीवनाधार अङ्गों हृदय, मस्तिष्क, वृक्क आदि को उससे हानि होने लगती है।

चाय का मुख्य घटक कैफीन भी उक्त गुण रखता है और यही चाय का अभ्यास डालने में कारण है। इसी आधार पर भारतीय समाज के पुराने विचार धारा वाले लोग चाय का विरोध करते हैं परन्तु सस्ता और सर्वत्र सुलभ होने के कारण आज कल महर्घता के जमाने में कम वेतन पाने वाले बाबू लोगों एवं श्रमिक वर्ग को यह पेय इतना अधिक अनुकूल बैठता है कि उक्त भारी दुर्गुण के बावजूद भी इसका प्रचलन दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा है।

चाय का दूसरा मुख्य घटक टैनीन है जो ग्राही और संकोचक होने के कारण मलबन्धकारी प्रभाव रखता है। अधिक मात्रा में लेने पर टैनीन और कैफीन दोनों का आमाशय एवं अन्त्र की श्लेष्मिक कला पर संक्षोभक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण अजीर्ण, अग्निमान्द्य, क्षुधा-हीनता, आमाशय शोथ आदि लक्षण भी उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु हाल ही में चाय का एक नवीन गुण प्रकाश में आया हैं जो चाय में विद्यमान टैनीन घटक के कारण बताया जाता है।

जब परमाणु बम का विस्फोट होता है, तो उस समय स्ट्रांशियम नामक एक धातु तत्व की उत्पत्ति होती है, यह बड़ा हानिकर रेडियो सक्रिय तत्त्व है, और परमाणु बम विस्फोट के बाद बहुत काल तक उस स्थान के निवासी

[शेष पृष्ठ १५२ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

★ समालोचना व साहित्य सत्कार ★

अशोक

लेखक—श्री रमेश जी वेदी विद्यालंकार

प्रकाशक—हिमालय वनस्पति संस्थान, गुरुकुल काँगड़ी, हरिद्वार, कनखल

मूल्य १) रुपया।

यह पुस्तक अशोक नामक प्रख्यात वनस्पति पर लिखी गई है। अशोकारिष्ट नामक आयुर्वेदीय योग इसी वनस्पति की छाल से निर्मित होता है।

रमेश वेदी जी ने आयुर्वेद की एक एक वनस्पति को लेकर उनके आयुर्वेदीय गुण धर्मों का ही विवेचन नहीं किया प्रत्युत आपने इस समय तक इस वनस्पति पर जो कुछ आधुनिक अनुसन्धान हुए हैं उन सबों का संकलन कर आयुर्वेद संसार के ज्ञान को बढ़ाने का आपने उपक्रम किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। आपने अब तक निम्न वनस्पतियों पर ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं। लहसुन, प्याज, त्रिफला, शहद, तुलसी, मिर्च, सोंठ, नीम, बकायन, सर्पगंधा, वट, तुवरक, शहतूत आदि।

आपने अशोक पर यह छोटी सी पुस्तक लिख कर अशोक वृक्ष का वैदिक काल से लेकर साहित्यिक सारा इतिहास देकर फिर आयुर्वेद में इसको किन किन रोगों पर व्यवहार में लाया गया है इसका विस्तृत वर्णन दिया है। इससे भिन्न इस समय तक अशोक वृक्ष के किसी अंश पर आधुनिक समय में क्या क्या जानकारी प्राप्त हुई है सब का संकलन कर पुस्तक को अत्यन्त उपयोगी बना दिया है आशा है वैद्य संसार में इस पुस्तक का यथेच्छ आदर होगा।

आयुर्वेद शिक्षा (द्वितीय संस्करण) प्रथम भाग

खण्ड १ पृष्ठ संख्या ५९२, खण्ड २ पृष्ठ संख्या ५७६

सम्पादक—डा० ए० लक्ष्मीपति

आयुर्वेद के सर्वाङ्गीण दिग्दर्शन के उद्देश्य से लेखक ने 'आयुर्वेद शिक्षा' नामक वृहद ग्रंथ की अंग्रेजी भाषा में रचना करना आरम्भ किया है। यह सम्पूर्ण ग्रंथ ८ भागों में प्रकाशित करने की योजना हैं परन्तु इस समय केवल प्रथम भाग के दो खण्ड, दो भिन्न २ पुस्तकों के रूप में प्राप्त हुए हैं।

प्रथम खण्ड का शीर्षक है 'ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि'। यह खण्ड ८ अध्यायों में विभक्त है जिसमें से तीन चार अध्याय सम्पादक महोदय ने स्वयं लिखे हैं। शेष अन्य लेखकों के हैं। 'प्राचीन भारत में विश्वविद्यालय विशेषतः आयुर्वेदाध्ययन से उनका सम्बन्ध' इस शीर्षक का एक अध्याय भारत के सुविख्यात इतिहास वेत्ता डा०राधा कुमुद मुकर्जी द्वारा लिखा गया है। इस अध्याय में प्राचीन भारत में सामान्य शिक्षा विशेषतः आयुर्वेदीय शिक्षा के सभी पक्षों पर विद्वत्ता पूर्ण ऐतिहासिक प्रकाश डाला गया है। 'आयुर्वेद का इतिहास' शीर्षक एक अन्य अध्याय में लेखक कविराज एम० के० मुकर्जी ने वैदिक युग से लेकर आयुर्वेद के काय, शल्य, शालाक्य, प्रसूति तन्त्र आदि सभी अंगों के विकास के अब तक के इतिहास की सविस्तार चर्चा की है। पुस्तक के आरम्भ में सृष्टि आरम्भ से लेकर अब तक की आयुर्वेद सम्बन्धी घटनाओं एवं व्यक्तियों के समय की क्रम पूर्वक तिथियों की सारणी दी है। अन्त में ईस्वी पूर्व ५००० वर्ष से लेकर अब तक के आयुर्वेदीय संहिताकारों की ऐसी ही एक अन्य सारणी दी है यह दोनों सारणियां संदर्भ (reference) के लिये उपयोगी हैं।

द्वितीय खण्ड का शीर्षक है 'दार्शनिक पृष्ठ भूमि'। इसमें सांख्य, न्याय, मीमांसा आदि षड दर्शनों, बुद्ध और जैन दर्शनवाद एवं विकासवाद के आधुनिक दर्शनवाद का दिग्दर्शन कराया गया है तथा आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धांतों से उनके सम्बन्ध की विस्तार पूर्वक चर्चा की गई है। साथ ही प्राचीन दर्शन शास्त्रों और आधुनिक विज्ञान शास्त्रों यथा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणी विज्ञान आदि की तुलना करते हुये यह मत व्यक्त किया है कि प्राचीन दर्शनवाद का आयुर्वेद के वैज्ञानिक सिद्धांतों से वही सम्बन्ध है जो आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों का आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से है। इस सम्बन्ध में लेखक की दी युक्तियां तो मननीय हैं, परन्तु दर्शनवाद पर आधारित आयुर्वेद काय और शल्य चिकित्सा के क्रियात्मक क्षेत्र में कितना कर्म कौशल सिखा सकता है, और प्रत्यक्ष प्रयोगवाद पर आधारित आधुनिक चिकित्सा शास्त्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने कहां तक टिक सकता है ? यह सामयिक महत्व का गंभीर विचारणीय प्रश्न है। आयुर्वेद मुख्य रूप से आध्यात्मिक शास्त्र है अन्तिम अध्याय में व्यक्त किया यह मत भी उक्त प्रश्न का समाधान नहीं करता। आज आयुर्वेद का अध्ययन अध्यापन उसे शरीर शास्त्र समझ कर ही हो रहा है और जिस आयुर्वेद के लिये हमें आज संकट दिखाई देता है वह शरीर शास्त्र ही है, यह एक वास्तविकता है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र जब अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश ही नहीं करता तो उस क्षेत्र में हमें उससे क्या भय ? इस विवाद का निर्णय तो हम स्वयं लेखक पर छोड़ने को तैयार हैं। अभी प्रस्तुत ग्रंथ के ७ भाग प्रकाशित होने शेष हैं। क्या उन में वह शरीर सम्बन्धी चर्चा विशेष रूप से करेंगे या अध्यात्म सम्बन्धी इसी से ज्ञात हो जायगा कि आयुर्वेद का मुख्य विषय क्या है। अथवा चिकित्सा कार्य में संलग्न असंख्य वैद्य इस बात का निर्णय स्वयं कर सकते हैं। हमारा तो लेखक के इस मन्तव्य से मतभेद है। फिर भी लेखक का प्रयास स्तुत्य है। ग्रन्थ का महत्व इस बात में है कि प्राचीन मन्तव्यों के अनुसार आयुर्वेद का सर्वाङ्गीण यथा तथ्य रूप लेखक अंग्रेजी भाषा विज्ञों के सम्मुख रख रहे हैं। स्वयं आयुवद का महत्व आज के युग में कितना है, यह निर्णय तो ग्रंथ को देखने के बाद पाठक करेंगे। ग्रन्थ के शेष ७ भाग कब प्रकाशित होंगे, इस सम्बन्ध में लेखक की ओर से कोई संकेत नहीं मिला।

पुस्तक को जितना व्यापक और महत्वपूर्ण बनाने का विचार किया गया है, छपाई, एवं प्रूफ संशोधन आदि का कार्य उस स्तर से नहीं हुआ, इस दिशा में काफी सुधार वांछनीय है। —समालोचक क० गौरीलाल चानना वैद्य वाचस्पति

———

[शेष पृष्ठ १४९ का]

जिन व्यक्तियों को चुल्लिकीन (थाइरोक्सीन) के सूचीभरण दिये गये हैं उसका प्रभाव यह देखा गया है कि तन्तु कोषा के अस्रजनीय यौगिक टूटकर उनसे शार्करी यौगिकों का निर्माण होने लगता है। इसी तरह संचित वसाकोष के यौगिक टूटकर उनसे भी शार्करी यौगिकों निर्माण होने लगता है। यकृत में संचित द्राक्षजन भी द्राक्षज में अधिक बदलती है। रक्त शर्करा मर्यादा से अधिक बढ जाने के कारण मूत्र में जाने लगती है। इसके प्रभाव से अन्त्र द्वारा द्राक्ष शर्करा के आचूषण की गति बढ़ जाती हैं।

चुल्लिकोज का प्रभाव—सूचीभरण—

इसके सूचीभरण दिये जायं तो रक्त शर्करा की मात्रा घट जाती हैं और शर्कराओं के दहन की गति बढ जाती है। अर्थात क्षय-पूर्ति की रफ्तार बढ जाती है। अस्रजनीय पदार्थों का तन्तुओं में शोषण व सात्म्यीकरण भी अच्छी तरह होता है। और इसके प्रभाव से ही द्राक्षज षड स्फुरेत से एक स्फुरेत में परिवर्तित होकर शक्त्योत्पादन की गति को बढा देता है। अस्थियों में चूनीभवन अच्छी तरह होता है। रक्त में चूनजम की मात्रा भी सन्तुलित बनी रहती है।

———

[शेष पृष्ठ १५० का]

प्राणियों पर जो हानि कर प्रभाव होते रहते हैं उनके लिये यही तत्त्व उत्तरदायी है। यह यौगिक रूप में बदल कर खनिजों, वनस्पतियों आदि अनेक पदार्थों में मिलता रहता है और इस प्रकार प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट होकर और बाहर से भी शरीर पर अपना रेडियो सक्रिय हानिकर प्रभाव चिरकाल तक डालता रहता है। इसीलिये आपने सुना होगा कि आज से १५ वर्ष पूर्व गत महायुद्ध के अन्त में जापान के जिन दो नगरों हीरोशीमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराये गये थे वहां के नागरिक अभी तक भी उस परमाणु विस्फोट के दुष्प्रभावों से पीड़ित हैं। अभी अभी यह समाचार आया है कि कुछ समय पूर्व जापान के हीरोशीमा और नागासाकी के कुछ निवासियों ने यह अनुभव किया कि चाय पीने से कुछ समय के लिये उन्हें परमाणु बम जन्य कष्टों से आराम महसूस होता है। यह सूचना बढ़ते बढ़ते कुछ जापानी वैज्ञानिकों तक पहुँची तो उन्होंने इस सम्बन्ध में अध्ययन आरम्भ किया। अभी अभी उन्होंने इस अध्ययन का परिणाम यह घोषित किया है कि चाय में विद्यमान टैनीन नामक पदार्थ परमाणु बम विस्फोट काल में उत्पन्न होने वाले स्ट्रांशियम धातु तत्व के प्राणियों पर होने वाले रेडियम धर्मी दुष्प्रभावों के निराकरण में सहायक है सम्भवतः टैनीन उक्त रेडियो सक्रिय हानिकारक तत्व के शरीर से निष्कासन में सहायता करता है इसीलिये परमाणु बम दुष्प्रभाव पीड़ित व्यक्तियों को चाय पीने से कुछ देर के लिये आराम महसूस होता है। संसार के अन्य वैज्ञानिकों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि अभी अपेक्षित है। यदि अन्ततोगत्वा यह तथ्य प्रमाणित हो गया तब तो इस परमाणु युग में चाय का महत्व और भी बढ़ जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

079411

मानव अवयवों के विकास की रहस्यपूर्ण प्रक्रिया की खोज

मिशिगन विश्वविद्यालय के चिकित्सा-अनुसन्धान-केन्द्र के वैज्ञानिक मानव शरीर के विकास की अति गूढ़ पहेली को सुलझाने के लिये प्रयत्नरत हैं। अब तक वैज्ञानिक गण इस रहस्य का उद्घाटन नहीं कर पाये हैं कि जन्म के उपरान्त शिशु के शरीर का विकास क्यों कर होता है और उसके शरीर के अंग किस प्रकार बढ़ते हुए पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

उक्त वैज्ञानिकों ने गहन अध्ययन और अनुसन्धान के उपरान्त यह मालूम कर लिया है कि शरीर के सूक्ष्म कोषों की 'एमिनो एसिड' सम्बन्धी क्षुधा का शारीरिक अवयवों के विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

मिशिगन विश्वविद्यालय के जीवाणु रसायन-विज्ञान विभाग के अध्यक्ष डा० हालवारे एन० क्राइस्टेनसेन ने 'अमेरिकन केमिकल सोसायटी' और 'अमेरिकन एसोसिएशन ओव क्लिनिकल केमिस्ट' की बैठकों में अपने १० वर्ष के अनुसन्धान कार्य पर प्रकाश डालते हुए उक्त सूचना दी।

डा० हालवोर का कथन है 'एमिनो एसिड' के दो मुख्य उपयोग हैं। प्रथम तो यह शरीर में जीवित प्रोटोप्लाजम (जीवन का आधार तत्व) के निर्माण में सहायता करता है और दूसरे यह शरीर में ईंधन का भी कार्य करता है। शरीर में इन एसिडों की क्रियाशीलता कुछ विशिष्ट प्रकार के हार्मोनों (शरीर में मौजूद एक रासायनिक तत्व) पर निर्भर करती है। कभी-कभी ये हार्मोन काफी बड़ी संख्या में सूक्ष्म कोष में प्रविष्ट होते हैं, जिसके फलस्वरूप अवयवों का विकास होता है। अभी तक अनुसन्धानकर्त्ता यह पता लगाने के लिए प्रयत्नशील हैं कि ये पोषक तत्व सूक्ष्म कोषों में किस प्रक्रिया द्वारा प्रवेश करते हैं।

मिशिगन चिकित्सा-केन्द्र अनुसन्धानकर्ताओं ने यह मालूम किया है कि ये हार्मोन एक तरल मिश्रण (रक्त) द्वारा गांठ मिश्रण (शरीर के सूक्ष्म कोषों) में प्रविष्ट होते हैं। यह बात कुछ विचित्र प्रतीत होती है क्योंकि यह तो यह कहने के समान है कि जल नीचे से ऊपर की ओर बह रहा है। डा० हालबोर ने कहा कि इसी विचित्र प्रक्रिया को वैज्ञानिक 'एमिनो एसिड' सम्बन्धी क्षुधा कह कर सम्बोधित करते हैं। अनुसन्धानकर्ताओं को सन्देह है कि विटामिन बी$_6$ नामक तत्व एमिनो एसिड के कणों को सूक्ष्म कोषों के अन्तरंग भाग में पहुँचाता है।

जब शरीर के अवयवों का पूर्ण विकास हो जाता है तो सूक्ष्म कोषों की 'एमिनो एसिड' सम्बन्धी क्षुधा शांत हो जाती है। इस स्थिति में अधिकांश 'एमिनो एसिड' कणों का उपयोग शरीर के अवयवों को चालू रखने के लिये शक्ति के रूप में होने लगता है।

सम्भवतः परिवर्तन की इस प्रक्रिया के शुरू होने के फलस्वरूप ही एक निश्चित आयु पर मनुष्य का शारीरिक विकास रुक जाता है। सम्भव है कि इस प्रक्रिया की जानकारी से कैंसर रोग का पता लगाने में भी मदद मिले। कैंसर-युक्त सूक्ष्म कोषों में 'एमिनो एसिड' की क्षुधा जारी रहती है और अन्य अवयवों को हानि पहुँचा कर उसका विकास जारी रहता है।

परीक्षणशाला में किये गए अध्ययन के दौरान वैज्ञानिकों ने जीवित सूक्ष्म कोषों की परत की सहायता से एक कृत्रिम झिल्ली तैयार की। 'एमिनो एसिड' के घोल को अलग करने के लिये झिल्ली के एक तरफ उन्होंने विटामिन बी$_6$ की एक गोली रख दी। इस गोली के रखते ही विपरीत दिशा में 'एमिनो एसिड' का प्रभाव जारी हो गया। लेकिन सूक्ष्म-कोषों के क्षति ग्रस्त होते ही प्रवाह की यह प्रक्रिया अवरुद्ध हो गई।

इस अनुसन्धान योजना के लिये अमेरिकी स्वास्थ्य विभाग के नेशनल कैंसर इंस्टिट्यूट द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की गई है।

[अमेरिकी सूचना केन्द्र नई दिल्ली से प्राप्त समाचार]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
रजिस्टर्ड नं० डी-७२०

आसव निर्माणार्थ सागवान काष्ठ के उत्तम ढोल

प्राचीन काल से ही वैद्यों में आसव निर्माणार्थ प्रायः मट्टी के पात्रों को प्रयोग करने का प्रचलन है। परन्तु मट्टी के पात्र में दो बड़े दोष हैं एक तो मसामदार होने से आसव द्रव उस में से चू कर बाहर निकल सकता है। दूसरे मृत्पात्र तापवाहक होने के कारण सन्धानार्थ द्रव के अन्दर आवश्यक उत्ताप को स्थिर नहीं रख सकता, जिस से आसव निर्माण क्रिया (सन्धान) में बाधा उत्पन्न हो सकती है। लकड़ी के ढोल इन दोनों दोषों से मुक्त हैं। लकड़ी में भी सागवान की लकड़ी ऐसी कठोर है कि निरन्तर वर्षों तक पानी के संसर्ग में रहने पर भी यह नहीं गलती। अतः सागवान के बने ढोल चिर काल तक खराब नहीं होते और आयु पर्यन्त काम देते रहते हैं। मृत्पात्र की तरह इन्हें घृत परिप्लुत करने का झंझट भी नहीं करना पड़ता। जल से प्रक्षालन कर स्वच्छ करके इन का प्रयोग किया जा सकता है। मृत्पात्र की तरह इनके फूटने का भी भय नहीं।

हमारे यहां वर्षों से इन ढोलों का प्रयोग हो रहा है। श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी द्वारा लिखित "आसव विज्ञान" पुस्तक के प्रकाशन के बाद से देश के प्रत्येक कोने से इन लकड़ी के ढोलों के लिये अनेकों वैद्यों की मांग आती रही है। अतः हमने विलायत से आने वाले माल के खाली ढोल जो बड़ी बड़ी मिलों में रासायनिक पदार्थों में लग कर आते हैं उनके संग्रह का प्रयत्न किया है वह साफ करने पर आसव निर्माण के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है वैद्य समाज तथा औषध निर्माता इन का प्रयोग कर आसव निर्माण प्रक्रिया को समुन्नत करने की दिशा में अग्रसर होंगे। इस से उन्हें सुविधा भी होगी और आसव भी उत्तम बनेंगे। प्रत्येक ढोल की समाई इतनी है कि उसमें १॥ मन आसव भर कर रखा जा सकता है। मूल्य प्रति ढोल १२) मार्ग व्यय भिन्न।

आर्डर के साथ पेशगी आना जरूरी है।

निवेदक—मैनेजर पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट-अमृतसर।

अहिफेन मुक्ति दाता वटी

१ अप्रैल से सरकार ने अफीम के ठेके बन्द कर दिये हैं। अफीम खाने के आदी व्यक्तियों को बड़ी मुसीबत का सामना होगा। इस अफीम से बिना कष्ट मुक्ति दिलाने के लिये ही ८-९ वर्ष के अनुसन्धान से यह गोलियां आविष्कृत की हैं। अफीम खाने के समय १-२ या अधिक मात्रा में अफीम खाने वाले तीन गोलियां खालें उन्हें अफीम का प्रभाव नहीं लगेगा। महीना डेढ़ महीना सेवन के बाद गोलियों की मात्रा कम करते चले जाएं। बस अफीम का ख्याल ही भूल जायगा। मूल्य प्रति तोला २), ५ तोला का ८) रु०।

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, ६०--६१ अकालमार्केट, अमृतसर

शाखा—खारी बावली दिल्ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2009

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar